विहारभूषण, भारतभूषण, भारतरत्न, भारतभास्कर, घटिकाशतक, शतावधान, धर्माचार्य, महामहोपदेशक, सुकवि, साहित्याचार्य—

पण्डित अम्बिकादत्त व्यास

वीरेन्द्र कुमार मिश्र

साहित्याचार्य पं० अम्बिकादत्त व्यास

जयपुर से लगभग ११ कोस पूर्व 'रावत जी की धूला' नामक चारों ओर पहाड़ियों से घिरा ग्राम वीर-प्रसविनी भूमि राजस्थान के कमल कोमल करों में कंकण की भाँति शोभित है। मानसिंह के द्वितीय पुत्र दुर्जन सिंह ने धूला को अपनी राजधानी बनाया था। दुर्जन सिंह के वंश में ठाकुर दलेल सिंह हुए, जिनके द्वार-पण्डित आदि गौड, पराशरगोत्रीय, यजुर्वेदी, त्रिप्रवर, भींडा वंशावतंस श्री गोविन्दराम जी हुए। पं० गोविन्दराम के प्रपौत्र पं० राजाराम जी तीर्थयात्रा करते हुए काशी आये और काशी-वासियों के आग्रह के कारण मानमन्दिर मुहल्ले में बस गये। पं० राजा-राम जी ज्योतिष और पण्डिताई के अतिरिक्त लेन-देन का व्यवहार भी करते थे, किन्तु व्यवहार कुशल न होने के कारण महाजनी का व्यवसाय आपके लिये महँगा पड़ा।

भाद्रपद शुक्ल २ सं० १८७२ वि० को बुधवार के दिन पं० राजाराम के ज्येष्ठ पुत्र पं० दुर्गादत्त का जन्म हुआ। पं० दुर्गादत्त बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति थे और संस्कृत तथा हिन्दी के सिद्धहस्त लेखक तथा कवि थे। जयपुर के सिलावटों के मुहल्ले में आपकी ससुराल थी। वहीं चैत्र शुक्ल ८ सं० १९१५ वि० को आपके द्वितीय पुत्र का जन्म हुआ। नवरात्र के अष्टमी के दिन जन्म लेने के कारण पुत्र का नाम अम्बिकादत्त रखा गया। किसी ने ठीक ही कहा है 'होनहार-बिरवान के होत चीकने पात'। बारह वर्ष की अल्पायु में ही व्यास जी भारतेन्दु जी द्वारा आयोजित कवि-गोष्ठियों में समस्या पूर्तियाँ करने लगे थे।

सं० १९२८ में १३ वर्ष की आयु में आपका विवाह हुआ।

इस समय आपके परिवार पर अर्थाभाव के बादल मँडरा रहे थे। पैतृक सम्पत्ति के नाम पर आप लोगों के पास काशी के मानमन्दिर मुहल्ले में एक तिमंजिला मकान था। पं० दुर्गादत्त जी कथा-वार्ता और यजमानी से जो कुछ थोड़ा बहुत पैदा कर लेते थे उसी से सात प्राणियों के कुटुम्ब का पालन-पोषण होता था। व्यास जी को अर्थोपार्जन में अपने पिता की सहायता करनी पड़ती थी। अर्थ और समय के अभाव में भी आपका अध्ययन यथाक्रम चलता रहा। पं० ताराचरण तर्करत्न से साहित्यदर्पण, कुंजलाल वाजपेयी और कैलाशचन्द्र भट्टाचार्य से न्याय, राममिश्र शास्त्री से सांख्य और विश्वनाथ कविराज से आपने वैद्यक और बंगला की शिक्षा प्राप्त की। इतना ही नहीं १८ कोस पैदल चल कर पथरकटी (डुमरांव) में गदका, फरई, बनेठी आदि भी आपने सीखा था।

व्यास जी का पारिवारिक जीवन सुखी न था। सं० १९३१ वि० में आपके ऊपर से माँ के अंचल की ममतामयी छाया उठ गई। सं० १९३७ वि० में पिता का स्नेह सम्बल छिन गया। ज्येष्ठ भ्राता आपसे अकारण द्वेष रखते थे। सं० १९४२ वि० में १८ वर्षीय लघुभ्राता यौवन की देहरी पर पाँव रखती हुई पत्नी की माँग सूनी करके चला गया। जीवन के वसन्त में ही आपकी बहन का भी संसार उजड़ गया था। इस मानसिक असन्तुलन अस्थिरता के काल की रचनायें देखकर आश्चर्य होता है। रचनाओं में कहीं भी मानसिक अवसाद या विषाद की छाया तक नहीं पड़ने पाई है। जीवन की सारी कटुता सारा गरल आपने अपने लिए रख छोड़ा और अमृत समाज को बाँट दिया।

२२ वर्ष की अल्पायु में ही पूरे परिवार का बोझ आपके दुर्बल कंधों पर आ पड़ा। सवेरे जयनारायण कालेज के प्रधानाचार्य श्री एम० एम० हाकेट को हिन्दी पढ़ाते थे, फिर धूप में पौन कोस पैदल चलकर रानी बड़हर के यहाँ कथा कहते थे। रानी बड़हर के काशी से मिर्जापुर चले जाने पर जीविका का यह साधन भी जाता रहा, किन्तु सरस्वती के

इस वरद पुत्र ने लक्ष्मी और सरस्वती के संघर्ष में लक्ष्मी को सदा ठोकर ही मारी। पूर्वजों के जन्मस्थान धूला के ठाकुर महाराज कुमार बैरीसाल सिंह जी के स्वयं आकर बुलाने पर भी आप वहाँ न गये और मन्दिर तथा ६५० बीघे भूमि की सम्पत्ति अपने उस बड़े भाई को दे दी, जिसे आप फूटी आँखों भी न सुहाते थे।

सं० १६४० वि० में मधुबनी संस्कृत पाठशाला के प्रधानाचार्य नियुक्त हो जाने पर आर्थिक कठिनाइयाँ कुछ कम अवश्य हुईं। आपकी आय का अधिकांश भाग स्वसम्पादित 'पीयूषप्रवाह' का घाटा पूरा करने में चला जाता था। भाई की मृत्यु हो जाने के अनन्तर मधुबनी में आपका मन न लगता था, अतः आपने त्यागपत्र दे दिया। इसी बीच मुजफ्फरपुर जिला स्कूल के हेड पण्डित के पद पर आपकी नियुक्ति हो गई, जहाँ आप अन्त तक बने रहे।

व्यास जी का सामाजिक व्यक्तित्व आकर्षक था। अपने युग के साहित्यकारों में आपके मित्रों की संख्या सर्वाधिक थी। ऊन्नीस वर्ष की अल्पायु में ही 'ब्रह्मामृत वर्षिणी सभा' के आप लेखाध्यक्ष निर्वाचित हुए थे। सं० १६३७ वि० से ही आप तत्कालीन धार्मिक आन्दोलनों में भाग लेने लगे थे। मधुबनी के अध्यापन काल में आपने 'धर्मसभा' और 'सुनीति संचारिणी सभा' की स्थापना की। संस्कृत की श्रीवृद्धि के लिये व्यास जी का प्रयास स्तुत्य है। 'बिहार संस्कृत संजीवन' की स्थापना और कार्य प्रणाली में आपका महत्त्वपूर्ण योग था। 'बिहार संस्कृत संजीवन' के सभापति का आसन भी आपने सुशोभित किया था।

उन दिनों आर्यसमाज और ब्रह्मसमाज का सुधार आन्दोलन जोरों पर था, राजनीतिक आन्दोलन की भी धूमिल रूप-रेखा बन रही थी। शास्त्र के निष्णात पण्डित और पुरातन प्रेमी होने के कारण व्यास जी की इन आन्दोलनों के प्रति सहानुभूति न थी। अपने व्यय से उत्तर भारत के प्रमुख स्थानों में घूम-घूमकर आपने आर्यसमाज का विरोध किया।

बांकीपुर में स्वामी सहजानन्द सरस्वती और काशी में स्वामी दयानन्द सरस्वती को भी आपकी प्रतिभा का लोहा मानना पड़ा। बहुत अधिक बोलने के कारण आपको हृद् रोग हो गया।

सं० १९५३ वि० से ही आपका स्वास्थ्य दिन पर दिन गिरता जा रहा था। वैद्यों के मना करने पर भी आप धर्म-प्रचार में संलग्न रहे।

मार्गशीर्ष कृष्ण १३ सोमवार सं० १९५७ वि० को रात के तीन बजे आप पञ्च तत्त्व को प्राप्त हुए।

व्यास जी में विलक्षण प्रतिभा थी। वक्ता और साहित्यकार होने के अतिरिक्त आप शतरंज के खिलाड़ी, चित्रकार, घुड़सवार और संगीतज्ञ भी थे। सितार, हारमोनियम, जलतरंग, नसतरंग और मृदंग बजाने में आप बड़े-बड़े गवैयों के कान काटते थे।

कविता लिखने में आपकी अच्छी गति थी। 'द्रव्यस्तोत्र' आपकी रात भर की रचना है। एक घड़ी में १०० श्लोक लिख सकने की क्षमता के कारण आपको 'घटिका शतक' की उपाधि मिली थी। आप 'शतावधान' भी थे।

साहित्याचार्य तो आप थे ही; न्याय, वेदान्त, दर्शन और व्याकरण पर भी आपका अधिकार था। हिन्दी, संस्कृत और बंगला में धारा प्रवाहिक वक्तृता करते थे। अंग्रेजी का भी आपको ज्ञान था। थियोसोफिस्ट कर्नल अलकाट और जार्ज ग्रियर्सन ने आपकी तेजस्विता और वक्तृत्व शक्ति की बड़ी प्रशंसा की थी।

उन्नीसवीं शताब्दी में लिंग विपर्यय के कथानक पर 'सामवतम् नाटक' की रचना व्यासजी की असाधारण प्रतिभा का प्रत्यक्ष प्रमाण है। 'शीघ्र लेख' प्रणाली पर भी उन्होंने एक पुस्तक लिखी थी। पाणिनि की सूत्र-पद्धति पर आपने 'आर्यभाषा सूत्राधार' नामक हिन्दी व्याकरण लिखना प्रारम्भ कर दिया था, जो आपकी असामयिक मृत्यु के फलस्वरूप अधूरा रह गया।

व्यासजी की मृत्यु के समय उनके पुत्र पं० राधाकुमार व्यास की आयु ७ वर्ष की थी और राधाकुमार जी की मृत्यु के समय उनके पुत्र पं० कृष्णकुमार जी ६ वर्ष के थे। यही कारण है कि व्यासजी की अधिकांश कृतियाँ नष्ट हो गई हैं। व्यासजी के उपलब्ध साहित्य के अध्ययन-अध्यापन की ओर विद्वानों को ध्यान देना चाहिए।

शिवराज-विजय

'शिवराज-विजय' संस्कृत वाङ्मय का प्रथम ऐतिहासिक उपन्यास है। उपन्यास अध्यायों या प्रकरणों में लिखा जाने वाला कल्पित रसयुक्त और विवेचनात्मक गद्य रचना का वह प्रकार है—जो जन जीवन के परस्पर सम्बद्ध चरित्रों और कार्यों का प्रतिनिधित्व करता है। संस्कृत के गद्य काव्यों की कसौटी पर खरा उतरते हुए भी 'शिवराज-विजय' वस्तुतः है उपन्यास ही। शिवराज-विजय का वाक्य विन्यास, अलंकरण और शब्दश्लेष कादम्बरी से प्रभावित जान पड़ता है, किन्तु रूप-शिल्प की दृष्टि से यह रचना बंकिम बाबू के उपन्यासों के जितने ही निकट है उतनी ही संस्कृत के गद्य काव्यों से दूर। 'दशकुमार चरित' का कथानक कमल की पंखुरियों सा है, एक आख्यान का अन्त दूसरे का प्रारम्भ है। इसके विपरीत 'शिवराज-विजय' का कथानक उलझी हुई पुष्पित लतिका की भाँति है। 'दशकुमारचरित' का रूप-शिल्प पौराणिक कथाओं जैसा है; अर्थात् उसमें एक वक्ता कथाकार है और एक या एकाधिक श्रोता। अपने में पूर्ण अनेक स्वतंत्र लघु आख्यायिकायें मिलकर एक बड़े आख्यान को; जन्म देती हैं। 'शिवराज-विजय' का रूप शिल्प पाश्चात्य उपन्यासों जैसा है, लेखक वातावरण बनाकर पाठकों को अपने चरित्रों के बीच में बैठा देता है, जहाँ वे तटस्थ दर्शक की भाँति उनके क्रिया कलाप देखते हैं। 'शिवराज-विजय' में दो स्वतंत्र कथा धारायें समानान्तर बहती हैं, एक का नायक

रघुवीर सिंह (राम सिंह) है और दूसरी के शिवाजी, किन्तु ये दोनों कथायें भी नितान्त अन्य निरपेक्ष नहीं हैं।

ऐतिहासिक उपन्यासकार को सामाजिक उपन्यासकार की अपेक्षा कम स्वतन्त्रता मिलती है। अतीत के अनुरूप ही उसे चरित्रों और घटनाओं का संघटन करना पड़ता है। प्रधान चरित्र हमारे इतने निकट होते हैं कि उनका चित्रण करते समय लेखक की कल्पना के लिए बिलकुल अवकाश नहीं रह पाता। उपन्यास की कथावस्तु बहुश्रुत होने के कारण, कौतूहल तत्त्व पर भी आघात पहुँचता है। ऐतिहासिक तथ्यों का बहुत अधिक ध्यान रखने पर रचना ऐतिहासिक उपन्यास न रहकर औपन्यासिक इतिहास हो जाती है और ऐतिहासिक तथ्यों की अवहेलना लेखक का अज्ञान प्रकट करती है। इन्हीं कारणों से ऐतिहासिक उपन्यासकार अनेक प्रासंगिक कथाओं और काल्पनिक चरित्रों की सृष्टि कर लेते हैं। साहित्यकार का सत्य इतिहासकार के सत्य से भिन्न होता है। इतिहासकार वस्तुस्थिति देखता है और साहित्यकार संभावना।

शिवराज-विजय के शिवाजी, भूषण, माल्यश्रीक, अफ़जल खाँ (अपजल खान), शाइस्ता खाँ (शास्तिखान), कुमार मुअज्जम (मायाजिह्म), जय सिंह और यशवन्त सिंह ऐतिहासिक चरित्र हैं और रघुवीर सिंह (राम सिंह), सौवर्णी, पुरोहित देवशर्मा (वीर सिंह), ब्रह्मचारी गुरु, गौर सिंह, श्याम सिंह, क्रूर सिंह, बदरुद्दीन (बदरदीन), चाँद खाँ (चान्द्रखान) आदि कल्पित।

ऐतिहासिक चरित्रों के क्रिया-कलापों और आचरण-व्यवहार का चित्रण इतिहासकार की दृष्टि से किया गया है। ऐतिहासिक मान्यताओं का ध्यान रखते हुये व्यास जी ने ऐसे स्थल ढूँढ़ निकाले हैं जहाँ उनकी प्रतिभा को खुल खेलने का अवसर मिल सके।

औरंगजेब की दुहिता रौशनआरा (रसनारी) के स्थान पर इतिहासकार बीजापुर की राजकुमारी का बन्दी बनाना लिखते हैं। नायक की

गरिमा बढ़ाने और कथा को विकास देने के लिये ही शिवाजी पर शत्रु-तनया की अनुरक्ति दिखाई गई है। यह ऐतिहासिक सत्य भले न हो, साहित्यकार का सत्य तो है ही।

'शिवराज-विजय' का कथानक शिवाजी के जीवन की दस वर्षों (१६५७—६७ ई०) की घटनाओं पर आधारित है, पाठक सौवर्णी की बढ़ती हुई आयु से सरलता पूर्वक दस वर्षों की अवधि का अनुमान कर सकते हैं।

'शिवराज-विजय' की सबसे बड़ी विशेषता उसकी उपादेयता है। १८५७ की प्रथम सशस्त्र राज्यक्रान्ति की विफलता ने हमारा विश्वास छीन लिया था। ऐसे समय में जब हवा भी साँस लेते काँपती थी व्यास जी ने शिवाजी का आदर्श हमारे सम्मुख रखा। व्यास जी ने जनता के बीच से एक साधारण जागीरदार के पुत्र को अपना नायक चुनकर दिखा दिया कि धरती को स्वर्ग बनाने के लिए हमें स्वर्ग नहीं जाना होगा, हम धरती को ही स्वर्ग बना सकते हैं, हाँ, लगन सच्ची होनी चाहिये।

—हीरालाल तिवारी एम० ए०

MAHAMAHOPADHYAYA

Gopi Nath Kaviraj M.A.

2. A, Sigra,

BENARES

Dated 26-3-46

I have read with great interest the revised edition of the Late Pandit Ambika Datta Vyasa's work entitled "Sivaraja Vijaya." It is a well known historical romance in Sanskrit prose based on the story of the Maharastra Chief Sivaji and written in a graceful and lucid style.

The author was a distinguished religious-preacher in his time whose Hindi speeches in different parts of the country won for him a great reputation as an orator. But the present work shows him as a gifted Sanskrit writer. In the history of Sanskrit prose literature this work, though a recent production, deserves a lasting place.

It is hoped that students interested in Sanskrit studies and in the art of Sanskrit composition will appreciate it as a valuable aid.

Gopinath Kaviraj.

अभ्यास साम्मुख्ये — — — सत्सम्प्रति

❀ श्री ❀

निर्माणहेतुः

"गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति"

श्लोक एकस्याप्यंशस्य चमत्कार-विशेषाधायकत्वे सर्वोऽपि श्लोकः प्रशस्यते, न च गद्ये तथा सुलभं सौष्ठवम्; गद्ये तु सर्वाङ्गीण-सौन्दर्यमुपलभ्येत चेत्, तदैव तत् प्रशंसा-भाजनं भवेद् भव्यानाम्। पद्ये छन्दःपारवश्यात् स्वच्छन्द-पद-प्रयोगो न भवतीत्यनिच्छताऽपि कविता-प्रसङ्ग-प्राप्तं स्वाभाविकं स्वल्पमपि वचनीयं क्वचिद् विस्तार्यते, क्वचिद् बह्वपि नियताक्षरैः संक्षिप्य क्षोदिष्ठं विधीयते, क्वचिच्च द्वित्र-स्वाभाविक-पद-प्रयोग-समापनीयान्यपि पारस्परिकालाप-संसक्त-प्राप्त-वाक्यानि जटिलीक्रियन्ते। गद्ये तु यदि किमपि तादृशमस्वाभाविकं स्यात्; तत् कवेरेव निर्वोक्ति महदवद्यम्—इत्यादिकारणैः पद्यापेक्षया गद्यमेव महामान्यं भवति, भवति च दुष्करमपि गद्यकाव्यमेव। अत एव शुद्ध-पद्यात्मकेषु बहुषु महाकाव्येष्वपि खण्डकाव्येष्वपि च प्राप्येष्वपि गद्यपद्यात्मकेषु चम्पू-नाटकादिषु चानेकेषूपलभ्यमानेष्वपि, शुद्ध-गद्य-काव्यानि तथा नाऽऽसाद्यन्ते। अस्माकं महामान्या धन्याः सुबन्धु-बाण-दण्डिनो महाकवयो ये वासवदत्ता-कादम्बरी-दशकुमारचरितानि सुधामधुराणि सदा सदनुभाव्यानि गद्यकाव्यानि विरचय्य भारतवर्षं सबहु-प्रमोद-वर्षं व्यधिषत; येषां चोक्ति-पर्य्यालोचन-प्राप्त-पर्य्याप्त-व्युत्पत्तयोऽसङ्ख्याश्छात्रा अद्यापि वर्तन्ते, वर्तिष्यन्ते च चिराय। पूर्वैर्भट्टार-हरिचन्द्र-प्रभृतिभिरेतैर्महाकविभिश्च प्रचारि-

तोऽपि महाकाव्य-सञ्चारो न चिराय स्थितिमकलयत्। भारताभिजन-भाषाकविभिरपि च प्रायः पद्य-प्रकृतिकैरेव समभावि-इति जगत्प्रसिद्धैः सूरदास-प्रभृतिभिरपि पद्यान्येव निबद्धानि। साम्प्रतन्तु समय-महिम्ना भारतीय-वर्तमान-भाषासु बहुधा गद्यकाव्यानि विरच्यन्ते। वङ्ग-गुर्जरादि-भाषासूपन्यासैरेव व्याप्ता विपणयः। हिन्दीभाषाऽपि च प्रत्यहमतिशयमासादयति गद्यसोपानेष्वेव पदाधाने। परं न केवलं प्राकृतिक-गिरां गुरवो गीर्वाणगिरि व्युत्पत्तिगरीयांस उपलभ्यन्ते, न वा कांश्चिद् धन्य-धन्यान् विहाय संस्कृतसाहित्य-व्युत्पन्ना एव, इतर-भाषानुरक्ता विशेषतोऽवलोक्यन्ते। अत एव भारताभिजन-भाषा-कवयः प्रायः स्वभ्रमान् साक्षात्संस्कृतसाहाय्येन शोधयितुं न पारयन्ति, न वा भाषाकविसमादृतान् नवान् नवान् मनोरमान् चमत्कारविशेषाधायकान् पथोऽनुसर्तुं संस्कृत-साहित्य-वैभवेषु च निधीन् वर्द्धयितुं संस्कृतज्ञा एव प्रायशः पारयन्ति। कदाचित् वृन्दारक-वृन्द-वाण्यां गद्यकाव्य-प्रचार-दौर्बल्यस्येदमेव प्रधानं कारणं स्यात्। महदिदमुपहासास्पदं विडम्बनं यद्—मण्डूक इव महापारावार-पारमासादयितुं यतमानस्तादृशं कवि-कौशल-निकषायितं गद्यकाव्यं मादृशः क्षोदीयान् जनो रिरचयिषुः संवृत्त इति। काव्यमिदं मा स्म भूत् तादृगभाव-विघट्टकम्, मा स्म वा पुषत् कस्यापि मोद-विशेषम्, परं मया तु सनातनधर्म-धूर्वह-शिवराज-वर्णनेन रसना पावितैव, प्रसङ्गतः सदुपदेश-निर्देशैः स्व-ब्राह्मण्यं सफलितमेव, ऐतिहासिककाव्यरुचीनि स्वमित्राणि रञ्जितान्येव, चिरमस्मत्पूर्वजैः पराशर-पाराशरादिभिरुपासिता संस्कृतभाषा सेवितैव, चक्षुषी निमील्य सविशेषं साक्षात्कृता पीयूष-पूर-पूर्णैरिव दृक्पातैरुज्जीवयन्ती पारिजात-कुसुम-वर्षिभिरिव वचनैरुपदिशन्ती जननी सरस्वती समाराधितैव, सद्यः परनिर्वृतिश्च समासादितैव। भवभूतिजगन्नाथादीनां

राजमान्यानां कवि-मण्डल-चक्रवर्तिनान्तु द्वेषविशेषैर्वा स्वग्रन्थ-मार्मिकजनालाभेन वा कारणान्तर-कलापैर्वा महानेव शोक-सङ्घात आसीत्। "कोऽस्मद्ग्रन्थानवलोकयिष्यति ? को वाऽस्माकं गूढ-तात्पर्यं भोत्स्यति ?"-इति चिन्ता-सन्तान-वितान-झञ्झावातोद्धूत-संशय-घनघनाडम्बर एव तथा समरौत्सीद् हृदयाकाशम्; यथा ध्रुवं सद्यः परनिर्वृतिरूप-चन्द्रिका-प्रसरेणापि न रञ्जितमेव तदन्तःकरण-कुमुद-वनम्।

तथा च तैरैवोक्तम्—

"ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां
जानन्ति ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः।
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा
कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथ्वी॥"

"विद्वांसो वसुधातले परवचःश्लाघासु वाचंयमा
भूपालाः कमलाविलासमदिरोन्मीलन्मदाघूर्णिताः।
आस्ये धास्यति कस्य लास्यमधुना धन्यस्य कामालस-
स्वर्वामाधर-माधुरीं विधुरयन् वाचां विलासो मम॥"

अहन्तु तादृक्षाणां महाकवीनां चरण-रजो-विमर्श-भाजनमपि तदपेक्षयाऽधिकं भाग्यवत्तरोऽस्मीति निश्चिनोमि, यतो मद्ग्रन्थ-मार्मिकस्तु मिथिला-मही-महेन्द्रः, भारत-साम्राज्य-व्यवस्थापक-समाज-सञ्जीवनः, महामान्यः, वदान्यः, धन्य-धन्यः, विविध-बिरुदावली-विराजमानः, राजमानोन्नतः, नतोन्नतिदायकः, महा-राजश्रीरमेश्वरसिंहवीरवर एवास्ति। माद्यन्ति च परश्शता वाराण-स्यादि-पण्डित-मण्डल-मण्डना रसास्वादानुकूल-वासना-वासिता-न्तःकरणा विबुध-जनाः।

सोऽयं स्वलेखनी-कण्डूमुपशमयितुं लिखितः प्रकाण्ड-लेखो यदि केषाञ्चित् पण्डित-प्रकाण्डानां कर्ण-कण्डूं खण्डयेत्; तत् कृतकृत्यः संवर्त्तेय। ये तु पुरोभागिनो निगीर्यापि प्रबन्धममुं तुण्ड-मुण्ड-गण्ड-कण्डूयनैः, ताण्डव-करण्डीकृत-भ्रूभङ्गैश्चास्मानास्माकांश्च हासयिष्यन्ति; तेऽप्यसङ्ख्य-प्रणति-पात्राण्येवास्माकम्। ये तु जोषं जोषमालोक्यापि काव्यानि, समासाद्यापि च तोषम्, सरोषमुज्जृम्भिताभिर्जाठरज्वालाभिरेव तं जारयन्ति; जारयन्ति ते ग्राव्णोऽपि लौहमपि विषमपि दाधीचास्थीन्यपि चेति विलक्षणकुक्षयस्ते न कस्य नमस्याः?

अम्बिकादत्तव्यासः

❁ श्रीः ❁

शिवराजविजयः

गद्यकाव्यम्

विष्णोर्माया भगवती यया सम्मोहितञ्जगत्"

हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते" ।

—भागवतम् ।

वागीश्वर्यै नमः ।

शिवाङ्के खेलन्ती शिवशिरसि गङ्गालहरिकां

समुद्यद्गम्भीरध्वनिभरसमुद्दीपितमदाम् ।

निरीक्ष्योत्का वामा सरलहृदयाऽऽघूर्णितवती

यमासेव्यं देवं तमिह कलये चित्तनिलये ॥

शिवराज-विजय का हिन्दी अनुवाद

स्पर्शेनैव मनोभुवीह जनितां रोमाञ्चरूपाङ्कुराम्

यत्नैर्जातमनोजयोरनुदिनं पत्रादिभिर्वर्द्धिताम् ।

तां पाणिग्रहणाद्भिरेव समये सिक्तां, क्रमात्पुष्पिताम्

स्निग्धां स्नेहलतां स्मरामि गिरिजाकेदारयोः प्रीतये ॥ १ ॥

गहनदर्शनशास्त्रमहातलोदधिनिमज्जनकौतुककारिणी ।

सरससंस्कृतकाव्यसुधाम्बुधिं समवगाहतु मेऽद्य सरस्वती ॥ २ ॥

शिवराजजयं नाम गद्यकाव्यमनूद्यते ।

केदारनाथमिश्रेण छात्रेभ्यो राष्ट्रभाषया ॥ ३ ॥

अरुण एष प्रकाशः पूर्वस्यां भगवतो मरीचिमालिनः । ए

तत्रभवान् कविकुलचूडामणिः सिद्धसरस्वतीकोऽम्बिकादत्तव्यासो वीररस-प्रधानं गद्यकाव्यं चिकीर्षुर्महनीययशसो भारतभागधेयस्य दुर्दान्तोरगजिह्वा-जिह्वोत्पाटनकुशलस्य शिववीरस्य चरितचयनेनैव भारती कृतार्थयितव्येति विहितमनोरथ उपक्षिपति वेदव्यासोक्तिं श्रीमद्भागवतादुद्धृताम्—विष्णोर्मा-येति । वेवेष्टि व्याप्नोति चराचरात्मकं प्रपञ्चमिति विष्णुर्ब्रह्म, तस्य मायाः सत्त्वप्रधानः शक्तिविशेषः । सा चैषा भगवती=समग्रषड्गुणसम्पन्ना ।

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥

इति प्रसिद्धो भगपदार्थः—तद्वत्त्वञ्च भगवत्त्वम् । यया=मायया-र्थप्रा-गच्छतीति जगत् स्थावरस्याप्युपलक्षणम् । सम्मोहितम्=सम्यग्रूपेण मोहितम् ।

हिंस्रः=घातुकः । खलः=दुष्टः । स्वस्यैव पापेन विहिंसितो भवति नतु तत्र निमित्तान्तरापेक्षा । साध्नोति परकार्यमिति साधुः । तथाभूतः समत्वेन=विवेचकत्वेन । भयाद्विमुच्यते=अपगतभयो भवति । तत्रा-तस्य समत्वमेव हेतुर्न बीजान्तरापेक्षा । तदुक्तम् "न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः" इति । एतेनाऽऽद्यनिश्वासे पापिनामशोभनाः साधूनां शोभना आचाराः प्रदर्शिता भवेयुरित्युपक्षिप्तम् । सर्वञ्चेदं सर्वतन्त्रस्वतन्त्र-भगवतो मायया त्रिगुणात्मिकया निबद्धैरेव समास्थीयत इति, का

भगवान् विष्णु की माया, जिसने सम्पूर्ण जगत् को मोह में डाल रखा है, सकल ऐश्वर्यशालिनी है ।

दुष्ट हिंसक अपने पाप से ही मारा गया और सज्जन अपनी समत्वबुद्धि के कारण भय से बच गया ।

पूर्व दिशा में भगवान सूर्यदेव की यह लालिमा है । यह भगव

भगवान् मणिराकाशमण्डलस्य, चक्रवर्ती खेचर-चक्रस्य, कुण्डल-माखण्डलदिशः, दीपको ब्रह्माण्डभाण्डस्य, प्रेयान् पुण्डरीक-पटलस्य, शोक-विमोकः कोक-लोकस्य, अवलम्बो रोलम्बकदम्बस्य,

---

हिन्दुकन्या केनचन दुष्टेन हृता रक्षिता च सा साधुना, दुष्टनाशश्च स्वपापेनैव संवृत्त इति कथाभागश्च। विष्णुनामग्रहणेन मङ्गलमपि शिष्टाचारानुमित-श्रुतिबोधितेतिकर्त्तव्यताकं सूचितम्।

कथाभागं प्रारभमाणो भगवदादित्यप्रकाशात्मवस्तुनिर्देशरूपमपि मङ्गलं समाचरति—अरुण एष इति। पूर्वस्यामिति—"दिशि" इति विशेष्यम्। मरीचीनां मालाऽस्यास्तीति मरीचिमाली=दीधितिपतिः। बहुव्रीहीतरसमा-सोपलक्षककर्मधारयपदघटितमपि "न कर्मधारयान्मत्वर्थीयो बहुव्रीहिश्चेत्तद-र्थप्रतिपत्तिकर" इति वचनं न सार्वत्रिकम्, 'असुब्वत्' इति भाष्यप्रयोगा-दिति ध्येयम्। अरुणः=ईषल्लोहितः। "ज्योतिषां रविरंशुमान्" इति भगवद्विभूतिसमूहपातित्वेन भगवत्त्वं सर्वथा स्फुटम्। अथाऽऽदित्यं विशिनष्टि-एप भगवानिति। "दिनस्य" इत्यन्तं मालारूपकालङ्कारो वैदर्भी रीतिः प्रसादाख्यश्च गुणः। मणिः=रत्नम्। यथा हीरकादिरन्धकारं वारयति प्रकाशयति च पदार्थसार्थं तथाऽयमपि बाह्याभ्यन्तरतमोऽपवार्य प्रकाशयति सकलानर्थानिति मणित्वेन रूपणम्। खे नभसि चरन्ति गच्छन्तीति खेचराः=भगणाः, तेषां चक्रस्य=समूहस्य, चक्रवर्त्ती=सम्राट्। सैन्यं प्रवर्त्तयति सम्राट्, दिनाधिपोऽपि सर्वं ग्रहगणमिति रूपणम्। आखण्डल-दिशः=इन्द्रसम्बन्धिन्याः प्राच्या नायिकायमानायाः। कुण्डलम्=कर्णा-भरणविशेषः। वर्त्तुलत्वमारोपबीजम्। ब्रह्माण्डमेव भाण्डम्=सदनम्, तस्य दीपकः। प्रकाशकत्वमत्राऽऽरोपहेतुः। पुण्डरीकाणाम्=कमलानाम्, "पुण्डरीकं सिताम्भोजम्" इति विशेषग्रहणन्तु नात्र, श्वेतत्वस्याविवक्षित-त्वात्, पटलस्य=समूहस्य। प्रेयान्=अतिशयेन प्रियः। कोकानाम्=

सूर्यदेव आकाशमण्डल के रत्न,, नक्षत्रसमूह के सम्राट्, इन्द्र की दिशा (पूर्व) रूपी नायिका के कुण्डल, ब्रह्माण्ड रूपी गृह के दीपक, कमलकुल

सूत्रधारः सर्वव्यवहारस्य, इनश्च दिनस्य। अयमेव अहोरात्रं जनयति, अयमेव वत्सरं द्वादशसु भागेषु विभनक्ति, अयमेव कारणं षण्णामृतूनाम्, एष एवाङ्गीकरोति उत्तरं दक्षिणं चायनम्, एनेनैव सम्पादिता युगभेदाः, एनेनैव कृताः कल्पभेदाः, एनमेवाऽऽश्रित्य भवति

चक्रवाकाणाम्, लोकस्य=समुदायस्य। शोकस्य विमोकः=मोक्षः। रूपकम्। कोकमिथुनानां रात्रिविरहः कविसमयख्यातः। अत्र बहुव्रीहिप्रदर्शनं टीकाकृतामनपेक्षितमसाम्प्रदायिकञ्च, बहुव्रीहिसंग्राह्याभिधेयस्य समारोपणादेवोपपत्तेः। रोलम्बानाम्=भ्रमराणाम्, कदम्बस्य=समूहस्य। अवलम्बः=आश्रयः। सर्वश्चासौ व्यवहारः=ऐहिकामुष्मिकलक्षणो व्यापारः, तस्य, सूत्रधारः=प्रवर्त्तयिता। दिनस्य, इनः=स्वामी। "इनः सूर्ये प्रभौ" इति कोशः। इनपदस्य स्वामिसूर्योभयवाचित्वेऽप्यत्राऽऽद्यपर्यायत्वमेवेति ध्येयम्। अथ स्वभावोक्त्याऽलङ्करोति तमेव भगवन्तम्—अयमेवेति। अहश्च रात्रिश्चाहोरात्रस्तम्। शशधरेऽपि किरणानुप्रवेशद्वारा विकाशकत्वमेतदीयमेवेति भवति द्वितयजनकत्वमेवकारसार्थक्यञ्चेति विवेचनापटवः। जनयति=प्रादुर्भावयति। वत्सरम्=हायनम्। द्वादशसु भागेषु=मेषादिमासरूपेषु। विभनक्ति=विभजते। "भञ्जो आमर्दने" इत्यस्य रूपम्। भवति चात्र मानवं शासनम् 'अहोरात्रे विभजते सूर्यो मानुषदैविके' इति। षण्णामृतूनाम्=वसन्तग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्तशिशिराणाम्। कारणम्=हेतुः। अयनम्=सूर्यमार्गः। युगानाम्=कृतत्रेताद्वापरकलीनाम्। भेदाः=विभागाः। एनेनैव सूर्येणैव, अन्वादेशत्वादेनादेशः। कल्पभेदाः, षष्ठीतत्पुरुषः। कल्पश्चैक-

---

के प्रेमपात्र, चक्रवाकों का शोक दूर करने वाले, भ्रमर समूह के आश्रय, समस्त व्यवहार के प्रवर्तक और दिन के स्वामी हैं। ये ही दिन और रात के जनक हैं, ये ही वर्ष को बारह भागों में विभाजित करते हैं, ये ही छः ऋतुओं के कारण हैं और ये ही उत्तरायण तथा दक्षिणायन (उत्तर और दक्षिण मार्ग) का अवलम्बन करते हैं। इन्होंने ही सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग का भेद किया है, इन्होंने ही कल्पों का विभाग किया है,

परमेष्ठिनः पराद्धसङ्ख्या, असावेव चर्कर्त्ति बर्भर्ति जर्हर्त्ति च जगत्, वेदा एतस्यैव वन्दिनः, गायत्री अमुमेव गायति, ब्रह्मनिष्ठा ब्राह्मणा अमुमेवाहरहरुपतिष्ठन्ते। धन्य एष कुलमूलं श्रीरामचन्द्रस्य, प्रणम्य एष विश्वेषामिति उदेष्यन्तं भास्वन्तं प्रणमन्

सहस्रमहायुगात्मकः ख्यातः कालविदाम्। परमेष्ठिनः=विधातुः। पराद्धसङ्ख्या=अन्तिमा पराद्धनाम्ना ख्याता संख्या। चर्कर्त्ति=पुनः पुनः करोति। यङ्लुगन्तम्। यङ्लुकश्छान्दसत्वं तु न वैयाकरणसम्प्रदायसिद्धं न वा महाकविजनानुमोदितमिति भूयो भूयः प्रयोगान् प्रदर्शयति। यङ्लुगन्तत्रितयेनोत्पत्तिस्थिति-लयकर्तृत्वं निवेदितम्। वन्दिनः=स्तुतिपाठकाः। वेदाः=ऋग्-यजुःसामाथर्वाभिधाः। एतेन सूर्ये ब्रह्मदृष्टिरिति सूचितम्। "अन्तस्तद्धर्मोपदेशात्" इत्यधिकरणे हि निर्णीतमादित्योपाधिब्रह्मस्तूयमानत्वम्। अत एव "गायत्र्यमुमेव गायती" त्येवकारसहितं वाक्यं स्वरसतः सङ्गच्छते। गायत्र्याश्च मुख्यं वाच्यं ब्रह्मैवेति बृहदारण्यकादिषु सुनिरूपितम्। "गायन्तं त्रायत" इति तद्व्युत्पत्तिरप्यत एवोपपद्यते। ब्रह्मणि निष्ठा येषां ते, वेदपारगा इत्यर्थः। उपतिष्ठन्ते=उपासते। "उपाद्देवपूजा-सङ्गतिकरण-मित्रकरण-पथिष्वि" त्यात्मनेपदम्। भास्वन्तम्=सूर्यम्। "भास्वद्विवस्वत्सप्ताश्वहरिदश्वोष्णरश्मय" इत्यमरः। भास्वत्त्वं प्रणतिहेतुः। प्रणामो हि स्वापकृष्टत्वबोधनम्, तच्च प्रणम्ये गुणेषु सत्स्वेवेति न तिरोहितम्।

इनका आधार लेकर ही ब्रह्मा की परार्द्ध (सबसे बड़ी और अन्तिम) संख्या पूरी होती है और ये ही बार बार जगत् की सृष्टि, पालन और संहार करते हैं। वेद इन्हीं की वन्दना करते हैं, गायत्री इन्हीं का गान करती है और ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मण प्रतिदिन इन्हीं की उपासना करते हैं। भगवान रामचन्द्र के कुल के मूल ये सूर्यदेव धन्य हैं। ये भगवान सूर्य सभी के प्रणम्य हैं, यह विचार कर, उदय होते हुए सूर्य को प्रणाम करता

निजपर्णकुटीरात् निश्चक्राम कश्चित् गुरुसेवन-पटुर्विप्रबटुः । "अहो ! चिररात्राय सुप्तोऽहम्, स्वप्नजालपरतन्त्रेणैव महा पुण्यमयः समयोऽतिवाहितः, सन्ध्योपासन-समयोऽयमस्मद्गुरु चरणानाम्, तत्सपदि अवचिनोमि कुसुमानि" इति चिन्तयन् कदली दलमेकमाकुञ्च्य, तृणशकलैः सन्धाय, पुटकं विधाय, पुष्पावचय कर्त्तुमारेभे ।

ह्रस्वा कुटी कुटीरः । "कुटीशमीशुण्डाभ्यो रः" । गुरुसेवने पटुः=कुशलः विप्रश्चासौ विप्रस्य वा बटुर्विप्रबटुः=ब्राह्मणब्रह्मचारी ।

अहो=साश्चर्यखेदे नैत्यिककर्मानुष्ठानकाललोपोत्थे ।

'नोपतिष्ठति यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम् ।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः ॥'

इत्यादिभिः सन्ध्यावन्दनादिनित्यकर्माननुष्ठाने प्रत्यवाय-स्मरणेन शयना दिना तत्कालातिवाहने स्वाभाविको हि क्षोभः सताम् । चिररात्राय=चिरम् "चिराय चिररात्राय चिरस्याद्याश्चिरार्थका" इत्यमरः । स्वप्नः=निद्रा, स ए जालम्=आनायः, तत्परतन्त्रेण=तदायत्तेन । पुण्यमयः, "ब्राह्मे मुहू बुध्येत धर्मार्थौ चानुचिन्तयेदि"ति मनूक्त्या । सपदि=सत्वरम् । अव चिनोमि=संकलयामि । कदली=रम्भा, तस्या दलम्=पत्रम् । आकु ञ्च्य=भुग्नं विधाय । तृणानां शकलैः=खण्डैः । सन्धाय=संमेल्य पुटमेव पुटकम्=समुद्गः । "दोना" इति हिन्दी । पुष्पाणाम्, अवचय =संग्रहः, लवनं वा, तम् ।

हुआ, कोई गुरुसेवा में कुशल ब्राह्मण बालक अपनी पर्णकुटी से बाह निकला ।

ओह, मैं बहुत देर तक सोता रहा, निद्रारूपी जाल में फँस कर मैंने ब पुण्यमय समय गवाँ दिया, यह हमारे गुरुजी की सन्ध्योपासना का सम है । इसलिये तुरन्त फूल तोड़ लाऊँ, यह सोचता हुआ वह, केले के ए पत्ते को मोड़ कर, तिनकों से जोड़ कर, दोना बना कर, फूल चुनने लगा

बटुरसौ आकृत्या सुन्दरः, वर्णेन गौरः, जटाभिर्ब्रह्मचारी, वयसा षोडशवर्षदेशीयः, कम्बुकण्ठः, आयतललाटः, सुबाहुर्विशाललोचनश्चाऽऽसीत्। M. Guha

कदलीदलकुञ्जायितस्य एतत्कुटीरस्य समन्तात् पुष्पवाटिका, पूर्वतः परम-पवित्र-पानीयं परस्सहस्र-पुण्डरीक-पटल-परिलसितं पतत्रि-कुल-कूजित-पूजितं पयःपूरपूरितं सर आसीत्। दक्षिणतश्चैको निर्झर-

आकृत्या = आकारेण। "प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानमि" तितृतीया। वर्णेनेत्यत्रापि। जटाभिः = सटाभिः। "इत्थंभूतलक्षण"इति तृतीया। जटाज्ञाप्यब्रह्मचारित्वसंवलित इत्यर्थः। षोडशवर्षदेशीयः = ईषदसमाप्त-षोडशवर्षः। "ईषदसमाप्तौ कल्पब्देश्यदेशीयरः" कम्बुरिव कण्ठो यस्य स शङ्खग्रीव इत्यर्थः।

कुञ्ज इव = लतादिपिहितोदर इव, आचारीदित्यकुञ्जायिष्ट। "कर्तुः क्यङ्सलोपश्चे"ति क्यङन्तात् क्ते कुञ्जायितम्। कदलीदलैः कुञ्जायितस्येति समासः। लुप्तोपमालङ्कारः। समन्तात् = परितः। पूर्वतः = पूर्वस्याम्। "तसिलादिष्वाकृत्वसुच" इति पुंवत्त्वम्। परस्सहस्राणाम् = सहस्राधिकानाम्, पुण्डरीकाणाम् = सिताम्भोजानाम्, पटलेन = समूहेन, परतः सर्वतः, लसितम् = शोभितम्। पतत्रिणाम् = पक्षिणाम्, कुलस्य = गणस्य, कूजितेन = शब्देन, पूजितम् = विराजितम्। पयसां पूरेण =

उस बालक की आकृति सुन्दर थी और रंग गोरा था। जटाओं से वह ब्रह्मचारी प्रतीत होता था और अवस्था लगभग सोलह वर्ष की थी। उसका कण्ठ शङ्ख का सा और ललाट विस्तीर्ण था, भुजाएँ प्रशस्त और आँखें बड़ी-बड़ी थीं।

चारों ओर से केले के वृक्षों से घिरी होने के कारण कुञ्ज के समान लगने वाली इस पर्णकुटी के चारों ओर पुष्पवाटिका थी। पूर्व की ओर, परमपवित्र जल वाला, सहस्रों श्वेतकमलों से पूर्ण, पक्षियों के कलरव से सुशोभित और पानी से लबालब भरा एक तालाब था। दक्षिण की ओर

झर्झर-ध्वनि-ध्वनित-दिगन्तरः फल-पटलाऽऽस्वाद-चपलित-च
पतङ्ग-कुलाऽऽक्रमणाधिक-विनत-शाख-शाखि-समूह-व्याप्तः सुन्
कन्दरः पर्वतखण्ड आसीत् ।

यावदेष ब्रह्मचारी बटुरलिपुञ्जमुद्धूय कुसुमकोरकानवचिनो

प्रवाहेण, पूरितम्=भरितम् । विशेषणानीमानि चत्वारि सरसो वि
भूतस्य । दक्षिणतः=दक्षिणस्यां दिशि । पर्वतखण्ड आसीदित्यन्व
पर्वतखण्डः=प्रत्यन्तपर्वतः "टेकरी" इति हिन्दी । विशिनष्टि
षणत्रयेण—निर्झरस्य=प्रवाहस्य, "वारिप्रवाहो निर्झरो झर" इत्यमरः, झ
ध्वनिना ध्वनितम्=नादितम् , दिगन्तरम्=दिक्प्रान्तभागो यस्य
झर्झर इति जलशब्दानुकृतिः । फलानां पटलस्य=समूहस्य, आस्वाद
भक्षणेन, चपलिताः=चञ्चलाः, चञ्चवः=त्रोटयः, "चञ्चुस्त्रोटिरुभे स्त्रि
इत्यमरः, येषां ते च ते पतङ्गाः=पक्षिणः, "पतङ्गौ पक्षिसूर्यौ च"
मरः, तेषां कुलम्=समूहः, तस्याक्रमणेन, अधिकम्=अत्यन
विनताः=नम्रीभूताः, शाखाः=शिखाः, "शिखा शाखा शिफा व
त्यमरः, येषां ते च ते शाखिनः=वृक्षाः, "वृक्षो महीरुहः शाखी वि
पादपस्तरुरि" त्यमरः, तेषां समूहेन व्याप्तः=आवृतः । सुन्दरा
शोभनाः, कन्दराः=गुहाः, यस्य सः । "दरी तु कन्दरो वा स्त्री" त्यम
अत्रानुप्रासः शब्दालङ्कारो गौडी च रीतिः ।

ब्रह्म=वेदः, तदध्ययनार्थं व्रतमपि ब्रह्म, तच्चरतीति ब्रह्मचारी । "
चर्यमहिंसा चे" त्यादौ तु यमभेदविशेषस्य मैथुनत्यागस्यैव ब्रह्मचर्यपदवाच्य
अलीनाम्=भ्रमराणाम् , पुञ्जः=राशिः, "स्यान्निकायः पुञ्जराशी"

झरने की झर-झर ध्वनि से दिशाओं को मुखरित करनेवाली, फल
से चञ्चल हो गई चोंच वाले पक्षियों के फुदक फुदक कर बैठने से
भी अधिक झुक जाने वाली शाखाओं वाले पेड़ों से व्याप्त, तथा सु
गुफाओं वाली एक पहाड़ी (या टेकरी) थी ।

ज्यों ही वह ब्रह्मचारी बालक भौरों को उड़ाकर, फूल की कलि

तावत् तस्यैव सतीर्थ्योऽपरस्तत्समानवयाः कस्तूरिका-रेणु-रूषित इव श्यामः, चन्दन-चर्चित-भालः, कर्पूरागुरु-क्षोद-च्छुरित-वक्षो-बाहु-दण्डः, सुगन्ध-पटलैरुन्निद्रयन्निव निद्रा-मन्थराणि कोरक-निकुरम्बकान्तराल-सुप्तानि मिलिन्द-वृन्दानि झटिति समुपसृत्य निवारयन् गौरबटुमेवमवादीत्—

मरः, तम् ,अवधूय = निवार्य । कुसुमानां कोरकाः = कलिकाः, "कलिका कोरकः पुमानि" त्यमरः, तान् । अवचिनोति = संकलयति । सतीर्थ्यः = सहाध्यायी । "समानतीर्थे वासी"ति यप्रत्यये "तीर्थे य" इति सादेशः । "सतीर्थ्यास्त्वेकगुरव" इत्यमरः । तेन समानं वयः = अवस्था, यस्य सः । सतीर्थ्यं विशिनष्टि चतुर्भिर्विशेषणैः । श्याम इत्याद्यं विशेषणम् । स्वभावतः कृष्णवर्णं तमुत्प्रेक्षते-कस्तूरिकायाः=मृगनाभेः, रेणुभिः=रजोभिः, रूषित इव = छुरित इव । चन्दनेन = गन्धसारेण, चर्चितम् = लिप्तम् ,भालम्= ललाटम् , यस्य सः । कर्पूरस्य = घनसारस्य, अगुरोः=नृपार्हस्य, "अगर" इति हिन्दी, च क्षोदेन=चूर्णेन, छुरितम्=व्याप्तम् , वक्षोबाहु-दण्डम्=उरःस्थलभुजद्वयम् , यस्य सः । सुगन्धपटलैः=सौरभसमूहैः, निद्रया मन्थराणि = अलसानि । कोरकाणाम्=कलिकानाम् , निकुरम्बकाणि=वृन्दानि, "निकुरम्बं कदम्बकम्" इत्यमरः । तेषाम् , अन्तराले=अभ्यन्तरे, सुप्तानि = शयानानि । मिलिन्दानाम्= भ्रमराणाम् , वृन्दानि = समूहान् । उन्निद्रयन्निव = जागरयन्निव । अन्वयमनुसृत्यात्र व्याख्यातम् । सुगन्धलोलुपा द्विरेफाः श्यामबटुशरीरानुलिप्त-

तोड़ने लगा, उसका सहपाठी और समवयस्क दूसरा ब्रह्मचारी जो कस्तूरी की बुकनी से सना हुआ सा साँवले रंग का था, मस्तक पर चन्दन लगाये था, और वक्षःस्थल तथा बाहुओं पर कपूर और अगर की बुकनी रमाये था—नींद से अलसाये और कलियों के अन्दर सोये हुए भौरों को सुगन्ध की गमक से जगाता हुआ सा, झटपट समीप आकर, उस गोरे बालक को मना करता हुआ बोला—

अलं भो अलम् ! मयैव पूर्वमवचितानि कुसुमानि, त्वं तु चिरं रात्रावजागरीरिति क्षिप्रं नोत्थापितः, गुरुचरणा अत्र तडागतटे सन्ध्यामुपासते, संस्थापिता मया निखिला सामग्री तेषां समीपे। यां च सप्तवर्षकल्पाम्, यावनत्रासेन निःशब्दं रुदतीम्, परम-सुन्दरीम्, कलित-मानव-देहामिव सरस्वतीं सान्त्वयन्, मरन्द-

---

चन्दन-घनसार-कस्तूरिका-परिमलमाघ्राय पुष्पेभ्य उड्डीय तच्छरीरनिपतनोत्सुकाः सञ्जाता इति स्वाभाविकवार्ताया जागरणमुखेनात्रोत्प्रेक्षणम्।

अलं भो अलम्, पुष्पावचयं निषेधति। इतः परं काश्चित्स्थलविशेषानपहाय वृत्तकं नाम गद्यम्। "अकठोराक्षरं स्वल्पसमासं वृत्तकं मतम्" इति तल्लक्षणात्, एतदेव "अनाविद्धपदं चूर्णम्" इति वामनसूत्रे चूर्णक-नाम्नाऽभिहितम्। अजागरीः, "जागृ" धातोर्लुङि सिपि रूपम्। सप्तवर्ष-कल्पाम्=असमाप्तसप्तवर्षाम्। यवनेभ्य आगतो यवनानां वाऽयं यावनः, स चासौ त्रासस्तेन। यवनजवनशब्दौ संस्कृतसाहित्ये समायातौ। आद्यो वशिष्ठविश्वामित्रसंग्रामे धेनुस्तनसमुत्पन्नेषु रूढः, परश्च सगरसंग्रामे वशिष्ठ-परित्याजितार्यधर्मेषु सागरपारस्थक्षत्रियेष्विति त्यक्तमहामहोपाध्यायपदवीकाः शक्तिसम्प्रदायाचार्याः श्रीपञ्चाननतर्करत्नभट्टाचार्याः। तन्मतानुसरणे भारतसमागतेष्वेषु जवनशब्दप्रयोग एवोचित इति भाति। कलितः—धारितः मानवो देहः, यया सा, ताम्, मानवरूपेणावतीर्णां सरस्वती-मिवेत्युत्प्रेक्षा। मरन्देन=पुष्परसेन, मधुराः=मिष्टाः, अपां विशेषणम्। "अयि दलदरविन्द ! स्यन्दमानं मरन्दम्, तव किमपि लिहन्तो

बस भाई बस। फूल मैंने पहले ही तोड़ रखे हैं। तुम रात में देर तक जागते रहे थे इसीलिये तुम्हें जल्दी नहीं जगाया। गुरु जी यहाँ तालाब के किनारे सन्ध्योपासना कर रहे हैं। मैंने सारी सामग्री उनके पास पहुँचा दी है। जिस, लगभग ७ वर्ष की अवस्था वाली, यवनों के भय से सिसकियाँ भर भर कर रोने वाली, परम सुन्दरी, मानवशरीर धारण करके आई हुई सरस्वती के समान, कन्या को, ढाढस बँधाते, मधुर जल

मधुरा अपः पाययन्, कन्दखण्डानि भोजयन्, त्वं त्रियामाया यामत्रयमनैषीः; सेयमधुना स्वपिति, उद्बुद्धय च पुनस्तथैव रोदिष्यति, तत्परिमार्गणीयान्येतस्याः पितरौ गृहं च—"

इति संश्रुत्य उष्णं निःश्वस्य यावत् सोऽपि किञ्चिद्वक्तुमियेष तावदकस्मात् पर्वतशिखरे निपपात उभयोर्दृष्टिः।

तस्मिन् पर्वते आसीदेको महान्कन्दरः। तस्मिन्नेव महामुनिरेकः समाधौ तिष्ठति स्म। कदा स समाधिमङ्गीकृतवानिति कोऽपि न वेत्ति। ग्रामणी-ग्रामीण-ग्रामाः समागत्य मध्ये मध्ये तं पूज-

मञ्जु गुञ्जन्तु भृङ्गा" इति पण्डितराजपद्ये प्रयुक्तोऽयं मरन्दशब्दः। मरम्=भ्रमरमरणम्, द्यति=खण्डयतीति मरन्दः भ्रमरजीवनम्, मकरन्द इति व्युत्पत्तिलभ्यत्वमर्थस्य। पाययन्, णिजन्ताच्छतरि। कन्दाः=ऋषीणां खाद्यविशेषाः। "शालूकं कन्दमौत्पलम्" "कन्दमस्त्री मूलसस्यम्" इति च वैजयन्ती। त्रियामायाः=रात्रेः। "रात्रिस्त्रियामा क्षणदा क्षपे" त्यमरेण रूढत्वम्। अत एव यामत्रयमिति प्रहरत्रयार्थकं सङ्गच्छते। परिमार्गणीयानि=अन्वेषणीयानि। नपुंसकमनपुंसकेनेत्येकशेषः।

वक्तुमियेष=कथयितुमिच्छति स्म।

समाधौ=चित्तवृत्तिनिरोधात्मके योगे। ग्रामण्यः=ग्रामाधिपाः, 'लम्बरदार, जमीन्दार', इति हिन्दी, ते च ते, ग्रामे भवा ग्रामीणाः=ग्रामवासिनः,

पिलाते और कन्दों के टुकड़े खिलाते हुए, तुमने रात के तीन पहर बिता दिये थे, वह इस समय सो रही है, जागने पर फिर वैसे ही रोयेगी, इसलिये उसके माता-पिता और घर का पता लगाना चाहिये।

यह सुन कर गर्म साँस लेकर, ज्यों ही उसने भी कुछ कहना चाहा, त्यों ही अचानक उन दोनों की निगाह पहाड़ी की चोटी पर पड़ी।

उस पर्वत में एक बहुत बड़ी गुफा थी। उसमें एक महामुनि समाधि लगायें थे। उन्हांने समाधि कब लगाई थी इसका पता किसी को न था।

यन्ति प्रणमन्ति स्तुवन्ति च । तं केचित् कपिल इति, अपरे लोमश इति, इतरे जैगीषव्य इति, अन्ये च मार्कण्डेय इति विश्वसन्ति स्म स एवायमधुना शिखरादवतरन् ब्रह्मचारि-वटुभ्यामदर्शि ।

"अहो ! प्रबुद्धो मुनिः ! प्रबुद्धो मुनिः ! इत एवाऽऽगच्छति इत एवाऽऽगच्छति, सत्कार्योऽयम् सत्कार्योऽयम्" इति तौ सम्भ्रान्तौ बभूवतुः ।

अथ समापित-सन्ध्यावन्दनादिक्रिये समायाते गुरौ, तदाज्ञ

तेषां ग्रामाः=समूहाः । श्रुत्यनुप्रास-प्रदर्शनमात्रफलकोऽयम् । सरसे रौद्रादि रसाभाववति प्रकृते दोषत्वमेतस्येति केचित् । तम्=समाधिनिरतम् । कपिल लोमशजैगीषव्यमार्कण्डेयाश्चिरञ्जीविनो महर्षयः।"नारद इत्यबोधि स"इत्यादि वदितिना निपातेनाभिहितत्वान्न तेषां द्वितीयान्तता विश्वसन्तिक्रियाकर्मत्वे ऽपीति बोध्यम् । गृहीतृभेदादेकस्यैवानेकधोल्लेखादुल्लेखालङ्कारः । अदर्शि =दृष्टः । कर्मणि लुङि रूपम् ।

सत्कार्यः=आदरणीयः । सम्भ्रान्तौ=क्षुभितौ । बहोः काल कन्दरायां निवसन् मुनिरकस्माद्बहिरायात इति हर्षोद्रेकेण व्याकुलौ बभूवतुः अत एव च तदुक्तिषु साम्रेडता ।

समापिता सन्ध्यावन्दनादिक्रिया येन सः, तथाभूते । आदिना स्वो

कभी कभी ग्राम-प्रधान और ग्रामीण उनका पूजन, वन्दन और स्तव कर आते थे । उन्हें कोई कपिल, कोई लोमश, कोई जैगीषव्य और को मार्कण्डेय समझता था । दोनों ब्रह्मचारियों ने, इस समय, उन्हीं शिखर से उतरते देखा ।

"अहा ! मुनि जग गये ! मुनि जग गये ! इसी ओर आ रहे हैं, इ ओर आ रहे हैं, इनका सत्कार करना चाहिये, इनका सत्कार कर चाहिये" यह कहते हुए वे दोनों शीघ्रता करने लगे ।

तदनन्तर, सन्ध्यावन्दन आदि कृत्य समाप्त कर के गुरु के आ जा और उनकी आज्ञा से गोरे ब्रह्मचारी के, सन्ध्यावन्दन आदि नित्य

नित्यनियम–सम्पादनाय प्रयाते गौरवटौ, छात्रगण-सहकारेण प्रस्तुतासु च स्वागत–सामग्रीषु, "इत आगम्यतां सनाथ्यतामेष आश्रम" इति सप्रणाममभिगम्य वदत्सु निखिलेषु, योगिराज आगत्य तन्निर्दिष्ट-काष्ठ-पीठं भास्वानिवोदयगिरिमारुरोह, उपाविशच्च।

तस्मिन् पूज्यमाने, "योगिराडुत्थित इति, आयात इति च" आकर्ण्य कर्णपरम्परया बहवो जनाः परितः स्थिताः। सुघटितं शरीरम्, सान्द्रां जटाम्, विशालान्यङ्गानि, अङ्गारप्रतिमे नयने, मधुरां गम्भीराञ्च वाचं वर्णयन्तश्चकिता इव सञ्जाताः।

देवतापूजन-स्वेष्टगुरुमन्त्रजपादिः। नित्या ये नियमाः=सन्ध्यावन्दनादयः-तेषां सम्पादनाय। छात्रगणस्य, सहकारेण=साहाय्येन। स्वागत-सामग्रीषु=उपचारद्रव्येषु। "यस्य च भावेन भावलक्षणम्" इति भावाधिकरणे सप्तमी। प्रस्तुतासु=सन्नद्धासु। सनाथ्यताम्=समलंक्रियताम्। निखिलेषु=समुपस्थितेषु सर्वेषु। जनेष्विति शेषः। काष्ठपीठम्=दारुनिर्मितां चतुष्पादिकाम्। "चौकी" इति हिन्दी। उदयगिरिमिव=उदयाचलमिव। आरुरोह=अधिशिश्रिये। उपाविशत्=आसितवान्। न सूर्य इवाधिश्रित्य दूरं गतोऽपि तु तत्रैव स्थित इति क्रियाद्वयमुपात्तम्। उपमालङ्कारः।

सुघटितम्=यथावस्थित–शोभनाङ्ग-संस्थानम्। सान्द्राम्=घनाम्। अङ्गारप्रतिमे=अङ्गारसदृशे, प्रतिमाशब्दोऽत्रोपमावाचकः, दृष्टश्च तादृशेऽर्थे "न तस्य प्रतिमा अस्ति" इति वेदे, "गतः सुखान्यप्रतिमानि

करने के लिये, चले जाने पर, छात्रों के सहयोग से स्वागत सामग्री के प्रस्तुत हो जाने और प्रणामपूर्वक सभी उपस्थित लोगों के "इधर पधारिये, इस आश्रम को सनाथ कीजिये" यह कहने पर, योगिराज आकर, उनके द्वारा निर्दिष्ट चौकी पर, उदयाचल पर सूर्य की भाँति चढ़कर बैठ गये।

उनकी पूजा हो ही रही थी कि 'योगिराज समाधि से जग गये हैं और यहाँ आये हैं' यह समाचार एक दूसरे से सुनकर, चारों ओर लोगों की भीड़ लग गई। उनके सुगठित शरीर, घनी जटाओं, विशाल

अथ योगिराजं सम्पूज्य यावदीहितं किमपि आलपितुम्, तावत् कुटीराद् अश्रूयत तस्या एव बालिकायाः सकरुण-रोदनम्।

ततः "किमिति? कुत इति? केयमिति? कथमिति?" पृच्छा-परवशे योगिराजे ब्रह्मचारिगुरुणा बालिकां सान्त्वयितुं श्यामबटु-मादिश्य कथितम्—

भगवन्! श्रूयतां यदि कुतूहलम्। ह्यः सम्पादित-सायन्तन-कृत्ये, अत्रैव कुशाऽऽस्तरणमधिष्ठिते मयि, परितः समासीनेषु छात्र-वर्गेषु, धीर-समीर-स्पर्शेन मन्दमन्दमान्दोल्यमानासु व्रततिषु,

---

हित्वे"ति वाल्मीकीये च। पृच्छा=प्रश्नः, तत्परवशे=तत्परतन्त्रे।

कुतूहलम्=कौतुकम्। वृत्तान्त-ज्ञानोत्कण्ठेति यावत्। ह्यः=गतदिवसे सम्पादितम्=विहितम्, सायन्तनम्=सायंभवम्, कृत्यम्=सन्ध्यादि येन तादृशे। कुशास्तरणम्=कुशासनम्। "कुश की चटाई" इति हिन्दी। 'अधिशीङ्' इति कर्मसंज्ञा। धीरः=मन्दगतिः, समीरः=वायुः, तस्य स्पर्शेन। आन्दोल्यमानासु=सञ्चाल्यमानासु। व्रततिषु=लतासु। 'वल्ली तु व्रततिर्लता' इत्यमरः।

अंगों, अंगारों के समान (लाल) नेत्रों और मधुर गम्भीर वाणी का बखान करते हुए लोग चकित और मन्त्रमुग्ध से हो गये।

तदनन्तर, योगिराज का विधिवत् पूजन-सत्कार कर, ज्यों ही ब्रह्मचारी के गुरु ने उनसे कुछ पूछना चाहा, त्यों ही कुटी से उस बालिका का करुण क्रन्दन सुन पड़ा। तब योगिराज के, "यह क्यों रो रही है? कहाँ से आई है? कौन है? कैसे आई" यह पूछने पर ब्रह्मचारी के गुरु ने साँवले ब्रह्मचारी को बालिका को ढाढस बँधाने के लिये भेज कर, कहना प्रारम्भ किया—

भगवन्! यदि आपको इसका वृत्तान्त जानने की उत्कण्ठा है तो सुनिये। 'कल, सायंकालीन नित्यकर्म से निवृत्त होकर, मैं यहीं कुशासन पर बैठा हुआ था और मेरे चारों ओर छात्रगण बैठे थे,

समुदिते यामिनी-कामिनी-चन्दनबिन्दौ इव इन्दौ, कौमुदी-कपटेन सुधाधारामिव वर्षति गगने, अस्मन्नीतिवार्तां शुश्रूषुषु इव मौनमाकलयत्सु पतग-कुलेषु, कैरव-विकाश-हर्ष-प्रकाश-मुखरेषु चञ्चरीकेषु, अस्पष्टाक्षरम्, कम्पमान-निःश्वासम्, श्लथत्कण्ठम्, घर्घरितस्वनम्, चीत्कारमात्रम्, दीनतामयम्, अत्यवधानश्रव्यत्वादनुमितदविष्ठं क्रन्दनमश्रौषमे तत्क्षणमेव च "कुत इदम्? किमिदमिति दृश्यतां

इन्दौ = चन्द्रमसि। समुदिते = उदयं प्राप्ते। चन्द्रमसं रूपयति—यामिनी = निशीथिनी, सैव कामिनी = ललना, तस्याः, चन्दनबिन्दौ = ललाट-तिलके इव। कौमुदी = चन्द्रिका, "चन्द्रिका कौमुदी ज्योत्स्ने" त्यमरः, तस्याः कपटेन = व्याजेन। वर्षतीवेत्युत्प्रेक्षा। पतगकुलेषु = पक्षिसमूहेषु। मौनम् = निःशब्दताम्, आकलयत्सु = आश्रयत्सु। किमिति मौनावलम्बनमित्युत्प्रेक्षते—अस्मन्नीतीति। शुश्रूषुषु = श्रोतुमिच्छुषु। कैरवाणाम् = सिताम्भोजानाम्, यो विकाशः = प्रफुल्लनम्, तेन यो हर्षप्रकाशः = मोदाविर्भावः, तेन मुखरेषु = शब्दायमानेषु। चञ्चरीकेषु = द्विरेफेषु। "इन्दिन्दिरो मधुकरश्चञ्चरीको मधुव्रत" इति वैजयन्ती। क्रन्दनम् = रोदनम्, अश्रौषम् = आकर्णिषम्। सप्तभिर्विशेषणैः स्वभावोक्त्या

मन्द-मन्द वायु के झोंकों से लताएँ धीरे-धीरे हिल रही थीं, निशानायिका के चन्दनबिन्दु के समान चन्द्रमण्डल उदित हो चुका था, आकाश चाँदनी के बहाने अमृत बरसा रहा था, पक्षिगण—मानो हम लोगों की नीतिचर्चा सुनने की इच्छा से—मौन धारण किये थे, और कुमुदों के खिल जाने से भौंरे हर्षातिरेक से गुनगुना रहे थे, कि मैंने किसी का अस्पष्ट अक्षरों और कम्पित निःश्वासों वाला, रुँधे गले से निकलने वाला, घर्घरशब्दमय, चीत्कारमय और दीनतापूर्ण करुण क्रन्दन सुना। रोने की आवाज़ ध्यान देने पर ही सुनाई देती थी, जिससे उसके बहुत दूर होने का अनुमान होता था। मैंने उसी क्षण, "यह आर्तस्वर कहाँ से आ रहा

ज्ञायताम्" इत्यादिश्य छात्रेषु विसृष्टेषु, क्षणानन्तरं छात्रेणैकेन भय-भीता सवेगमत्युष्णं दीर्घं निश्वसती, मृगीव व्याघ्राऽऽघ्राता, अश्रु-प्रवाहैः स्नाता, सवेपथुः, कन्यकैका अङ्के निधाय समानीता। चिरा-न्वेषणेनापि च तस्याः सहचरी सहचरो वा न प्राप्तः। ताञ्च चन्द्र-कलयेव निर्मिताम्, नवनीतेनेव रचिताम्, मृणाल-गौरीम्, कुन्द-कोरकाग्रदतीम्, सक्षोभं रुदतीमवलोक्याऽस्माभिरपि न पारितं

क्रन्दनं विशिनष्टि—अस्पष्टानि अक्षराणि, यस्मिंस्तत्। कम्पमाना निःश्वासाः, यस्मिंस्तत्। श्लथन्=शिथिलः, कण्ठः, यस्मिंस्तत्। अत्यवधानेन=विशेषध्यानेन, श्रव्यम्=श्रवणार्हम्, तस्य भावस्तत्त्वं तस्मात्, हेतौ पञ्चमी। अतिशयेन दूरं दविष्ठम्, तस्य भावो दविष्ठता, अनुमिता=विज्ञाता, दविष्ठता=अतिदूरता यस्य तत्। आदिश्य= आज्ञाप्य। व्याघ्रेण=शार्दूलेन, आघ्राता=आक्रान्ता। उपमालङ्कारः। सवेपथुः=सकम्पा। एकेनाङ्के निधाय कन्यका समानीतेति स्थले क्रियापदद्वयम्। प्रधानक्रियानिरूपितकर्मत्वाभिधानेऽप्रधानक्रियानिरूपित-कर्मत्वमनभिहितमप्यभिहितवत्प्रकाशत इति महाभाष्ये ध्वनितम्,

प्रधानविषया शक्तिः प्रत्ययेनाभिधीयते।
यदा गुणे तदा तद्वदनुक्ताऽपि प्रतीयते॥

इत्यादिना वाक्यपदीये स्पष्टीकृतञ्च। नवनीतेनेव=हैयङ्गवीनेनेव। "मक्खन" इति हिन्दी। मृणालमिव=कमलदण्ड इव, गौरीम्=श्वेताम्, लुप्तोपमा। कुन्दकोरकाः=माध्यकलिकाः, तेषामग्राणीव दन्ता यस्याः सा ताम्।

है? क्या बात है? देख कर पता लगाओ" यह आज्ञा देकर, छात्रों को भेजा और क्षण भर बाद ही एक छात्र, डरी हुई, जल्दी-जल्दी गर्म और लम्बी साँसें ले रही, बाघ से आक्रान्त हरिणी के समान, आँसुओं से नहाई हुई और काँपती हुई एक बालिका को गोद में उठाकर लाया। चन्द्रमा की कलाओं से रची गई सी, मक्खन से बनाई गई सी, कमल-नाल के समान गोरी और कुन्दकलिका के समान दाँतों वाली उस

निरोद्धुं नयन-बाष्पाणि।

अथ "कन्यके ! मा भैषीः, पुत्रि ! त्वां मातुः समीपे प्रापयिष्यामः, दुहितः ! खेदं मा वह, भगवति ! भुङ्क्ष्व किञ्चित्, पिब पयः, एते तव भ्रातरः, यत् कथयिष्यसि तदेव करिष्यामः, मा स्म रोदनैः प्राणान् संशयपदवीमारोपयः, मा स्म कोमलमिदं शरीरं शोकज्वालावलीढं कार्षीः" इति सहस्रधा बोधनेन कथमपि सम्बुद्धा किञ्चिद् दुग्धं पीतवती। ततश्च मया क्रोडे उपवेश्य, "बालिके ! कथय के ते पितरौ ? कथमेतस्मिन्नाश्रमप्रान्ते समायाता ? किं ते कष्टम् ? कथमरोदीः ? किं वाञ्छसि ? किं कुर्मः ?" इति

सा ताम्। "अग्रान्तशुद्धशुभ्रवृषवराहेभ्यश्चे" ति दन्नादेशे, उगिदन्तत्वाद् ङीप्। सक्षोभम्=ससाध्वसम्।

मा भैषीः, "माङ्लिुङ्" "न माङ्योग" इत्यडाणभावः। मा वह, निषेधार्थकोऽत्र मःशब्दो न तु माङ्, अत एव लोट्। प्राणान्=असून् "पुंसि भूम्न्यसवः प्राणा" इत्यमरः। आरोपयः, "स्मोत्तरे लङ्चे"ति लङ्। शोकज्वालया=शोकाग्निना, अवलीढम्=व्याप्तम्। क्रोडे=अङ्के। मुग्धतया=

बालिका को व्याकुल होकर रोते देख, हम लोग भी अपने आँसू न रोक सके।

उसके बाद "बेटी डरो मत, बच्ची तुम्हें माँ के पास पहुँचा देंगे, बेटी अफ़सोस मत करो, रानी बिटिया कुछ खाओ, दूध पियो, ये तुम्हारे भाई हैं, जो कुछ तुम कहोगी हम वही करेंगे, रो-रोकर प्राणों को सन्देह में मत डालो, इस कोमल शरीर को शोकाग्नि की लपटों से मत झुलसाओ" इस प्रकार हजारों तरह से समझाने-बुझाने पर किसी प्रकार आश्वस्त हो उस बालिका ने कुछ दूध पिया। तदनन्तर, मैंने उसे गोद में लेकर पूछा, 'बच्ची ! बतलाओ तुम्हारे माता-पिता कहाँ रहते हैं ? तुम इस आश्रम के किनारे कैसे आ गई ? तुम्हें क्या कष्ट है ? तुम रोती क्यों थी ? क्या चाहती हो ? हम तुम्हारे लिए क्या करें ?' निरी बच्ची होने के कारण

पृष्टा मुग्धतया अपरिकलित-वाक्पाटवा, भयेन विशिथिलवचनविन्यासा, लज्जया अतिमन्दस्वरा, शोकेन रुद्धकण्ठा, चकितचकितेव कथं कथमपि अबोधयदस्मान् यद्—एषा अस्मिन्नेदीयस्येव ग्रामे वसतः कस्यापि ब्राह्मणस्य तनयाऽस्ति। एनां च सुन्दरीमाकलय्य कोऽपि यवन-तनयो नदीतटान्मातुर्हस्तादाच्छिद्य क्रन्दन्तीं नीत्वाऽपससार। ततः कञ्चिदध्वानमतिक्रम्य यावदसिधेनुकां सन्दर्श्य विभीषिकयाऽस्याः क्रन्दन-कोलाहलं शमयितुमियेष; तावदकस्मात्कोऽपि काल-कम्बल इव भल्लूको वनान्ताढुपाजगाम। दृष्ट्वैव यवन-त

बालस्वभावादज्ञतया। अपरिकलितम्=अविज्ञातम्, वाक्पाटवम्=भाषणचातुर्यं यया सा। भयेन=भीत्या। हेतौ तृतीया। विशिथिलः=अस्तव्यस्तः वचनविन्यासः=भाषणम्, यस्याः सा। चकितचकितेव=अतिभीतेव। नेदीयसि=अतिनिकटे। "अन्तिकबाढयोर्नेदसाधौ" वित्यन्तिकस्य नेदादेशः। आकलय्य=निश्चित्य। इयं न ब्राह्मणतनया किन्तु क्षत्रियतनया स्नातुं च गता न मात्रा सह, अपि तु दास्या, पुरोहितं पितरं दासीं मातरं मेन इत्यग्रेतनकथया स्पष्टीभविष्यति। असिधेनुकाम्=छुरिकाम्- "छुरिका चासिधेनुके" त्यमरः। विभीषिकया=भयप्रदर्शनेन। कालश्चासौ कम्बल इति कर्मधारयः। कृष्णवाची कालशब्दः। कालस्य=यमस्य कम्बल इवेति वा। शाल्मलितरुर्लोके "सेंमर" इति निगद्यते

भाषणचातुरी से एकदम अपरिचित, भय के मारे अस्त-व्यस्त शब्दों में बोलने वाली, लज्जा से धीमे स्वर और शोक से रुँधे गले वाली, अत्यन्त चकित हुई सी इस बालिका ने बड़ी कठिनाई से हमें बताया कि यह समीप के गाँव में रहनेवाली किसी ब्राह्मण की कन्या है। सुन्दर देखकर, कोई मुसलमान का लड़का, नदी के किनारे से, माँ के हाथ से छीनकर रोती बिलखती हुई इसको ले भागा। कुछ दूर जाकर उसने, छुरी दिखा कर, डरा कर, इसको चुप करना चाहा, इतने में ही एकाएक काले कम्बल सा एक रीछ जंगल के किनारे से उधर आ निकला। उसे देख

योऽसौ तत्रैव त्यक्त्वा कन्यकामिमां शाल्मलितरुमेकमारुरोह। विप्रतनया चेयं पलाश-पलाशि-श्रेण्यां प्रविश्य घुणाक्षरन्यायेन इत एव समायाता यावद् भयेन पुना रोदितुमारब्धवती; तावदस्मच्छात्रेणैवाऽऽनीतेति।

तदाकर्ण्य कोपज्वालाज्वलित इव योगी प्रोवाच-"विक्रमराज्येऽपि कथमेष पातकमयो दुराचाराणामुपद्रवः?" ततः स उवाच—महात्मन्! क्वाधुना विक्रमराज्यम्? वीरविक्रमस्य तु भारत-भुवं विरहय्य गतस्य वर्षाणां सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि। क्वाधुना मन्दिरे मन्दिरे जयजय-ध्वनिः? क्व सम्प्रति तीर्थे तीर्थे

पलाशाः=किंशुकाः,ते च ते पलाशिनः=तरवः, तेषां श्रेण्याम्=पङ्क्तौ पलाशानि पत्राणि वा, "पत्रं पलाशं छदनम्" इत्यमरः। घुणाक्षरन्यायेन, काष्ठवेधकैः कृमिभिः काष्ठानुवेधे क्रियमाणे यथाऽकस्मादक्षरमिव प्रतीयते, तथा यत्रावितर्कित-कार्य-सिद्धिस्तत्रेत्थमभिधीयते। पुना रोदितुम्, "रो रि" इति लोपे "ढ्रलोपे पूर्वस्य दीर्घोऽणः" इति दीर्घः।

विरहय्य=परित्यज्य। सप्तदशशतकानि, शिवराजसमयसूचनार्थमिदम्। शिवराजकालिकयवनदुराचारान्वर्णयति—क्वेत्यादि। मठे मठे=

ही वह मुसलमान का लड़का, इस लड़की को वहीं छोड़, एक सेमर के पेड़ पर चढ़ गया और यह ब्राह्मण-बालिका पलाश वृक्षों के झुरमुट में प्रवेश कर घुणाक्षर न्याय से इधर आकर मारे भय के पुनः रोने लगी, इसी बीच हमारा छात्र इसे यहाँ ले आया।

यह सुनकर क्रोधाग्नि की लपटों से प्रदीप्त हुए से योगिराज बोले—"विक्रमादित्य के राज्य में दुराचारियों का यह पापमय उपद्रव कैसा?"

तदनन्तर ब्रह्मचारी के गुरु ने कहा—"महात्मा जी, अब विक्रम का राज्य कहाँ रहा? वीर विक्रमादित्य को तो भारतभूमि को छोड़कर गये सत्रह सौ वर्ष व्यतीत हो गये। अब मन्दिरों में जय-जयकार कहाँ? तीर्थों

घण्टानादः ? क्वापि मठे मठे वेदघोषः ? अद्य हि वेदा विच्छि वीथीषु विक्षिप्यन्ते, धर्मशास्त्राण्युद्धूय धूमध्वजेषु ध्मायन्ते, पु राणानि पिष्ट्वा पानीयेषु पात्यन्ते, भाष्याणि भ्रंशयित्वा भ्राष्ट्रे भर्ज्यन्ते; "क्वचिन्मन्दिराणि भिद्यन्ते, क्वचित्तुलसीवनानि छिद्यन्ते क्वचिद्दारा अपह्रियन्ते, क्वचिद्धनानि लुण्ठ्यन्ते, क्वचिदार्त्तनाद क्वचिद् रुधिरधाराः, क्वचिदग्निदाहः, क्वचिद् गृहनिपातः" इत्ये श्रूयतेऽवलोक्यते च परितः ।

प्रतिच्छात्रालयम् । "मठश्छात्रादिनिलयः" इत्यमरः । वेदाः = वेदपुस्तकानि विच्छिद्य = विपाट्य, वीथीषु = पथिषु, उद्धूय = उत्तोल्य । धूम ध्वजो येषां ते तेषु = वह्निषु । ध्मायन्ते = ज्वाल्यन्ते । पुराणानि ब्रह्मवैवर्त्तादीनि । पिष्ट्वा = चूर्णीकृत्य । भाष्याणि = सूत्रव्याख्यानानि वात्स्यायनादिनिर्मितानि । भ्राष्ट्रेषु = भर्जनपात्रेषु "क्लीबेऽम्बरीषं भ्राष्ट्रो ने" त्यमरः । "भाड" इति हिन्दी । दाराः = भार्याः । दृ विदारणे इत्यस्माण्णिजन्तात् "दारजारौ कर्त्तरि णि लुक् च" ति घञ्, "दाराक्षता लाजसूनां बहुत्वम्" ।

क्रोडा हारा तथा दारा त्रय एते यथाक्रमम् ।
क्रोडे हारे च दारेषु शब्दाः प्रोक्ता मनीषिभिः ॥

इति हेमचन्द्रानुसारेण टाबन्तोऽप्ययम् । यथा च "दारा त्रय" इ पद्ये दृश्यते तथा टाबन्तस्यैकवचनादिष्वपि प्रयोगस्तदिष्टोऽवधार्यते । क्वाधु त्यारभ्य परित इत्यन्तं समता नाम गुणो दण्डिमते । प्रसादस्तु सर्वसम्मतः रीतिर्वैदर्भी ।

में घण्टा-निनाद कहाँ ? मठों में वेदध्वनि कहाँ ? आज तो वेद की पुस्त फाड़-फाड़ कर सड़कों पर बिखेरी जाती हैं, धर्मशास्त्र के ग्रन्थ अस्त-व्यस्त कर आग में झोंके जाते हैं, पुराण की पुस्तकें पीस कर पानी में फेंक जाती हैं और भाष्यग्रन्थ तोड़-मरोड़ कर भाड़ों में झोंके जाते हैं । कहिं दर तोड़े जाते हैं, कहीं तुलसी वृक्ष काटे जाते हैं, कहीं स्त्रियों का अप किया जाता है और कहीं धनसम्पत्ति लूटी जाती है । कहीं करुण

तदाकर्ण्य दुःखितश्चकितश्च योगिराडुवाच—"कथमेतत् ? ह्य एव पर्वतीयाञ्छकान्विनिर्जित्य महता जयघोषेण स्वराजधानीमायातः श्रीमानादित्य-पदलाञ्छनो वीरविक्रमः। अद्यापि तद्विजय-पताका मम चक्षुषोरग्रत इव समुद्धूयन्ते, अधुनापि तेषां पटह-गोमुखादीनां निनादः कर्णशष्कुलीं पूरयतीव; तत्कथमद्य वर्षाणां सप्तदश-शतकानि व्यतीतानि" इति ?

ततः सर्वेषु स्तब्धेषु चकितेषु च ब्रह्मचारिगुरुणा प्रणम्य कथितम्—

"भगवन् ! बद्ध-सिद्धासनैर्निरुद्ध-निश्वासैः प्रबोधितकुण्डलिनी-

---

पर्वतीयान्=पर्वतप्रान्तस्थान्। स्वराजधानीम्=उज्जयिनीम्। आदित्य-पदलाञ्छनः=आदित्यपदविभूषितः। लक्ष्मवाची लाञ्छनशब्दः "कलङ्काङ्कौ लाञ्छनं च चिह्नं लक्ष्म च लक्षणम्" इत्यमरः। समुद्धूयन्ते=कम्पमाना विराजन्ते। पटह-गोमुखादीनाम्=वाद्यविशेषाणाम्। पटह=नगारा गोमुख=तुरही इति हिन्दी। भाविकालङ्कारोऽतीतस्य प्रत्यक्षायमाणत्वात्।

भवादृशैः=योगनिरतैः, कालस्य वेगः=गतिर्न ज्ञायत इत्यन्वयः। भवादृशान् विशिनष्टि—बद्धं सिद्धासनम्=योगशास्त्रीय आसनविशेषो यैस्तैः।

...न्दन है तो कहीं रुधिर की धारा, कहीं अग्निकाण्ड है और कहीं गृह-...ध्वंस। चारों ओर यही सुनाई देता है और यही दिखाई देता है।

यह सुनकर खिन्न और विस्मित हुए योगिराज ने कहा—'यह कैसे ? ...मान्, आदित्यपद विभूषित वीरवर विक्रम अभी कल ही पर्वत प्रान्तवासी शकों को जीतकर, महान जय-जयकार के साथ अपनी राजधानी ...उज्जयिनी आये हैं। आज भी उनकी विजयपताकाएँ मेरे नेत्रों के सामने फहरा सी रही हैं, इस समय भी उनके नगाड़े, तुरही आदि बाजों की ध्वनि मेरे कर्णविवरों को पूर्ण सी कर रही है, फिर आज सत्रह सौ वर्ष ...बीत गये ?'

योगिराज के यह वचन सुनकर सबके स्तब्ध और विस्मित हो जाने ... ब्रह्मचारी के गुरु ने प्रणाम कर कहा—"भगवन् ! सिद्धासन बाँध

कैर्विजित–दशेन्द्रियैरनाहत–नाद–तन्तुमवलम्ब्याऽऽज्ञाचक्रं संस्पृश्
चन्द्रमण्डलं भित्त्वा, तेजःपुञ्जमविगणय्य, सहस्रदलकमलस्यान्
प्रविश्य, परमात्मानं साक्षात्कृत्य, तत्रैव रममाणैर्मृत्युञ्जयैरानन्

निरुद्धाः=अन्तर्नियमिताः, निश्वासाः=प्राणा यैस्तैः। प्रबोधिताः
उद्द्योतिता, कुण्डलिनी=पराशक्त्यभिधेया नाडीरूपा प्रधानव्यक्तिस्
नम्, यैस्तैः। विजितानि=वशीकृतानि, दशेन्द्रियाणि यैस्तैः। वा
पाणि-पाद-पायूपस्थानि पञ्च कर्मेन्द्रियाणि,चक्षुः-श्रोत्र-घ्राण-रसन-त्वगाख्
पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि। अनाहतश्चासौ नादः तस्य तन्तुं=तन्तुतुल्यां सूक्ष्
वस्थालतिकाम्। सुषुम्णामध्ये स्थितं तुरीयं पद्ममनाहतनाम्ना योगशा
प्रसिद्धम्, तदुत्थो नादोऽनाहतनादः। आज्ञाचक्रम्=भ्रुवोर्मध्ये द्वि
लात्मकं चक्रम्। संस्पृश्य=ध्यानावलम्बनं कृत्वा। चन्द्रमण्डलम्=
परवर्ति षोडशदलात्मकं चक्रम्। तेजःपुञ्जम्=सोमचक्रवर्तिनं महाप्र
शम्। सहस्रदलकमलस्य=ब्रह्मरन्ध्रवर्त्तिनः सहस्रारचक्रस्य। परमात्
नम्=परं ब्रह्म। तत्रैव=ब्रह्मणि। रममाणैः=विहरद्भिः। अनिर्वचन
मानन्दमुपभुञ्जद्भिरिति यावत्। मृत्युञ्जयैः=स्वायत्तीकृतकालत्व
आनन्दमात्रस्वरूपैः=आनन्दमये ब्रह्मणि लीनत्वात्तत्स्वरूपैः। यत्तु
शास्त्रमात्रप्रसिद्धानां शब्दानामुपादानं तच्छास्त्रानभिज्ञस्य बोधाजनव

कर, साँस रोककर, कुण्डलिनी को जगाकर, दसों इन्द्रियों पर विजय
कर, अनहद नाद (सुषुम्णा के मध्य में स्थित, योगशास्त्र में अन
नाम से प्रसिद्ध चतुर्थ पद्म से उत्पन्न होने वाले नाद) की तन्तु
सूक्ष्मावस्था का अवलम्बन कर, भौंहों के बीच में स्थित द्विदल
आज्ञाचक्र को ध्यान का लक्ष्य बनाकर, षोडशदलात्मक चक्र चन्द्रम
को भेद कर, चन्द्रचक्रवर्ती महाप्रकाश का तिरस्कार कर, सहस्रारच
अन्दर प्रविष्ट हो, परब्रह्म का साक्षात्कार कर, उसी में रमण करने
मृत्यु के विजेता, आनन्दस्वरूप और ध्यान में स्थित आप

मात्रस्वरूपैर्ध्यानावस्थितैर्भवादृशैर्न ज्ञायते कालवेगः। तस्मिन् समये भवता ये पुरुषा अवलोकिताः तेषां पञ्चाशत्तमोऽपि पुरुषो नावलोक्यते। अद्य न तानि स्रोतांसि नदीनाम्, न स संस्था नगराणाम्, न सा आकृतिर्गिरीणाम्, न सा सान्द्रता विपिनानाम्। किमधिकं कथयामो भारतवर्षमधुना अन्यादृशमेव सम्पन्नमस्ति"—

इदमाकर्ण्य किञ्चित्स्मित्वेव परितोऽवलोक्य च योगी जगाद—

"सत्यं न लक्षितो मया समय-वेगः। यौधिष्ठिरे समये कलित-समाधिरहं वैक्रम-समये उदस्थाम्। पुनश्च वैक्रम-समये समाधिमा-कलय्य अस्मिन् दुराचारमये समयेऽहमुत्थितोऽस्मि। अहं पुनर्गत्वा

त्यप्रतीतत्वदोषदुष्टमिदमिति—तन्न, अत्रत्यगद्यस्य योगशास्त्रोक्त-ध्यान-प्रकारे व्युत्पत्त्याधायकत्वादेतदर्थमेव समुल्लिखितत्वाच्च। अत एव "न सा विद्या न तच्छास्त्रमि" त्यादिना साहित्यस्य व्युत्पत्त्यापि तदर्थस्य सर्वमयत्वं सूचितम्। कथमन्यथा "वह्निर्विकारं प्रकृतेः पृथगि" त्यादीनां "वागर्थाविव संपृक्तावि" त्यादीनाञ्च न तद्दोषदुष्टत्वमित्यलमसदावेशेन।

पञ्चाशत्तमः=पञ्चाशत्संख्यापूरकः। कैमुतिकन्याय-सूचकोऽपिः। यौधिष्ठिरे=युधिष्ठिरस्यायं समयो योधिष्ठिरस्तस्मिन्।

महात्माओं को समय का वेग प्रतीत नहीं होता। उस समय आपने जिन लोगों को देखा होगा, उनकी पचासवीं पीढ़ी का पुरुष भी आज नहीं दिखाई देता। आज नदियों के वे स्रोत नहीं रहे, नगरों की वह स्थिति नहीं रही, पर्वतों का वह आकार नहीं रहा और जंगलों की वह गहनता नहीं रही। अधिक क्या कहें भारतवर्ष इस समय दूसरा सा ही हो गया है।

यह सुनकर कुछ मुस्कराते हुए से, चारों ओर देखकर, योगिराज बोले—"सचमुच मुझे समय के वेग की प्रतीति नहीं हुई। युधिष्ठिर के समय में समाधि लगा कर मैं विक्रम के समय में जागा था, और पुनः

समाधिमेव कलयिष्यामि, किन्तु तावत्सङ्क्षिप्य कथ्यतां का दशा भारतवर्षस्येति"—

तत्संश्रुत्य भारतवर्षीय-दशा-संस्मरण-संजात-शोको हृदयस्थ-प्रसाद-सम्भारोद्गिरण-श्रमेणेवातिमन्थरेण स्वरेण "मा स्म धर्मध्वंसन-घोषणैर्योगिराजस्य धैर्यमवधीरय" इति कण्ठं रुन्धतो बाष्पान् विगणय्य, नेत्रे प्रमृज्य, उष्णं निश्वस्य, कातराभ्यामिव नयनाभ्यां परितोऽवलोक्य, ब्रह्मचारिगुरुः प्रवक्तुमारभत—

"भगवन्! दम्भोलिघटितेयं रसना, या दारुण-दानवोदन्तो

भारतवर्ष-सम्बन्धिन्या दशायाः संस्मरणेन सञ्जातः शोको यस्य सः। हृदयस्थो यः प्रसादः=प्रसन्नता, तस्य सम्भारः=अतिशयः, तस्योद्गिरणे=वमने यः श्रमः, तेनेवेत्युत्प्रेक्षा। धर्मस्य=श्रुतिप्रतिपाद्यस्य यद् ध्वंसनम्=उन्मूलनम्, तस्य घोषणैः=कथनैः।

दम्भोलिघटिता=वज्रमयी। "दम्भोलिरशनिर्द्वयोरि"त्यमरः। दारुणानाम्=भयानकानाम्, दानवानाम्=म्लेच्छानाम्, उदन्तस्य=वृत्तान्तस्य। "वार्त्ता प्रवृत्तिर्वृत्तान्त उदन्तः स्यादि" त्यमरः।

विक्रम के समय में समाधिस्थ होकर इस अनाचारमय समय में जगा हूँ। मैं फिर जाकर समाधि ही लगाऊँगा, किन्तु तब तक संक्षेप में बताइये कि भारतवर्ष की क्या दशा है?

यह सुनकर भारतवर्ष की दुर्दशा के स्मरण से ब्रह्मचारी के गुरु का शोक उमड़ आया। मानों हृदयस्थित हर्षातिरेक के प्रकाशन करने के श्रम से धीमे पड़ गये स्वर से, 'धर्मविध्वंस की कथाओं से योगिराज का धैर्य मत डिगाओ' यह कहते हुए से गला रूँधने वाले आँसुओं की परवाह न कर, नेत्र पोंछकर, गरम साँस लेकर, कातर नेत्रों से चारों ओर देखकर, ब्रह्मचारी के गुरु ने कहना प्रारम्भ किया—

"भगवन्! मेरी यह जीभ वज्र से बनी है जो भीषण म्लेच्छों के

दीरणैर्न दीर्य्यते, लोहसारमयं हृदयम्, यत् संस्मृत्य यावनान्पर-स्सहस्रान् दुराचारान् शतधा न भिद्यते, भस्मसाच्च न भवति। धिगस्मान्, येऽद्यापि जीवामः, श्वसिमः, विचरामः, आत्मन आर्य्य-वंश्यांश्चाभिमन्यामहे—"

उपक्रममनुमाकर्ण्य अवलोक्य च मुनेर्विमनायमानं हरिद्राद्रव-क्षालितमिव वदनम्, निपतद्वारिविन्दुनी नयने, अञ्चित-रोम-कञ्चुकं शरीरम्, कम्पमानमधरम्, भज्यमानञ्च स्वरम्, अवागच्छत् "सकलानर्थमयः, सकल-वञ्चनामयः, सकलपापमयः, सकलोपद्रवमयश्चायं वृत्तान्तः"—इति, "अत एव तत्स्मरणमात्रेणापि

उदीरणैः = कथनैः, लोहसारमयम् = अयोनिर्मितम्। सहस्रात् पराः परस्सहस्राः, तान्। राजदन्तादित्वात्सहस्रशब्दस्य परनिपातः। पारस्करादित्वात्सुट्। विशेष्यनिघ्नत्वाद्वाच्यलिङ्गता। नास्मज्जीवनं जीवनम्, अपि तु भस्त्रेव श्वसनमिति सूचयन् जीवाम इत्याभिधाय श्वसिम इति।

विमनायमानम् = दुर्मनायमानम्। हरिद्रा = महारजनं, तद्द्रवेण = तद्रसेन, क्षालितमिव = धौतमिव। उत्प्रेक्षा। निपतन्तः = स्खलन्तः, वारिबिन्दवः = अश्रुकणा याभ्यां ते। अञ्चितरोमकञ्चुकम् = सरोमा-

---

वृत्तान्त के वर्णन से कट नहीं जाती, मेरा हृदय लोहे का बना हुआ है, जो यवनों के हजारों दुराचारों का स्मरण कर टुकड़े-टुकड़े नहीं हो जाता और जलकर राख नहीं हो जाता। धिक्कार है हम लोगों को, जो आज भी जीते हैं, साँस लेते हैं, इधर-उधर घूमते हैं और अपने को आर्यों का वंशज मानते हैं।"

इस उपोद्घात को सुनकर और ब्रह्मचारी के गुरु के हल्दी से रंगे हुए से (पीले) उदास चेहरे, आँसू बरसाते नेत्रों, रोमाञ्चित शरीर, फड़कते ओंष्ठ और लड़खड़ाते स्वर से, योगिराज समझ गये कि यह सारा वृत्तान्त अनर्थों, वञ्चनाओं तथा पाप और उपद्रव की घटनाओं से भरा

खिद्यत एष हृदये, तन्नाहमेनं निरर्थं जिग्लापयिषामि, न वा चिखे-
दयिषामि" इति च विचिन्त्य—)

("मुने ! विलक्षणोऽयं) भगवान् सकल–कला–कलाप–कलनः
सकल–कालनः करालः कालः। स एव कदाचित् पयः–पूर–पूरि-
तान्यकूपार–तलानि मरूकरोति। सिंह–व्याघ्र–भल्लूक–गण्डक-
फेरु–शश–सहस्र-व्याप्तान्यरण्यानि जनपदीकरोति, मन्दिर–प्रासाद-
हर्म्य–शृङ्गाटक–चत्वरोद्यान–तडाग–गोष्ठमयानि नगराणि च कान-

श्रम् । जिग्लापयिषामि=ग्लपयितुमिच्छामि । चिखेदयिषामि=
खेदयितुमिच्छामि। सकलानां कलानां यः कलापः=समूहः, तत्कलन
=तन्निर्माता। सकलान् कालयतीति सकलकालनः=सकलजरयिता
कालः=महाकालः। "कालो मृत्यौ महाकाले समये यमकृष्णयोरि"ति
मेदिनी। अकूपारतलानि=समुद्रतलानि। "समुद्रोऽब्धिरकूपार"इत्यमरः।
मरूकरोति=मरुतुल्यानि करोति। अभूततद्भावे च्विः। गण्डकः=
खड्गी, लोके "गैंडा" इति। फेरवः=शृगालाः। "शृगालवञ्चकक्रोष्टु
फेरुफेरवजम्बुका" इत्यमरः। मन्दिराणि=देवनिवासाः। प्रासादाः=
भूभृन्निवासाः। हर्म्यम्=धनिकावासः। "हर्म्यादि धनिनां वास"इत्यमरः।
शृङ्गाटकम्=चतुष्पथम्। "चौराहा" इति हिन्दी। चत्वरम्=अङ्ग-
णम्। "अङ्गणं चत्वराजिरे" इत्यमरः। उद्यानम्=वाटिका। "पुमानाक्रीड उद्यानम्"इत्यमरः। गोष्ठं "गोस्थानकमि" त्यमरः। "गौशाला" इति

है, यही कारण है कि उसका स्मरण करके ही इनका मन खिन्न हो जाता
है। अतः मैं इन्हें व्यर्थ में म्लान या खिन्न न करूँगा, यह सोचकर,

"हे मुनि ! सारी कलाओं के निर्माता और सबके संहारक, भगवान्
महाकाल बड़े ही विलक्षण हैं। ये ही कभी जलप्रवाह से परिपूर्ण समुद्र-
तलों को मरुस्थल बना देते हैं, हजारों शेरों, बाघों, भालुओं, गेंडों, सियारों
और खरगोशों से भरे जंगलों को नगर बना देते हैं तथा मन्दिरों, राज-
महलों, अट्टालिकाओं, चौराहों, चबूतरों, उपवनों, सरोवरों और गोशालाओं

नीकरोति । निरीक्ष्यतां कदाचिदस्मिन्नेव भारते वर्षे यायजूकै राजसूयादियज्ञा व्ययाजिषत, कदाचिदिहैव वर्ष-वाताऽऽतप-हिम-सहानि तपांसि अतापिषत । सम्प्रति तु म्लेच्छैर्गावो हन्यन्ते, वेदा विदीर्यन्ते, स्मृतयः सम्मृद्यन्ते, मन्दिराणि मन्दुरीक्रियन्ते, सत्यः पात्यन्ते, सन्तश्च सन्ताप्यन्ते । सर्वमेतन्माहात्म्यं तस्यैव महाकालस्येति कथं धीरधौरेयोऽपि धैर्यं विधुरयसि ? शान्तिमाकलय्यातिसंक्षेपेण कथय यवनराज्य-वृत्तान्तम् । न जाने किमित्यनावश्यकमपि शुश्रूषते मे हृदयम्"—इति कथयित्वा तूष्णीमवतस्थे ।

अथ स मुनिः—"भगवन् ! धैर्येण, प्रसादेन, प्रतापेन, तेजसा,

हिन्दी । प्राचुर्यार्थे मयट् । एतत्प्रचुराणीत्यर्थः । काननीकरोति = जङ्गलीकरोति । यायजूकैः = इज्याशीलैः । "इज्याशीलो यायजूक" इत्यमरः । व्ययाजिषत = कृताः, व्युपसृष्टाद् यजेर्लुङि । अतापिषत = तप्तानि । मन्दुरीक्रियन्ते = वाजिशालीक्रियन्ते । "वाजिशाला तु मन्दुरे"त्यमरः । पात्यन्ते, पातिव्रत्यात् । व्यभिचार्यन्त इत्यर्थः । धीरधौरेयः = धीरधुरन्धरः । विधुरयसि = विकलयसि । "वैकल्येऽपि च विश्लेषे विधुरं विकले त्रिष्वि"ति मेदिनी । शुश्रूषते = श्रोतुमिच्छति । "ज्ञाश्रुस्मृदृशां सन" इत्यात्मनेपदम् ।

से भरे नगरों को जंगल बना देते हैं । देखिये, कभी इसी भारतवर्ष में याज्ञिकों ने राजसूय आदि यज्ञ किये थे, कभी यहीं पर वर्षा, आँधी, धूप और हिमपात सह कर तपस्याएँ की गई थीं, परन्तु इस समय म्लेच्छों द्वारा गायें मारी जाती हैं, वेद की पुस्तकें फाड़ी जाती हैं, स्मृतियाँ कुचली जाती हैं, मन्दिर घुड़साल बनाये जाते हैं, सतियों का सतीत्व नष्ट किया जाता है और सज्जनों को कष्ट पहुँचाया जाता है । यह सब उसी महाकाल की महिमा है, आप धीर होकर धैर्य क्यों खोते हैं ? शान्त होकर अति संक्षेप में यवनराज्य का वृत्तान्त कहिये । अनावश्यक समझते हुए भी, न जाने क्यों मन इसे सुनना चाहता है ।" यह कहकर योगिराज चुप हो गये ।

तदनन्तर उन मुनि ने कहना प्रारम्भ किया—"भगवन् ! धैर्य,

वीर्येण, विक्रमेण, शान्त्या, श्रिया, सौख्येन, धर्मेण, विद्यया च सममेव परलोकं सनाथितवति तत्र भवति वीरविक्रमादित्ये, शनैः शनैः पारस्परिक-विरोध-विशिथिलीकृत-स्नेहबन्धनेषु राजसु, भामिनी-भ्रूभङ्ग-भूरिभाव-प्रभाव-पराभूत-वैभवेषु भटेषु, स्वार्थ-चिन्ता-सन्तान-वितानैकतानेष्वमात्यवर्गेषु, प्रशंसामात्रप्रियेषु प्रभुषु, "इन्द्रस्त्वं वरुणस्त्वं कुबेरस्त्वम्" इति वर्णनामात्रसक्तेषु बुधजनेषु, कश्चन गजिनी-स्थाननिवासी महामदो यवनः ससेनः प्राविशद् भारते वर्षे। स च प्रजा विलुण्ठ्य, मन्दिराणि निपात्य, प्रतिमा विभिद्य, पर-

सनाथितवति = सनाथं कृतवति। धैर्यादिना साकं सनाथीकरणमिति सहोक्तिरलङ्कारः। सौकुमार्यं नामगुणः, अमङ्गलस्य विस्पष्टमनभिधानात्। तत्र भवति = श्रेष्ठे। "तत्र च भावेने"ति सप्तमी। पारस्परिकविरोधेन विशिथिलीकृतानि = शिथिलतामापादितानि स्नेहबन्धनानि यैस्तेषु। भामिनीनाम् = मानिनीनाम्, भ्रूभङ्गाः = सकटाक्षेक्षणानि, भूरिभावाः = हावाद्याश्चेष्टाः, तेषां प्रभावेण पराभूतानि = तिरस्कृतानि, वैभवानि = धनानि येषां तादृशेषु। गजिनी = "गजनी" इति लोके प्रसिद्धा। संस्कृतशब्दापभ्रंशीभूता एव सर्वे भाषाशब्दा इत्यभिप्रायेण प्रायः सार्थकसंस्कृतशब्दानामेव नामादिष्वपि प्रयोगः। महामदः = महमूद इति लोकप्रसिद्धं तन्नाम, देशनाम्ना "महमूद ग़ज़नवी" इति वृत्तेषु समुल्लिखितम्।

प्रसन्नता, प्रताप, तेज, बल, पराक्रम, शान्ति, शोभा, सुख, धर्म और विद्या के साथ वीर विक्रमादित्य के परलोक चले जाने पर, राजाओं के पारस्परिक स्नेहबन्धन के आपसी झगड़ों के कारण ढीले पड़ जाने पर, वीरोंके, कामिनियोंके कटाक्षों और हाव-भाव के प्रभाव में आकर सारी सम्पत्ति बरबाद कर चुकने पर, अमात्योंके स्वार्थचिन्तामात्रपरायण हो जाने पर, राजाओं के प्रशंसामात्र प्रिय हो जाने पर तथा विद्वानों के 'आप इन्द्र हैं, आप वरुण हैं, आप कुबेर हैं' कहकर चाटुकारिता करके प्रभुओं को प्रसन्न करने में लग जाने पर, गजिनी स्थान निवासी, किसी महमूद नामके यवन ने सेना के साथ भारतवर्ष में प्रवेश किया। वह प्रजा

श्शतान् जनांश्च दासीकृत्य, शतश उष्ट्रेषु रत्नान्यारोप्य स्वदेशमनैषीत्। एवं स ज्ञातास्वादः पौनःपुन्येन द्वादशवारमागत्य भारतमलुलुण्ठत्। तस्मिन्नेव च स्वसंरम्भे एकदा गुर्जरदेश–चूडायितं सोमनाथतीर्थमपि धूलीचकार। अद्य तु तत्तीर्थस्य नामापि केनापि न स्मर्यते; परं तत्समये तु लोकोत्तरं तस्य वैभवमासीत्। तत्र हि महार्ह-वैदूर्य-पद्मराग-माणिक्य-मुक्ताफलादि–जटितानि कपाटानि, स्तम्भान्, गृहावग्रहणीः, भित्तीः, वलभीः, विटङ्कानि च निर्मथ्य, रत्ननिचयमादाय, शतद्वय–मणसुवर्ण–शृङ्खलावलम्बिनीं चञ्चच्चाकचक्य–चकितीकृतावलोचक–लोचन–निचयां महाघण्टां

अलुलुण्ठत्=लुण्ठितवान्। गुर्जरदेशचूडायितम्=गुर्जरदेशभूषणतुल्यम्। धूलीचकार=नाशयामास। जटितानि, 'जट, झट सङ्घाते'इत्यस्य प्रयोगः। "जड़े हुवे" इति हिन्दी। गृहावग्रहणीः=देहलीः। भित्तीः=कुड्यानि। वलभीः=गोपानसीः। "गोपानसी तु वलभिच्छादने वक्रदारुणी"त्यमरः। "छज्जा" इति हिन्दी "धरना" इति वा। मणशब्दो लोके "मन"इति ख्यातः। चञ्चता=समुच्छलता, चाकचक्येन, चकितीकृताः=विस्मेरीकृताः, अवलोचकलोचनानाम्=द्रष्टृजननयनानाम्,

---

को लूट कर, मन्दिरों को ध्वस्त कर, मूर्तियों को तोड़ कर, सैकड़ों लोगों को दास बना कर, सैकड़ों ऊँटों पर रत्न लाद कर, अपने देश को ले गया। इस प्रकार, स्वाद मिल जाने के कारण बार-बार आकर उसने बारह बार भारतवर्ष को लूटा। अपने इन्हीं हमलों में उसने एक बार गुजरात के आभूषणतुल्य सोमनाथ तीर्थ को भी धूल में मिला दिया। आज तो उस तीर्थ का नाम भी किसी को नहीं याद है, पर उस समय उसका वैभव लोकोत्तर था। उसमें बहुमूल्य वैदूर्य (मूँगा), पद्मराग, हीरे और मोती जड़े किवाड़ों, खम्भों, देहलियों, दीवारों, छज्जों और कबूतरों के दरबों को छानकर, रत्नराशि लेकर, दो सौ मन सोने की जञ्जीर में लटकने वाली और देदीप्यमान चमचमाहट से दर्शकों के नेत्रों को चमत्कृत कर देनेवाली

प्रसह्य संगृह्य, महादेवमूर्तावपि गदामुदतूतुलत्।

अथ वीर ! गृहीतमखिलं वित्तम्, पराजिता आर्य्यसेनाः, बन्दीकृता वयम्, सञ्चितममलं यशः; इतोऽपि न शाम्यति ते क्रोधश्चेदस्मांस्ताडय, मारय, छिन्धि, भिन्धि, पातय, मज्जय, खण्डय, कर्तय, ज्वलय; किन्तु त्यजेमामकिञ्चित्करीं जडां महादेव-प्रतिमाम्! यद्येवं न स्वीकरोषि तद् गृहाणास्मत्तोऽन्यदपि सुवर्णकोटिद्वयम्, त्रायस्व, मैनां भगवन्मूर्तिं स्प्राक्षीः" इति साम्रेडं कथयत्सु रुदत्सु पतत्सु विलुण्ठत्सु प्रणमत्सु च पूजकवर्गेषु; 'नाहं मूर्तीर्विक्रीणामि; किन्तु भिनद्मि' इति संगर्ज्य जनताया हाहाकार-कलकलमाकर्णयन् घोर-

निचयः=समूहो यया ताम्। उदतूतुलत्=उदतिष्ठिपत्। प्रह्वतवा-निति यावत्। उत्पूर्वकादुन्मानार्थकचौरादिकतुलधातोः कर्त्तरि लुङि। "अकिञ्चित्करीं जडामि"ति तदीयबोधमादाय तत्प्रीतये वा, व-वस्तुगत्येति बोध्यम्। स्प्राक्षीः, माङ्योगे लुङ्, अत एव नाट्। स्पार्क्षीः स्पृक्ष इत्यपि रूपे। जनतायाः=जनसमूहस्य।

महाघण्टा को जबर्दस्ती हथिया कर, महादेव की मूर्ति पर भी गदा उठाई।

उसके बाद पुजारियों के "वीर ! तुमने सारा धन ले लिया, हिन्दुओं की सेनाओं को हरा दिया, हम लोगों को बन्दी बना लिया, निर्मल यश का सञ्चय कर लिया, यदि इतने पर भी तुम्हारा क्रोध शान्त न हुआ हो तो हमें पीटो, मारो, चीर डालो, काट डालो, पहाड़ से नीचे गिरा दो, समुद्र में डुबा दो, टुकड़े-टुकड़े कर डालो, कतर डालो, जला डालो, लेकिन इस बेचारी जड़ महादेव मूर्ति को छोड़ दो। यदि इस तरह भी स्वीकार न हो तो हमसे दो करोड़ स्वर्णमुद्राएँ और ले लो, रक्षा करो, इस महादेवमूर्ति को मत छुओ।" यह कह कर वार-बार विनय करने पर, रोने-गिड़गिड़ाने, पैरों पड़ने, भूमि पर लोटने और प्रणाम करने पर, "मैं मूर्ति बेचता नहीं किन्तु तोड़ता हूँ" यों गरज कर, जनता की हाहाकार ध्वनि के बीच उ

गदया मूर्तिमतुत्रुटत्। गदापातसमकालमेव चानेकार्बुदपद्ममुद्रामूल्यानि रत्नानि मूर्तिमध्यादुच्छलितानि परितोऽवाकीर्यन्त। स च दग्धमुखः तानि रत्नानि मूर्तिखण्डानि च क्रमेलकपृष्ठेष्वारोप्य सिन्धुनदमुत्तीर्य स्वकीयां विजयध्वजिनीं गजिनीं नाम राजधानीं प्राविशत्।

अथ कालक्रमेण सप्ताशीत्युत्तरसहस्रतमे (१०८७) वैक्रमाब्दे सशोकं सकष्टञ्च प्राणांस्त्यक्तवति महामदे, गोरदेशवासी कश्चित् शहाबुद्दीन-नामा प्रथमं गजिनीदेशमाक्रम्य, महामदकुलं धर्मराजलोकाध्वन्यध्वनीनं विधाय, सर्वाः प्रजाश्च पशुमारं मारयित्वा, तद्रुधिरार्द्रमृदा गोरदेशे बहून् गृहान् निर्माय चतुरङ्गिण्याऽनीकिन्या

अतुत्रुटत्=अभिनत्, भेदितवानित्यर्थः। उच्छलितानि=उत्पतितानि। दग्धमुखः=दुष्टः। "मुँहजरा" इति हिन्दी। क्रमेलकाः=उष्ट्राः, "उष्ट्रे क्रमेलकमयमहाङ्गाः" इत्यमरः। विजयध्वजिनीम्=विजयध्वजवतीम्। "न कर्मधारयाद्" इति निषेधस्यासार्वत्रिकत्वमुक्तम्।

गोरदेशः=सिन्धुनद्याः पश्चिमदिशि यवनप्रधानो देशविशेषः। शहाबुद्दीनमपि देशनाम्ना "शहाबुद्दीन गोरी"ति कथयन्ति। अध्वनीनम्=पान्थम्। चतुर्भिरङ्गैः समेता चतुरङ्गिणी। "हस्त्यश्वरथपादातं सेनाङ्गं स्याच्चतुष्टयमि" त्यमरः। अनीकिन्या=सेनया। शीतलशोणि-

---

महमूद गजनवी ने भीषण गदा से मूर्ति तोड़ डाली। गदा गिरते ही अनेक अरब पद्म मूल्य के रत्न मूर्ति से उछल कर इधर-उधर बिखर गये। वह मुँहजला उन रत्नों और मूर्तिखण्डों को ऊँटों की पीठ पर लाद कर, सिन्धु नद को पार कर अपने विजयध्वज वाली राजधानी गजिनी में प्रविष्ट हुआ।

तदनन्तर, समय के फेर से वि० सं० १०८७ में महमूद की शोक और क्लेशपूर्वक मृत्यु हो जाने पर, गोरदेश निवासी शहाबुद्दीन नामक किसी यवन ने, पहले गजनी देश पर आक्रमण कर के, महमूद के वंशजों को यमलोक के पथ का पथिक बना कर, सारी प्रजा को पशुओं की मौत मारकर, प्रजा के रुधिर से गीली मिट्टी से गोर देश में अनेक महलों का

भारतवर्षं प्रविश्य, शीतलशोणितानप्यसयन् पञ्चाशदुत्तर–द्वादश-शतमितेऽब्दे (१२५०) दिल्लीमश्वयाम्बभूव ।

ततो दिल्लीश्वरं पृथ्वीराजं कान्यकुब्जेश्वरं जयचन्द्रञ्च पारस्परिकविरोध–ज्वर–ग्रस्तं विस्मृत–राजनीतिं भारतवर्ष–दुर्भाग्यायमाणमाकलय्यानायासेनोभावपि विशस्य, वाराणसीपर्यन्तमखण्डमण्डलमकण्टकमकीटकिट्टं महारत्नमिव महाराज्यमङ्गीचकार। तेन वाराणस्यामपि बहवोऽस्थिगिरयः प्रचिताः, रिङ्गत्तरङ्ग-भङ्गा गङ्गाऽपि शोणित-शोणा शोणीकृता, परस्सहस्राणि च देवमन्दिराणि

तान् = अनुष्णरक्तान्, युद्धेच्छाविरहितान् इति भावः । असयन् = असिना घ्नन् । अश्वयाम्बभूव = अश्वैरतिचक्राम । 'तेनातिक्रामती' ति णिच् । विस्मृता राजनीतिः = "वयं पञ्च वयं पञ्च वयं पञ्च शतञ्च ते । परैः सार्धं विवादे तु वयं पञ्चोत्तरं शतमि" त्येवं यौधिष्ठिरनीतिः, येन तम् । आकलय्य = अवधार्य । विशस्य = घातयित्वा, अकीटकिट्टम् = कीटकिट्ट-विरहितम् । कीटाः = कृमयः, किट्टम् = मलम् । अस्थिगिरयः = कीकस-पर्वताः । गिरिशब्दप्रयोगो महतो नाशकाण्डस्य ध्वननाय । रिङ्गन्तः = चलन्तः, तरङ्गभङ्गाः = ऊर्मिभेदा यस्यां सा । शोणितेन शोणा = रक्ता । शोणीकृता = शोणनदतामापादिता । मेकलगिरिसमुद्भूतो विहारविहारी महानद

निर्माण कर, चतुरङ्गिणी सेना के साथ भारतवर्ष में प्रवेश कर, युद्ध की इच्छा से रहित भारतीयों को तलवार के घाट उतारते हुए, १२५० में दिल्ली को घुड़सवार सेना से घेर लिया ।

तत्पश्चात् मुहम्मद गोरी ने दिल्लीश्वर पृथ्वीराज और कन्नौज-नरेश जयचन्द को आपसी फूट रूपी ज्वर से ग्रस्त, राजनीति के ज्ञान से शून्य और भारतवर्ष का दुर्भाग्यस्वरूप समझकर, दोनों को अनायास ही मारकर, वाराणसी तक विस्तृत, कीट और मल से अस्पृष्ट महारत्न के समान राज्य पर अधिकार कर लिया । वाराणसी में भी उसने हड्डियों के बहुत से पहाड़ चुन दिये, चञ्चल तरंगों वाली गंगा को भारतीयों के रुधिर से रंग कर शोणनद

भूमिसात्कृतानि ।

स एव प्राधान्येन भारते यावनराज्याङ्कुराऽऽरोपकोऽभूत् । तस्यैव च कश्चित् क्रीतदासः कुतुबुद्दीन–नामा प्रथमभारतसम्राट् संजातः ।

तमारभ्याद्यावधि राक्षसा एव राज्यमकार्षुः । दानवा एव च दीनानदीदलन् । अभूत् केवलम् अकबरशाह–नामा यद्यपि गूढशत्रु-र्भारतवर्षस्य, तथापि शान्तिप्रियो विद्वत्प्रियश्च । अस्यैव प्रपौत्रो मूर्तिमदिव कलियुगं, गृहीतविग्रह इव चाधर्मः, आलमगीरो-पाधिधारी अवरङ्गजीवः सम्प्रति दिल्लीवल्लभतां कलङ्कयति ।

शोणः । भूमिसात्कृतानि = धूलिसात्कृतानि । भारतसम्राट् , सम्राट्-सदृशो लाक्षणिकोऽयं शब्दः ।

राक्षसाः=निर्दयाः हिंसाप्रियाश्च । अदीदलन् = अजीघतन् , हिंसित-वन्त इत्यर्थः । गूढशत्रुः = गुप्तरिपुः । राजपुत्रवंश्यैः सहोद्वाहादिसम्बन्धं प्राचारयदिति मुद्रान्तरेण सर्वान् म्लेच्छान् विधित्सुरासीदिति तत्त्वम् । अवरङ्गजीवः = "औरङ्गजेब" इति नामवान् ।

बना दिया, और हजारों देव-मन्दिरों को धूल में मिला दिया ।

भारतवर्ष में यवन-राज्य का बीजारोपण (मुसलमानी राज्य के अङ्कुर का आरोपण) मुख्यतः उसी ने किया, और उसी का कुतुबुद्दीन नाम का एक गुलाम भारतवर्ष का प्रथम यवन सम्राट हुआ ।

उससे लेकर आज तक राक्षसों ने ही राज्य किया है, और दानवों ने ही दीनों की निर्मम हत्या की है । केवल अकबर नाम का बादशाह—यद्यपि वह भी भारतवर्ष का गुप्त शत्रु था—कुछ शान्तिप्रिय विद्वानों का आदर करने वाला हुआ । उसी का प्रपौत्र, मूर्तिमान कलियुग और शरीर धारण करके आया हुआ अधर्म-सा औरङ्गजेब—जिसने 'आलम-गीर' उपाधि धारण कर रखी है—इस समय दिल्ली के शासन को कलं-

अस्यैव पताकाः केकयेषु मत्स्येषु मगधेषु अङ्गेषु वङ्गेषु कलिङ्गेषु
दोधूयन्ते, केवलं दक्षिणदेशेऽधुनाऽप्यस्य परिपूर्णो नाधिकारः संवृत्त।
दक्षिणदेशो हि पर्वत-बहुलोऽस्ति अरण्यानी-सङ्कुलश्चास्ति
चिरोद्योगेनापि नायमशकन्महाराष्ट्रकेसरिणो हस्तयितुम्। साम्प्र
मस्यैवाऽऽत्मीयो दक्षिणदेश-शासकत्वेन "शास्तिखान"-नामा प्रेष्

वितस्ताया—(झेलम्)श्चन्द्रभागाया (चनाव) श्चान्तरालवर्ती केकय
देशः=रामायणसमये "गिरिव्रज" नाम्ना ख्याता नगर्येतदीयराजधान्य
सीत्। भरतजनन्याः केकय्या जन्मभूरियमेवेति रामायणे व्यक्तम्। गिरि
व्रजस्य (गिरिझक) जवनसाम्राज्यकाले "जलालपुर" इति नामकरणमभूत्

इन्द्रप्रस्थात्पश्चिमस्थो दृषद्वत्याश्च दक्षिणस्थो मरुभूमेः पूर्वस्थो भूखण्ड=
मत्स्यदेशः। मगधदेशः=कीकटापरनामा वर्त्तमान-दक्षिणविहारो गया
राजगृहादिसमवेतः। अङ्गदेशः=वर्त्तमान-भागलपुरसंवलितो भूखण्ड
विशेषः। अङ्गदेशात्पूर्वस्थितोऽधुना बङ्गालनाम्ना ख्यातो वङ्गदेशः।
कलिंगदेशः='उड़ीसा' इति साम्प्रतं ख्यातः।

अरण्यानी=महदरण्यम्, तया सङ्कुलः=व्याप्तः। महारा
केसरिणः, अत्र केसरिपदं श्रेष्ठवाचकम्,

"स्युरुत्तरपदे व्याघ्रपुङ्गवर्षभकुञ्जराः।
सिंहशार्दूलनागाद्याः पुंसि श्रेष्ठार्थगोचराः॥" इत्यमरः।

हस्तयितुम्=हस्ते कर्तुम्। वशीकर्तुमिति यावत्। शास्तिखान

कित कर रहा है। केकय (पंजाब), मत्स्य (राजपूताना), म
(विहार), अङ्ग (पूर्वी विहार), वङ्ग (बङ्गाल) और कलिङ्ग (उड़ीसा
में आज इसी के झंडे फहरा रहे हैं, केवल-दक्षिण देश ही ऐसा है
अभी भी इसका पूरा अधिकार नहीं हो पाया है।

दक्षिण देश में पर्वतों की अधिकता है और घने जंगल भी
बहुत हैं, इसीलिये बहुत दिनों के प्रयत्न के बावजूद भी औरंग
सिंहसदृश मराठों को वश में नहीं कर सका। सुना जाता है कि अब

इति श्रूयते। महाराष्ट्रदेशरत्नम्, यवन-शोणित-पिपासाऽऽकुल-कृपाणः, वीरता-सीमन्तिनी-सीमन्त-सुन्दर-सान्द्र-सिन्दूर-दान-देदीप्यमान-दोर्दण्डः, मुकुटमणिर्महाराष्ट्राणाम्, भूषणं भटानाम्, निधिर्नीतीनाम्, कुलभवनं कौशलानाम्, पारावारः परमोत्साहानाम्, कश्चन प्रातः स्मरणीयः, स्वधर्माऽऽग्रह-ग्रह-ग्रहिलः, शिव इव धृतावतारः शिववीरश्चास्मिन् पुण्यनगरान्नेदीयस्येव सिंहदुर्गे ससेनो निवसति। विजयपुराधीश्वरेण साम्प्रतमस्य प्रवृद्धं वैरम्। "कार्यं वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्" इत्यस्य सारगर्भा महती

'शाइस्ता खां" इति प्रसिद्धं नाम। रत्नशब्दस्य नित्यक्लीबत्वम्। यवनानाम्=मोहमदानां, शोणितस्य पिपासायामाकुलः कृपाणो यस्य सः। वीरस्य भावो वीरता=शूरता, सैव सीमन्तिनी=ललना, तस्याः सीमन्ते=केशवेशे, सुन्दरं सान्द्रं=घनं, यत्सिन्दूरदानं=नागकेशरार्चनं, तेन देदीप्यमानो दोर्दण्डः=बाहुदण्डो यस्य सः। श्रुत्यनुप्रासः। स्वधर्मस्य=सनातनधर्मस्य, य आग्रहग्रहः=हठादपि पालनम्, तत्र ग्रहिलः=दृढतरः। शिव इवेत्युत्प्रेक्षा। शिववीरः="शिवाजी" इति विख्यातः। पुण्यनगरात्-"पूना" इति ख्यातात्। नेदीयसि=अति-

---

का सगा-सम्बन्धी शाइस्ता खाँ दक्षिण देश का शासक बना कर वहाँ भेजा जा रहा है। महाराष्ट्र देश के रत्न, यवनों के रुधिर की प्यासी तलवार वाले, वीरता रूपी नायिका की माँग में सुन्दर चटकीला सिन्दूर लगाने से देदीप्यमान भुजाओं वाले, मराठों के मुकुटमणि, योद्धाओं के आभूषण, नीतियों के निधान, निपुणताओं के कुलगृह, परम उत्साहों के सागर, प्रातःस्मरणीय, सनातनधर्म के दृढतम पालक, अवतार धारण कर आये शिव के समान, महाराज शिवाजी पूना नगर से निकट ही सिंहगढ़ में सेनासहित रह रहे हैं। बीजापुर-नरेश के साथ इस समय इनकी शत्रुता बढ़ी हुई है। 'या तो कार्य को ही पूरा करूँगा या देह को नष्ट कर डालूँगा' यह इनकी सारगर्भित गम्भीर प्रतिज्ञा है।

प्रतिज्ञा। सतीनाम्, सताम्, त्रैवर्णिकस्य आर्यकुलस्य, धर्म भारतवर्षस्य च आशा–सन्तान–वितानस्यायमेवाऽऽश्रयः। इयं वर्तमाना दशा भारतवर्षस्य। किमधिकं विनिवेदयामो यो बलावगत–सकल–गोप्यतम–वृत्तान्तेषु योगिराजेषु" इति कथयि विरराम।

तदाकर्ण्य विविध–भाव–भङ्ग–भासुर–वदनो योगिराजो मुनि राजं तत्सहचरांश्च निपुणं निरीक्ष्य, तेषामपि शिववीरान्तरङ्ग मङ्गीकृत्य, मुनिवेषव्याजेन स्वधर्मरक्षाव्रतिनश्चोररीकृत्य, "वि यतां शिववीरः, सिद्ध्यन्तु भवतां मनोरथाः" इति मन्दं व्याहार्षी

अथ किमपि पिपृच्छिषामीति शनैरभिधाय बद्धकरस सोत्कण्ठे जटिलमुनौ "अवगतम्, यवनयुद्धे विजय एव, दैवादा

शयेनान्तिक इति नेदीयान्, तस्मिन्। आशायाः, सन्तानम्=परम् तस्य, वितानम्=विस्तारः, तस्य। योगवलेन=योगसामर्थ्य अवगतः=विज्ञातः, सकलो गोप्यतमः=रहस्यात्मको वृत्तान्तो यैस्ते

सतियों, सज्जनों, द्विजों, आर्यों, धर्म और भारतवर्ष की आशा एकमात्र आधार यही हैं। भारतवर्ष की यही वर्तमान दशा है। योगिराज हैं और योगबल से सारे गोप्य वृत्तान्त भी जानते हैं, आपसे अधिक क्या कहना ?" यह कह कर मुनि चुप हो गये।

यह वृत्तान्त सुनकर, योगिराज का मुख विविध भाव-भङ्गियों से उठा। उन्होंने मुनि और उनके साथियों को गौर से देखकर, उन्हें शिवाजी के अन्तरङ्ग सहायक समझ कर, और मुनि के वेष के अपने धर्म की रक्षा करने में कटिबद्ध जानकर, धीरे से 'वीर शिवा जय हो, आपके मनोरथ पूरे हों' यह कहा।

तत्पश्चात् 'मैं कुछ पूछना चाहता हूँ' धीरे से यह कह कर, जटा मुनिके उत्कण्ठापूर्वक हाथ जोड़ने पर योगिराज बोले, 'मैंने समझ लि

ग्रस्तोऽपि च सखिसाहाय्येनाऽऽत्मानमुद्धरिष्यति" इति समभाणीत्। मुनिश्च गृहीतमित्युदीर्य, पुनः किञ्चिद्विचार्य्येव, स्मृत्वेव च, दीर्घमुष्णं निःश्वस्य, रोरुध्यमानैरपि किञ्चिदुद्गतैर्बाष्पबिन्दुभिराकुलनयनो "भगवन्! प्रायो दुर्लभो युष्मादृक्षाणां साक्षात्कार इत्यपराऽपि पृच्छाऽऽच्छादयति माम्" इति न्यवेदीत्। स च "आम्! ऊरीकृतम्, जीवति सः, सुखेनैवाऽऽस्ते" इत्युदतीतरत्। अथ "तं कदा द्रक्ष्यामीति" पुनः पृष्टवति "तद्विवाहसमये द्रक्ष्यसि" इत्यभिधाय, बहूनि सान्त्वना-वचनानि च गम्भीरस्वरेणोक्त्वा, सपदि उपत्यकाम्, गण्डशैलान्, अधित्यकाञ्चाऽऽरुह्य पुनस्तस्मिन्नेव पर्वत-

---

दीर्घमुष्णं निःश्वस्य, गभीरशोकद्योतकमिदम्। रोरुध्यमानैः=भृशं वार्यमाणैः। उररीकृत्य=स्वीकृत्य। उदतीतरत्=उत्तरयाञ्चकार। सान्त्वनावचनानि=सामवाक्यानि। उपत्यकाम्=अद्रेरधः सन्निहितां भूमिम्। गण्डशैलान्=पर्वतात् पतितान् स्थूलपाषाणान्। "गण्डशैलास्तु च्युताः स्थूलोपला गिरेरि" त्यमरः। अधित्यकाम्=अद्रेरूर्ध्वां भूमिम्। "उपा-

---

यवन-युद्ध में शिवाजी की जीत ही होगी, दुर्दैव से आपत्तिग्रस्त होकर भी मित्रों की सहायता से वे अपने को उबार लेंगे।' मुनि ने भी 'भगवन्! समझ गया' यह कह कर, पुनः कुछ विचार-सा कर के, कुछ स्मरण-सा कर के, लम्बी और गरम साँस लेकर, रोके जाने पर भी कुछ निकल आये अश्रुकणों से आकुलनेत्र होकर निवेदन किया, 'भगवन्! आप के समान महात्माओं का दर्शन दुर्लभ है, अतः एक और प्रश्न मुझे उत्सुक कर रहा है।' योगिराज के 'हाँ स्वीकार किया, वह जीवित है और सुखपूर्वक ही है।' यह उत्तर देने पर, मुनि ने फिर पूछा 'उसे कब देखूँगा?' 'उसके विवाह के समय देखोगे।' यह कह कर, गम्भीर स्वर से अनेक प्रकार के आश्वासन देकर, योगिराज उसी समय पर्वत की घाटी, पर्वत से गिरी हुई बड़ी बड़ी शिलाओं और पर्वत के ऊपर की भूमि पर चढ़कर पुनः उसी

कन्दरे तपस्तप्तुं जगाम।

ततः शनैः शनैर्निर्यातेष्वपरिचितजनेषु, संवृत्ते च निर्मक्षि मुनिर्गौरबटुमाहूय, विजयपुराधीशाऽऽज्ञया शिववीरेण सह योद्धुं ससेनं प्रस्थितस्य अफजलखानस्य विषये यावत्किमपि प्र मियेष, तावत्पादचारध्वनिमिव कस्याप्यश्रौषीत्। तमवधार्य मनस्के इव मुनौ, गौरबटुरपि तेनैव ध्वनिना कर्णयोः कृष्ट समुत्थाय, निपुणं परितो निरीक्ष्य, पर्य्यटय, 'कोऽयम् ?' इति साम्रेडं व्याहृत्य, कमप्यनवलोक्य, पुनर्निवृत्य, 'मन्ये मार्जार ऽपि' इति मन्दं गुरवे निवेद्य, पुनस्तथैवोपविवेश। मुनिश्च 'मा कश्चिदितरः श्रौषीत्' इति सशङ्कः क्षणं विरम्य पुनरुपन्यस्तुमारेभे

धिभ्यां त्यकन्नासन्नारूढयोरि" त्युभयत्रापि त्यकन्। "उपत्यकाऽद्रेरा भूमिरूर्ध्वमधित्यके" त्यमरः। निर्मक्षिके = मक्षिकाणामभावो निर्म तस्मिन्, एकान्ते। मानवसञ्चारदेशे सर्वत्र मक्षिकास्तिष्ठन्तीति तदभा जन-संचाराभावो लक्ष्यते। मा श्रौषीत् = मा आकर्णयतु। उपन्यस्तुम्

गुफा में तपस्या करने चले गये।

उसके बाद, अपरिचित लोगों के धीरे-धीरे चले जाने और एका हो जाने पर, मुनि ने ज्यों ही गौरबटु को बुला कर, बीजापुरनरेश आज्ञा से वीर शिवा जी के साथ लड़ने के लिये सेना के साथ कूच चुके अफ़जल खाँ के विषय में कुछ पूछना चाहा, कि किसी के पैरों आहट सुनाई दी। उसे सुन कर मुनि के अन्यमनस्क से हो जाने पर, गोरा ब्रह्मचारी, उसी ध्वनि से आकृष्ट हुआ-सा उठ कर, चारों भलीभाँति देख कर, टहल कर बार-बार 'कौन है' कह कर, किसी को पाकर, फिर लौट गुरु से धीरे से 'मालूम होता है कोई बिल्ली है' कह कर, फिर वैसे ही बैठ गया। मुनि ने भी 'कोई दूसरा न सुनले' आशङ्का से थोड़ी देर रुक कर, फिर कहना शुरू किया—

"वत्स गौरसिंह ! अहमत्यन्तं तुष्यामि त्वयि, यत्त्वमेकाकी अपजलखानस्य त्रीनश्वान् तेन दासीकृतान् पञ्च ब्राह्मणतनयांश्च मोचयित्वा आनीतवानसीति। कथं न भवेरीदृशः ? कुलमेवेदृशं राजपुत्रदेशीयक्षत्रियाणाम्"। तावत् पुनरश्रूयत मर्मरः पादक्षेपश्च। ततो विरम्य, मुनिः स्वयमुत्थाय, प्रोच्चं शिलापीठमेकमारुह्य, निपुणतया परितः पश्यन्नपि कारणं किमपि नावलोकयामास चरणाक्षेपशव्दस्य। अतः पुनरेकतानेन निपुणं निरीक्षमाणेन गौरसिंहेन दृष्टं, यत् कुटीर-निकटस्थ-निष्कुटक-कदलीकूटे द्वित्रास्तरवोऽतितरां कम्पन्ते इति। तदेव संशयस्थानमित्यङ्गुल्या निर्दिश्य, कुटीर-वलीके गोपयित्वा स्थापितानामसीनामेकमाकृष्य, रिक्त-

---

कथयितुम्। राजपुत्रदेशः=राजपुत्रशब्दापभ्रंशीभूतो लोके सम्प्रति "राजपूताना" इति प्रसिद्धशब्दव्यपदेश्यो देशः। मर्मरः=शुष्कपर्णध्वनिः। "अथ मर्मरः। स्वनिते वस्त्रपर्णानां" इत्यमरः। एकतानेन=एकचित्तेन। निष्कुटा एव निष्कुटकाः=गृहारामाः, "गृहारामास्तु निष्कुटा"इत्यमरः, कुटीरनिकटे तिष्ठन्तीति कुटीरनिकटस्थाश्च ते गृहारामास्तेषु, कदलीनाम्=रम्भाणाम्, कूटे=समूहे। वलीके=पटले। "वलीकनीध्रे

"बेटा गौरसिंह ! मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। तुम अकेले ही अफजल खाँ के तीन घोड़ों और उसके द्वारा दास बनाये गये पाँच ब्राह्मण बालकों को छुड़ा कर ले आये। तुम ऐसे क्यों न होगे, राजपूताने के क्षत्रियों का कुल ही ऐसा है।" इसी बीच मर्मर ध्वनि और पैरों की आहट पुनः सुनाई दी। तब बोलना बन्द कर, मुनि ने स्वयं उठकर एक ऊँची शिला पर चढ़कर, चारों ओर भलीभाँति देखा, पर पैरों की आहट का कोई कारण नहीं दिखाई दिया। इसलिए, एकाग्रचित्त होकर पुनः भलीभाँति देखते हुए गौरसिंह ने देखा कि कुटी के निकट की गृहवाटिका के केलों के झुरमुट में दो तीन पेड़ बहुत अधिक हिल रहे हैं। 'सन्देह का

हस्तेनैव मुनिना पृष्ठतोऽनुगम्यमानः कपोल-तल-विलम्बमाना
चक्षुश्चुम्बिनः कुटिल-कचान् वामकराङ्गुलिभिरपसारयन्, मुनि
वेषोऽपि किञ्चित्कोप-कषायित-नयनः, कर-कम्पित-कृपा-कृपण
कृपाणो महादेवमाराराधयिषुस्तपस्विवेषोऽर्जुन इव शान्तवीररस
द्वयस्नातः सपदि समागतवान् तन्निकटे, अपश्यच्च लता-प्रतान
वितान-वेष्टित-रम्भा-स्तम्भ-त्रितयस्य मध्ये नीलवस्त्र-खण्ड

पटलप्रान्त" इत्यमरः। "छप्पर की ओरी" इति हिन्दी।

रिक्तहस्तेन=शून्यकरेण। कपोलतल-विलम्बमानान्=गण्ड
संलग्नान्। किञ्चित्कोपेन=ईषत्क्रोधेन, कषायिते कलुषिते, नयने=नेत्रे
यस्य सः। करे कम्पितः कृपाकृपणः=दयाशून्यः, कृपाणः=असिर्य
सः। आरिराधयिषुः=सेवितुमिच्छुः। शङ्करसमाराधनाय करकलितचा
मध्यमपाण्डवस्तपश्चचारेति महाभारतीया कथा किरातार्जुनीयमहाकाव्यमू
भूता। पूर्णोपमा। लतानाम्=वल्लीनाम्, "वल्ली तु व्रततिर्लते"त्यमर
प्रतानानि=सूक्ष्मतन्तवस्तेषां, वितानम्=विस्तारः, तेन वेष्टितम्=वल
यितम्, रम्भास्तम्भानां त्रितयम्=कदलीस्तम्भत्रयं, तस्य। यवनयुवक
पश्यदित्यन्वयः। तमेव विशिनष्टि। नील्या रक्तं नीलं, तच्च वस्त्रखण्डम्

स्थान वही है' ऐसा उँगली के इशारे से बताकर, छप्पर की ओरी
छिपाकर रखी गई तलवारों में से एक तलवार खींच कर गौरसिंह उ
ओर चल दिया। मुनि खाली हाथ ही उसके पीछे हो लिये। गालों प
लटकते हुए और आँखों पर आ जाने वाले अपने घुँघराले बालों
सँभालते हुए, मुनिवेष में होते हुए भी कुछ क्रोध से लाल नेत्र किये हु
हाथ में निर्दय तलवार लिये हुए, महादेव की आराधना करने के लि
तपस्वी वेषधारी अर्जुन के समान शान्त और वीर दोनों रसों से सराबो
गौरसिंह, झट उसके समीप आ पहुँचा और वहाँ आकर उस
लताओं की विस्तृत बेलों से वेष्टित केले के तीन पेड़ों के बीच, नीले कप

वेष्टित-मूर्द्धानं हरित-कञ्चुकं श्याम-वसनानद्ध-कटितट-कर्बुरा-धोवसनम्, काकासनेनोपविष्टम्, रम्भालवाल-लग्नाधोमुख-खड्ग-त्सरुन्यस्त-विपर्यस्त-हस्त-युगलम्, लशुनगन्धिभिर्निश्वासैः कदली-किसलयानि मलिनयन्तम्, नवाङ्कुरित-श्मश्रु-श्रेणि-च्छलेन कन्य-कापहरण-पङ्क-कलङ्कपङ्क-कलङ्किताननम्, विंशतिवर्ष-कल्पं यवन-

---

तेन वेष्टितो मूर्धा यस्य तम्। हरितः=हरिद्वर्णः, कञ्चुकः=चोलको यस्य तम्। "अङ्गरखा, चोंगा" इति हिन्दी। श्यामवसनेन=कृष्णवस्त्रेण "वस्त्रमाच्छादनं वासश्चैलं वसनमंशुकमि" त्यमरः, आनद्धम्=आच्छा-दितम्, कटितटे कर्बुरम्=अनेकवर्णम्, "चित्रं किर्मीर-कल्माषशबलै-ताश्च कर्बुर" इत्यमरः,अधोवसनम्=नाभ्यूरुजङ्घाच्छादनम्, "तहमत, लुङ्गी" इति हिन्दी, यस्य तम्। काकासनेन=चिबुकार्पितजानुयुगलासनेन। रम्भाया आलवाले=आवापे, "स्यादालवालमावाप" इत्यमरः, वृक्षादि-मूले समन्ततोऽम्भसां धारणार्थं वेष्टनमावालम्, "ओटा" इति हिन्दी, अधो-मुखस्य=निम्नाननस्य, खड्गस्य त्सरौ=मुष्टौ, "तलवार की मूठ" इति हिन्दी "त्सरुः खड्गादिमुष्टौ स्यादि" त्यमरः। विशिष्टवाचकानां शब्दानां सति विशेषणे विशेष्यमात्रपरत्वमित्यभियुक्ताभ्युपगमात्प्रकृतेऽधिकपददोषशङ्का-नवकाशः। न्यस्तम्=स्थापितम्, विपर्यस्तम्=न्युब्जीभूतम्, हस्तयुग-लम्=करद्वयं यस्य तम्। लशुनस्य गन्ध इव गन्धो येषां तैः, किसलयानि= नवपल्लवानि। नवाङ्कुरितायाः=नवस्फुरितायाः, श्मश्रुश्रेण्याः छलेन= कन्यकाया अपहरणरूपं यत् पङ्कम्=पापम्, "अस्त्री पङ्कं पुमान् पाप्मे" त्यमरः, तस्य यः कलङ्कः=दुर्यशः। स एव पङ्कः=कर्दमः, "पङ्कोऽस्त्री शाद-कर्दमावि" त्यमरः, तेन कलङ्कितम्=भ्रष्टम्, आननं यस्य तम्। मुखसमु-द्भूतश्मश्रूणां कलङ्कपङ्कत्वेनोत्प्रेक्षा। विंशतिवर्षकल्पम्=प्रायो विंशतिवर्ष-

---

के टुकड़े को सिर पर लपेटे हुए, कमर में काला कपड़ा बाँधे हुए, चितकबरे रंग की लुङ्गी पहने हुए, काकासन से (घुटनों के बीच में ठोढ़ी डालकर, सिकुड़कर) बैठे हुए, केले के थाले पर अधोमुख रखी तलवार की मूठ पर दोनों हाथ उलटे रखे हुए, जरा-जरा सी निकलती रेख (मूँछ और दाढ़ी) के बहाने कन्यापहरण रूप पापकर्म से उत्पन्न अपयश रूप कीचड़

युवकम्। ततः परस्परं चाक्षुषे सम्पन्ने दृष्टोऽहमिति निश्चित्य, उत्प्लुत्य, कोशात् कृपाणमाकृष्य, युयुत्सुः सोऽपि सम्मुखमवतस्थे। ततस्तयोरेवं संजाताः परस्परमालापाः।

गौरसिंहः—कुतो रे यवन-कुल-कलङ्क !

यवन-युवकः—आः ! वयमपि कुत इति प्रष्टव्याः ? भारतीय-कन्दरिकन्दरेष्वपि वयं विचरामः, शृङ्ग-लाङ्गूल-विहीनानां हिन्दु-पद-व्यवहार्याणाञ्च युष्मादृक्षाणां पशूनामाखेटक्रीडया रमामहे।

गौरसिंहः—[सक्रोधं विहस्य] वयमपि तु स्वाङ्कागतसत्त्व-वृत्तयः शिवस्य गणा अत्रैव निवसामः, तत्सुप्रभातमद्य, स्वयमेव

वयस्कम्। चाक्षुषे=चक्षुरिन्द्रियजन्यप्रत्यक्षे। उत्प्लुत्य=उत्पत्य। "कूद-कर" इति हिन्दी। युयुत्सुः=योद्धुमिच्छुः। अवतस्थे=स्थितः, "समव-प्रविभ्यः स्थ" इत्यात्मनेपदम्। भारतीयाः=भारतभवाः, ये कन्दरिणः= शैलास्तेषां कन्दरेषु=गुहासु। आखेटक्रीडया=मृगयाखेलया।

स्वाङ्के आगताः सत्त्वाः=प्राणिन एव वृत्तयः=जीवन-

से कलङ्कित मुखवाले, लगभग बीस वर्ष की उम्र के एक मुसलमान युवक को देखा। तदनन्तर सामना हो जाने पर, 'मैं देख लिया गया हूँ' यह समझकर, झुरमुट से कूदकर, म्यान से तलवार खींचकर, वह मुसलमान युवक भी लड़ने के लिए सामने खड़ा हो गया। तदनन्तर उन दोनों की आपस में इस प्रकार बातचीत हुई—

गौरसिंह—क्यों रे यवन कुलकलङ्क ! यहाँ कहाँ से आया ?

यवनयुवक—अरे ! हमसे भी 'कहाँ से' पूछना है ? हम भारतवर्ष की पर्वतगुफाओं में भी विचरण करते हैं और हिन्दू नामधारी तुम जैसे सींग-पूछ विहीन पशुओं का शिकार कर आनन्द मनाते हैं।

गौरसिंह—(क्रोधपूर्वक हँसकर) पास में आये हुए दुष्ट जीवों पर ही जीवित रहने वाले शिव के गण रूप हम लोग भी तो यहीं रहते हैं, तो आज की सुबह बहुत शुभ है, तुम स्वयं ही धधकती दावाग्नि में पतंग की

त्वं दीर्घ-दाव-दहने पतङ्गायितोऽसि ।

यवनयुवकः—अरे रे वाचाल ! ह्यो रात्रौ युष्मत्कुटीरे रुदतीं समायातां ब्राह्मण-तनयां सपदि प्रयच्छत, तत्कदाचिद् दयया जीवतोऽपि त्यजेयम् , अन्यथा मदसिभुजङ्गिन्या दष्टाः क्षणात् कथावशेषाः संवत्स्यर्थ ।

कलकलमेतमाकर्ण्य श्यामबटुरपि कन्यासमीपादुत्थाय दृष्ट्वा च हन्तुमेतं यवनवराकं पर्य्याप्तोऽयं गौरसिंह इति मा स्म गमदन्योऽपि कश्चित् कन्यकामपजिहीर्षुरिति वलीकादेकं विकटखड्गमाकृष्य त्सरौ गृहीत्वा कन्यकां रक्षन् , तदध्युषित-कुटीर-निकट एव तस्थौ ।

साधनानि, येषां ते । दीर्घश्चासौ दावदहनः=वनाग्निस्तस्मिन् । "दवदावौ वनानल" इत्यमरः । जीवतः, शसो रूपमिदम्-युष्मानित्यध्याह्रियमाण-विशेष्यस्य विशेषणम् । मदसिरेव भुजङ्गिनी=सर्पिणी, तया । रूपकम् । संवत्स्यर्थ, "वृद्भ्यः स्यसनोरि" ति परस्मैपदम् , "न वृद्भ्यश्चतुर्भ्य" इतीण्निषेधः ।

कलकलम्=कोलाहलम् । वलीकात्=पटलप्रान्तात् , तया=कन्यकया, अध्युषितस्य=सेवितस्य, कुटीरस्य निकटे तस्थौ=स्थितः ।

तरह जलने आ गये हो ।

यवन युवक—अरे बकवादी ! कल रात जो ब्राह्मण की लड़की रोती-रोती तुम्हारी कुटी में आई थी, उसे तुरन्त मेरे हवाले कर दो तो शायद दया करके तुम्हें जीता छोड़ दूँ , नहीं तो क्षण भर में ही मेरी इस नागिन सी तलवार से डँसे गये तुम्हारी सिर्फ कहानी ही बाकी बचेगी ।

यह कोलाहल सुनकर, साँवला ब्रह्मचारी भी, बालिका के पास से उठ कर, यवन युवक और गौरसिंह को देखकर यवन युवक का काम तमाम कर सकने के लिए अकेले गौरसिंह को ही काफी समझकर, 'बालिका का अपहरण करने कोई दूसरा यवन भी न आ जाय' यह सोचकर छप्पर को ओरी से एक भयंकर तलवार खींचकर उसकी मूँठ पकड़कर, बालिका की रक्षा करता हुआ, जिस कुटी में बालिका थी उसके समीप ही खड़ा हो गया।

गौरसिंहस्तु "कुटीरान्तः कन्यकाऽस्ति, सा च यवन-वध-व्यसनिनि मयि जीवति न शक्या द्रष्टुमपि, किं नाम स्प्रष्टुम्! तद् यावत्तव कवोष्ण-शोणित-तृषित एष चन्द्रहासो न चलति, तावत् कूर्दनं वा, उत्फालं वा यच्चिकीर्षसि तद्विधेहि" इत्युक्त्वा व्यालीढमर्य्यादया सज्जः समतिष्ठत।

ततो गौरसिंहः दक्षिणान् वामांश्च परश्शतान् कृपाणमार्गान-ङ्गीकृतवतः,दिनकर-कर-स्पर्श-चतुर्गुणीकृत-चाकचक्यैः चञ्चच्चन्द्र-हासचमत्कारैश्चक्षूंषि मुष्णतः, यवन-युवक-हतकस्य, केनाप्यनुप-

---

यवनानां वध एव व्यसनं यस्य तादृशे। कवोष्णस्य=ईषदुष्णस्य, "कोष्णं कवोष्णं मन्दोष्णं कदुष्णं त्रिषु तद्वती" त्यमरः, शोणितस्य=लोहि-तस्य, तृषितः=पिपासितः। चन्द्रहासः=खड्गः "खड्गेतु निस्त्रिंशचन्द्रहासा-सिरिष्टय" इत्यमरः। कूर्दनं वा उत्फालं वा="कूदना, उछलना" इति हिन्दी। व्यालीढम्=युद्धावस्थानविशेषः, तन्मर्यादया। कोदण्डमण्डना-दिषु प्रसिद्धमिदम्। "पैंतरा" इति हिन्दी।

दिनकरकराणाम्=सूर्यकिरणानाम्, स्पर्शेन चतुर्गुणीकृतम्= वर्धितम्, चाकचक्यम्=प्रतिभासविशेषो यैस्तैः। चञ्चच्चन्द्रहासचम-त्कारैः=सञ्चरत्खड्गचमत्कारैः। मुष्णतः=चोरयतः। हतकस्य= दुष्टस्य। केनापीत्यनुपलक्षितविशेषणम्। "सविशेषणानां वृत्तिर्न" इति तु न

गौरसिंह, "बालिका कुटी के भीतर है, यवनों के वध के व्यसनी मेरे जीते जी तू उसे छूना तो दूर, देख भी नहीं सकता। जब तक तेरे खून की प्यासी यह तलवार नहीं चलती तब तक चाहे जो उछल-कूद मचा ले।" यह कहकर पैंतरा बना कर, तैयार हो गया।

तब गौरसिंह ने, तलवार के, दायें-बायें सैकड़ों पैंतरे बदलने वाले, सूर्य की किरणों के सम्पर्क से जिसकी चमक चौगुनी हो रही थी, ऐसी चलती हुई तलवार की चमचमाहट से आँखों को चौंधिया रहे उस दुष्ट

लक्षितोद्योगः, अकस्मादेव स्वासिना कलित-क्लेद-संजात-स्वेद-जल-जालं विशिथिल-कच-कुल-मालं भग्न-भ्रू-भयानक-भालं शिरश्चिच्छेद।

[अथ मुनिरपि दाडिम-कुसुमास्तरणाच्छन्नायामिव गाढ-रुधिर-दिग्धायां ज्वलदङ्गार-चितायां चितायामिव वसुधायां शयानं वियु-

---

नित्यसापेक्षस्थल इति सुव्यक्तमेव। स्वासिना शिरश्चिच्छेदेत्यन्वयः। शिरो विशिनष्टि—कलितेन=व्याप्तेन, क्लेदेन=श्रमेण, सञ्जातस्य=उत्पन्नस्य, स्वेदजलस्य=घर्मजलस्य, "घर्मो निदाघः स्वेद" इत्यमरः, जालम्=समूहो यस्मिंस्तत्। विशिथिलाः=इतस्ततः परिभ्रष्टाः, कचानाम्=केशानाम्, कुलस्य=समूहस्य, माला=पङ्क्तिः, यस्मिंस्तत्। भग्नया=छिन्नया, भ्रुवा=दृगूर्ध्वभागेन, "ऊर्ध्वे दृग्भ्यां भ्रुवौ स्त्रियावि" त्यमरः, भयानकम्=भीषणम्, भालम्=ललाटम्, यस्मिंस्तत्। जालम् मालम् भालमित्यत्र यमकम्।

वसुधायाम्=पृथिव्याम्। शयानम्=पतितम्। वसुधां विशिनष्टि-गाढेन=घनीभूतेन, रुधिरेण=लोहितेन, दिग्धायाम्=लिप्तायाम्। "दिग्धो विषाक्तबाणे स्यात्पुंसि लिप्तेऽन्यलिङ्गक" इति मेदिनी। उत्प्रेक्षते—दाडिमस्य=करकस्य, 'दाडिमस्तु त्रिलिङ्गः स्यादेलायां करके त्रिष्वि' ति मेदिनी, कुसुमानाम्, आस्तरणेन=विष्टरेण, आच्छन्नायामिव। पुनरप्युत्प्रेक्षते ज्वलदङ्गारैः, चितायाम्=व्याप्तायाम्। चितायाम्=चितौ, "चिता चित्या चितिः स्त्रियामि" त्यमरः। भस्मीभवनाय न यावनैश्चिता प्राप्यते। हिन्दुकरेण मृत्युमवाप्य कियतः कालस्य कृते सा

यवन के श्रम करने से निकले हुए पसीने से तर, अस्तव्यस्त बालों वाले, टेढ़ी भौंहों से भयानक लगने वाले ललाट वाले शिर को ऐसी सफाई से काट डाला कि कोई देख भी न पाया।

तत्पश्चात् मुनि ने भी, अनार के फूलों के बिछौने से ढकी हुई सी, गाढ़े खून से लथपथ हो रही, जलते अंगारों से व्याप्त चिता के समान

ज्यमान-भारतभुवमालिङ्गन्तमिव निर्जीवीभवदङ्गबन्ध-चालन-परं शोणित-सङ्घात-व्याजेनान्तः-स्थित-रजोराशिमिवोद्गिरन्तं कलित-सायन्तन-घनाऽऽडम्बर-विभ्रमं सतत-ताम्रचूड-भक्षण-पातकेनेव ताम्रीकृतं छिन्न-कन्धरं यवनहतकमवलोक्य सहर्षं ससाधुवादं सरो-मोद्गमञ्च गौरसिंहमाश्लिष्य, भ्रूभङ्गमात्राऽऽज्ञप्तेन भृत्येन मृतक-

---

लब्धाऽनेनेति ध्वनिः। चिन्ताचितयोर्दाहकत्वपर्यालोचनापरमिदं पद्यमनुभवपथपथिकम्—"चिन्ताचिताद्वयोर्मध्ये बिन्दुमात्रं विशेषकम्। सजीवं दहते चिन्ता निर्जीवं दहते चिता॥" यवनहतकं विशिनष्टि—निर्जीवीभवताम्=निष्प्राणतां गच्छताम्, अङ्गबन्धानाम्=शरीरसन्धीनाम्, चालने, परम्=निरतम्। शोणितसंघातव्याजेन=रुधिरप्रवाहच्छलेन। अन्तःस्थितो यो रजोराशिः=रजोगुणसमूहः, तमिवेत्युत्प्रेक्षा। उद्गिरन्तम्=वमन्तम्। कलितः=धारितः, सायन्तनस्य=सायंभवस्य, घनाडम्बरस्य=मेघविडम्बनायाः, विभ्रमः=विलासो येन तम्। सततम्=सर्वदा, यत् ताम्रचूडस्य=कुक्कुटस्य, "कृकवाकुस्ताम्रचूडः कुक्कुटश्चरणायुध" इत्यमरः, भक्षणम्=अशनम्, तदेव पातकम्=पापं तेनेव, ताम्रीकृतम्=रक्तीकृतम्। छिन्नकन्धरम्=कृत्तग्रीवम्। सायङ्कालिक-

---

पृथ्वी पर लुढ़क रहे, बिछुड़ती हुई भारत भूमि का आलिङ्गन करते हुए से, निर्जीव हो रही अंगसंधियों को हिलाते और छटपटाते हुए, रुधिर राशि के बहाने भीतर के रजोगुण को उगलते हुए से, सायंकालीन मेघ के समान, मानों निरन्तर मुर्गा खाने के पाप से लाल हो गये, कटे हुए सिर वाले, दुष्ट यवन को देख कर, हर्षपूर्वक, शाबाशी देते हुए, रोमाञ्चित होकर, गौरसिंह का आलिंगन कर के, आँखों के इशारे मात्र से आज्ञप्त

कञ्चुक–कटिबन्धोष्णीषादिकमन्विष्याऽऽनीतं पत्रमेकमादाय सगणः स्वकुटीरं प्रविवेश ।

इति प्रथमो निश्वासः ।

सूर्य इव संजातमिति यावत् । कटिबन्धः=जघनपट्टिका "पेटी" इति हिन्दी । उष्णीषम्=शिरोवेष्टनम् ।

निश्वास इति वाक्यविन्यासरूपे गद्यकाव्ये निश्वासप्रश्वासा एव परिच्छेदका भवन्तीति परिच्छेदकानामङ्कसर्गाध्यायादिसंज्ञाः समुपेक्ष्य निश्वाससंज्ञामेवादरयाञ्चकार ग्रन्थकारः । यद्यपि बाणादिभिरुच्छ्वाससंज्ञा गृहीता, किन्तु सा शोकक्रोधादावेवापेक्षितेति तामपि तत्याज । भवति चात्र प्राचीनं पद्यम्—"प्रौढिप्रकर्षेण पुराणरीति-व्यतिक्रमः श्लाघ्यतमः कवीनाम्" इति ग्रन्थकृच्छिष्यकृता टिप्पणी ।

इति शिवराजविजयवैजयन्त्यां प्रथमनिश्वासविवरणम् ।

भृत्य द्वारा, मृतक के चोगे, कमरबन्द और पगड़ी की तलाशी लेकर लाये गये एक पत्र को लेकर, सब के साथ अपनी कुटी में प्रवेश किया ।

शिवराजविजय के प्रथम निश्वास का हिन्दी अनुवाद समाप्त ।

इतस्तु स्वतन्त्र–यवनकुल–भुज्यमान–विजयपुराधीश–प्रेषितः पुण्यनगरस्य समीपे एव प्रक्षालित–गण्डशैल–मण्डलायाः, निर्झर-वारिधारा–पूर–पूरित–प्रबल–प्रवाहायाः, पश्चिम-पारावार-प्रान्त-प्रसूत-गिरि-ग्राम-गुहा-गर्भ-निर्गताया अपि प्राच्य-पयोनिधि-चुम्बन-चञ्चुरायाः, रिङ्गत्–तरङ्ग–भङ्गोद्भूतावर्त्त–शत–भीमायाः,

---

दुर्गादविदूर एव तिष्ठति स्मेति सम्बन्धः। अपजल-खानं विशिनष्टि-स्वतन्त्रम्=स्वच्छन्दम् यद् यवनकुलं तेन भुज्यमानस्य=शास्यमानस्य, विजयपुरस्य=तन्नामकनगरस्य, अधीश्वरेण, प्रेषितः=प्रहितः। इदं तात्कालिकस्थितिप्रदर्शनमात्रफलकं ननु साहित्यिकविवेचनया समुपयोगि विशेषणमिति वेदितव्यम्।

भीमाया नीरं कद्रूकुर्वन्निति सम्बन्धः। नदीं विशिनष्टि–प्रक्षालितानि=धौतानि, गण्डशैलानाम्=गिरिच्युतस्थूलशिलानाम्, मण्डलानि यया तस्याः। निर्झराणाम्=जलनिर्गमस्रोतसाम्, वारिधारापूरैः=जलधारासमूहैः, पूरितः=भरितः, प्रबलः=वेगवान्, प्रवाहो यस्यास्तस्याः। पश्चिमश्चासौ पारावारः=समुद्रः "समुद्रोऽब्धिरकूपारः पारावारः सरित्पतिरि" त्यमरः, तस्य, प्रान्ते=निकटप्रदेशे, यो गिरीणां ग्रामः=समूहः, तस्य गुहाः=गह्वराणि तासां गर्भतः=मध्यात्, निर्गतायाः=समुत्पन्नायाः। प्राच्यः=प्राचीभवः, यः पयोनिधिः, तच्चुम्बने चञ्चुरायाः=चपलायाः। पश्चिमसमुद्रान्निःसृत्य पूर्वसमुद्रं प्रविष्टाया इति वाच्योऽर्थः। एवमुक्तिः पाश्चात्यरमणीनां प्राच्यसंपर्करूपसाम्प्रतिकव्यवहारोपहासाय। रिङ्गताम्=सञ्चलताम्, तरङ्गाणाम्=ऊर्मीणाम्, भङ्गैः=

इधर स्वेच्छाचारी यवनों द्वारा शासित बीजापुर के अधिपति द्वारा भेजा गया, पूना के समीप ही, पर्वतों से गिरे हुए बड़े-बड़े पत्थरों को धोने वाली, झरनों की जलधाराओं से पूर्ण प्रबल प्रवाह वाली, पश्चिमी सागर की तटवर्ती पर्वत श्रेणियों की गुफाओं से निकली हुई भी पूर्वी समुद्र को चूमने को उतावली (पूर्वी समुद्र में गिरने वाली), चंचल लहरों के टूटने से उत्पन्न होने वाले सैकड़ों भँवरों के कारण भयंकर लगने वाली

भीमाया नद्याः, अनवरत-निपतद्वकुल-कुल-कुसुम-क
सुरभीकृतमपि नीरं वगाहमान-मत्त-मतङ्गज-मद-धाराभिः
कुर्वन्;हय-हेषा-ध्वनि-प्रतिध्वनि-बधिरीकृत-गव्यूति-मध्यगाध्व
वर्गः,पट-कुटीर-कूट-विहित-शारदाम्भोधर-विडम्बनः, निरप

छेदैः, उद्भूताः=उत्पन्नाः, ये आवर्ताः=अम्भसां भ्रमाः, तैः भीमा
भयदायिन्याः। "घोरं भीमं भयानकमि" त्यमरः। भीमायाः=
नामवत्याः। अनवरतम्=सततम्,निपतताम्=प्रच्यवताम्, वकुल
कुसुमानाम्=वञ्जुल-समूह-सुमानाम्, कदम्बेन=समूहेन, सुरभीकृ
सुगन्धितामापादितम्। वगाहमानानाम्=प्रविशताम्, जलक्रीडां कु
मिति भावः, "वष्टि भागुरिरल्लोपमवाप्योरुपसर्गयोरि" त्यल्लोपः, मत्ता
दानभरितानाम्, मतङ्गजानाम्=करिणाम्, मदधाराभिः=दान
कटूकरणे हेतुः। हयानाम्=अश्वानाम्, हेषा=ध्वनिः, यद्यपि
शब्दोऽश्वशब्दे, "अश्वानां हेषा ह्रेषा च निःस्वन" इत्यमरात् तथा च
शब्दोच्चारणमनपेक्षितम्, तथापि विशिष्टवाचकपदानां सति विशेषणवा
पदान्तरप्रयोगे विशेष्यमात्रपरत्वस्य "सकीचकैर्मारुतपूर्णरन्ध्रैरि" त्य
दृष्टत्वेन केवलनिःस्वनवाचकत्वेन नाश्वशब्दवैयर्थ्यमिति वेदितव्यम्।

तद्ध्वनिप्रतिध्वनिभिः बधिरीकृतः=श्रुतिसामर्थ्यविकली
गव्यूतिमध्यगः=क्रोशद्वयान्तरालवर्ती, "गव्यूतिः स्त्री क्रोशयुगमि" त्य
अध्वनीनवर्गः=पथिकसमूहो येन सः। पटकुटीराणाम्=उप
काणाम्, "उपकार्योपकारिके" त्यमरः, कूटैः=समूहैः, विहिता, श
दाम्भोधराणाम्=शरन्मेघानाम्, निर्जलत्वेन श्वेतवर्णानामिति तासां

भीमा नदी के निरन्तर गिर रहे बकुल पुष्पों से सुशोभित जल को
क्रीडा कर रहे मदमत्त हाथियों की मदधारा से और भी अधिक तीव्र
वाला बनाता हुआ, घोड़ों के हिनहिनाने की आवाज की प्रतिध्वनि से
कोस तक के यात्रियों को बहरा बना देने वाला, सफेद खेमों के समू

भारताभिजन-जन-पीडन-पातक-पटलैरिव समुद्धूयमान-नीलध्वजै-रुपलक्षितः, विजयपुरेश्वरस्यान्यतमः सेनानीः अपजलखानः प्रताप-दुर्गादविदूर एव शिववीरेण सहाऽऽहवद्यूतेन चिक्रीडिषुः ससेन-स्तिष्ठति स्म।

अथ जगतः प्रभाजालमाकृष्य, कमलानि सम्मुद्रय, कोकान् सशोकीकृत्य, सकल-चराचर-चक्षुःसञ्चार-शक्तिं शिथिलीकृत्य, कुण्डलेनेव निज-मण्डलेन पश्चिमामाशां भूषयन्, वारुणी-सेवने-

विडम्बना=अनुकृतिर्येन सः। समुद्धूयमानैः=कम्पमानैः, नीलध्वजैः=नीलपताकाभिः, उपलक्षितः=युतः। उत्प्रेक्षते—निरपराधानाम्=निर्दोषाणाम्, भारताभिजनानाम्=भारतीयानाम्। यत्र पूर्वैरुषितं तदभिजनात्मनाऽऽख्यायते। तिष्ठति स्म=अतिष्ठद्। 'लट् स्म' इति स्मयोगे लट्। अन्यतमः=अनेकेष्वेकः। आहवद्यूतेन=युद्धदुरोदरेण।

अथ भगवान् भास्वान् चक्षुषामगोचर एव संजात इति सम्बन्धः। जगतः=संसारस्य। प्रभाजालम्=दीप्तिसमूहम्। आकृष्य=आकुञ्च्य। सम्मुद्रय=सङ्कोच्य। कोकान्=चक्रवाकान्। "कोकश्चक्रश्चक्रवाक" इत्यमरः। सशोकीकृत्य=दुःखिनो विधाय। दम्पत्योः परस्परं वियोगेन शोकः। सकलस्य, चराचरस्य=स्थावरजङ्गमात्मकस्य। चक्षुषाम्=नेत्राणाम्। सञ्चारस्य=कार्यकरणस्य, दर्शनस्येति यावत्, शक्तिम्=सामर्थ्यम्। कुण्डलेन=कर्णभूषणेन। 'कुण्डलं कर्णभूषणमि' त्यमरः। पश्चिमा

शरद के बादलों का उपहास करने वाला, निरपराध भारतीय जनता के उत्पीडन से उत्पन्न पापराशि के समान नीली पताकाओं से पहचाना जाने वाला, बीजापुराधीश का प्रधान सेनापति अफ़ज़ल खाँ, शिवा जी के साथ युद्धरूपी जुआ खेलने की इच्छा से, प्रताप दुर्ग के समीप ही पड़ाव डाले हुए था।

तदुपरान्त, संसार के प्रकाश-समूह को खींच कर, कमलों को संकुचित कर, चक्रवाकों को शोकमग्न कर, सम्पूर्ण जड़-चेतन जगत् की दर्शन-शक्ति को शिथिल कर, अपने कुण्डल सदृश मण्डल से पश्चिम दिशा को अलंकृत करते हुए, वारुणी (पश्चिम दिशा और मदिरा) के सेवन के कारण

नेव माञ्जिष्ठ–मञ्जिम–रञ्जितः, अनवरत–भ्रमण–परिश्रम-श्रा इव सुषुप्सुः, म्लेच्छ–गण–दुराचार-दुःखाऽऽक्रान्त–वसुमती-वेद मिव समुद्रशायिनि निविवेदयिषुः, वैदिक-धर्म-ध्वंस-दर्शन-संजा निर्वेद इव गिरिगह्नेषु प्रविश्य तपश्चिकीर्षुः, घर्म–ताप–तप्त समुद्रजले सिस्नासुः, सायं समयमवगत्य सन्ध्योपासन

चासौ, आशा=काष्ठा, ताम्। "दिशस्तु ककुभः काष्ठा आशा हरितश्च ता" इत्यमरः, वरुणस्येयं वारुणी=पश्चिमा दिग् मद्यञ्च, " प्रत्यक् च वारुणी" इत्यमरः। मञ्जिष्ठायाः=मण्डूकपर्ण्याः, "मजीठ" इति हिन्दी, अयं माञ्जिष्ठः, स चासौ मञ्जिमा=रक्तिमा, तेन रञ्जितः= रक्तः। यथा जनो वारुणी-(सुरा) पानानन्तरं शोणवर्णो भवति त भास्करोऽपि वारुणी-(पश्चिमा) संसर्गोत्तरं शोणः संजात इत्युत्प्रेक्षा अनवरत-भ्रमण-परिश्रम-श्रान्तः=सततचलनखेदखिन्नः। सुषुप्सुः=स्वप्तुमिच्छुः। स्वाभाविकी चरमाचलप्राप्तिः खेदकारणकशयनेच्छावत्त्वेन उत्प्रेक्षिता। म्लेच्छगणस्य=यवनसमूहस्य, दुराचारैः=असदाचरणैः गोहननमन्दिरध्वंसनादिभिः, दुःखाक्रान्तायाः=कष्टपीडितायाः वसुमत्याः=पृथिव्याः, वेदनाम्=पीडाम्। समुद्रशायिनि=विष्णौ। निविवेदयिषुः=निवेदयितुमिच्छुः। स इवेत्युत्प्रेक्षा पत्नीक्लेशस्य पत्यावेव निवेदनीयत्वादिति भावः। वैदिकधर्मस्य= सनातनधर्मस्य, ध्वंसदर्शनेन=विनाशावलोकनेन, सञ्जातः= समुत्पन्नः, निर्वेदः=वैराग्यं यस्य स इव। गिरिगह्नेषु=पर्वतदुर्गमेषु चिकीर्षुः=कर्तुमिच्छुः। सिस्नासुः=स्नातुमिच्छुः। सर्वो हि ता

मजीठ की लालिमा से लाल, निरन्तर भ्रमण करने के परिश्रम से थके सोने के इच्छुक, म्लेच्छों के अनाचारों मे दुःखी पृथ्वी की वेदना को समुद्र में सो रहे भगवान से कहने के इच्छुक से, वैदिक धर्म के ह्रास को देखकर खिन्न से होकर दुर्गम पर्वतों में जाकर तप करने के इच्छुक, सायंकाल

विधित्सुः, "नास्ति कोऽपि मत्कुले; यः सकण्ठग्रहं धर्म-ध्वंसिनो यवनहतकान् यज्ञियादस्माद् भारत-गर्भान्निस्सारयेत्" इति चिन्ताऽऽक्रान्त इव कन्दरि-कन्दरेषु प्रविविक्षुर्भगवान् भास्वान्, क्रमशः क्रूर-करानपहाय, दृश्य-परिपूर्ण-मण्डलः संवृत्य, श्वेतीभूय, पीतीभूय, रक्तीभूय च गगन-धरातलाभ्यामुभयत आक्रम्यमाण इवाण्डाकृति-मङ्गीकृत्य, कलि-कौतुक-कवलीकृत-सदाचार-प्रचारस्य पातक-पुञ्ज-पिञ्जरित-धर्मस्य च यवन-गण-ग्रस्तस्य भारतवर्षस्य च स्मारयन्, अन्धतमसे च जगत् पातयन्, चक्षुषामगोचर एव संजातः।

स्नातुमिच्छति। अवगत्य=ज्ञात्वा। विधित्सुः=चिकीर्षुः। सकण्ठग्रहम्=कण्ठं गृहीत्वा। अर्धचन्द्रं दत्त्वेत्यर्थः। णमुलन्तम्। यज्ञियात्=यज्ञकरणयोग्यात्। "यज्ञर्त्विग्भ्यां घखञावि"ति घः। प्रविविक्षुः=प्रवेष्टु-मिच्छुः। क्रूरकरान्=तीव्रकिरणान्। दृश्यम्=अवलोकयितुमर्हम्, सम्पूर्णम्=समस्तम्, मण्डलम्=बिम्बं, यस्य सः। श्वेतीभूयेत्यादि स्वभावोक्तिः। अण्डाकृतिम्=सूर्योऽण्डाकृतिरेवोदेत्यस्तमेति चेति तत्काल-च्छटावलोकनेन प्रतीयते। अत्र सर्वत्रोत्प्रेक्षा। कलिकौतुकेन=कलियुग-कौतूहलेन, कवलीकृतस्य=विनष्टस्य। पातकपुञ्जेन=अघौघेन, पिञ्ज-रितस्य=पीतवर्णस्य। जर्जरीकृतस्येति भावः;। धर्मस्य=सनातन-धर्मस्य। भारतवर्षस्य च स्मारयन्नित्यत्र "अधीगर्थदयेशामि"ति कर्मणि

समय हुआ जान कर संन्ध्योपासन करने के इच्छुक से, 'मेरे कुल में ऐसा कोई भी व्यक्ति नहीं है जो धर्मध्वंसी यवनों को इस यज्ञ योग्य भूमि से गर्दनियाँ देकर निकाल बाहर करे' इस प्रकार चिन्तित से होकर पर्वत की गुफा में प्रवेश करने के इच्छुक से भगवान सूर्य, क्रमशः तीखी किरणों को छोड़ अपने सारे बिम्ब को दर्शन योग्य बना कर, पहले सफेद, फिर पीले और फिर लाल होकर आकाश और पृथ्वी दोनों ओर से दबाये जा रहे से अण्डाकार बन कर, कलियुग के प्रताप से विनष्ट सदाचार वाले, पापराशि से पीले पड़े धर्म वाले तथा यवनों से ग्रस्त भारतवर्ष का स्मरण कराते हुए

ततः संवृत्ते किञ्चिदन्धकारे धूप-धूमेनेव व्याप्तासु हरि
भुशुण्डीं स्कन्धे निधाय निपुणं निरीक्षमाणः, आगत-प्रत्याग
विदधानः, प्रताप-दुर्ग-दौवारिकः, कस्यापि पादक्षेप-ध्वनिमि
श्रौषीत्। ततः स्थिरीभूय पुरतः पश्यन् सत्यपि दीप-प्रकाशे
मसवशादागन्तारं कमप्यनवलोकयन्, गम्भीरस्वरेणैवमवादी
"कः कोऽत्र भोः ? कः कोऽत्र भोः ?" इति।

अथ क्षणानन्तरं पुनः स एव पादध्वनिरश्रावीति भूयः
क्षेपमवोचत्—"क एष मामनुत्तरयन् मुमूर्षुः समायाति बधिर

षष्ठी। अन्धतमसे=गाढध्वान्ते। 'ध्वान्ते गाढेऽन्धतमसमि' त्यम
चक्षुषामगोचरः=अदृश्यः। सूर्यास्तमनवेलाऽभूदित्यर्थः।

हरित्सु=दिक्षु। भुशुण्डीम्=आयुधविशेषम्। "बन्दूक" इति हि
आगतप्रत्यागतम्=यातायातम्। विदधानः=कुर्वाणः। प्रतापदुर्ग
तन्नाम्ना ख्यातदुर्गस्य, "किला" इति हिन्दी, दौवारिकः=द्वारपालः। प
क्षेप-ध्वनिम्=चरणचङ्क्रमणशब्दम्। अवतमसम्=क्षीणध्वान्तम् "
समन्धेभ्यस्तमस" इति सूत्रेण समासान्तोऽच्, तस्य, वशात् सामर्थ्या

संसार को घोर अन्धकार में ढकेलते हुए, आँखों से ओझल हो ग

उसके बाद, कुछ अंधेरा हो जाने पर और दिशाओं के मानों धू
उठने वाले धूम से व्याप्त हो जाने पर बन्दूक को कन्धे पर रख कर
से इधर-उधर देखते हुए और गश्त लगाते हुए प्रताप दुर्ग के द्वारपा
किसी के पैरों की आहट सी सुनी। तब खड़े होकर, सामने देखकर, दी
का प्रकाश होते हुए, भी धुँधलेपन के कारण आने वाले को न देख
उसने गम्भीर स्वर से कहा "अरे यहाँ यह कौन है ? यह कौन है

क्षण भर बाद फिर वही पैरों की आहट सुन पड़ी, इसलिये
बिगड़ कर बोला, 'अरे यह कौन बहरा बिना मुझे जवाब दिये ही मरने
लिये बढ़ता चला आ रहा है ?'

ततो "दौवारिक! शान्तो भव, किमिति व्यर्थं मुमूर्षुरिति बधिर इति च वदसि ?" इति वक्तारमपश्यतैवाऽऽकर्णि मन्द्रस्वरमेदुरा वाणी। अथ "तत्किं नाज्ञायि अद्यापि भवता प्रभुवर्य्याणामादेशो यद् दौवारिकेण प्रहरिणा वा त्रिः पृष्टोऽपि प्रत्युत्तरमददद् हन्तव्य इति" इत्येवं भाषमाणेन द्वाःस्थेन "क्षम्यतामेष आगच्छामि, आगत्य च निखिलं निवेदयामि", इति कथयन्, द्वादशवर्षेण केनापि भिक्षु-बटुनाऽनुगम्यमानः, कोऽपि काषायवासाः, धृत-तुम्बी-पात्रः, भस्म-च्छुरित-ललाटः, रुद्राक्ष-मालिका-सनाथित-कण्ठः, भव्यमूर्त्तिः संन्यासी दृष्टः। ततस्तयोरेवमभूदालापः।

मुमूर्षुः=मर्तुमिच्छुः। मन्द्रस्वरेण=गम्भीरनादेन, मेदुरा=सान्द्र-स्निग्धा। "सान्द्रस्निग्धस्तु मेदुर" इत्यमरः। अपश्यता=अनवलोकमानेन, दौवारिकेणेति शेषः। आकर्णि=श्रुतः। अज्ञायि=ज्ञातः। श्रुत इति यावत्। द्वारि तिष्ठतीति द्वाःस्थः=द्वारपालः, तेन। प्रहरिणा=यामिकेन। नगरादिषु सशब्दं जनताजागरकेण चोरनिवारयित्रेति यावत्। कषायेण रक्तं काषायाम्, वासो यस्य सः। त्रिः=वारत्रयम्। "द्विस्त्रिश्चतुरिति

तत्पश्चात् उस दौवारिक ने बोलने वाले को न देखते हुए 'द्वारपाल! शान्त रहो, क्यों बेकार मरणासन्न और बहरा कहते हो ?' यह गम्भीर स्वर से स्निग्ध वाणी सुनी। उसके बाद 'तो क्या आपको अभी तक महा-राज शिवा जी का यह आदेश नहीं मालूम है कि द्वारपाल या पहरेदार के तीन बार पूछने पर भी जो व्यक्ति उत्तर न दे उसे गोली मार दी जाय' यह कहते हुए द्वारपाल ने, 'क्षमा करो मैं आ रहा हूँ, आकर सारा हाल बताऊँगा' यह कहते हुए, बारह साल के किसी भिक्षु बालक के आगे आगे आते हुए किसी काषाय वस्त्रधारी, तुम्बी पात्र लिये हुए, मस्तक पर भस्म लगाये तथा गले में रुद्राक्ष की माला पहने किसी भव्यमूर्ति संन्यासी को देखा। फिर उन दोनों में आपस में इस प्रकार बातचीत हुई।

संन्यासी—कथमस्मान् संन्यासिनोऽपि कठोरभाषणैस्ति-
स्करोषि ?

दौवारिकः—भगवन्! भवान् संन्यासी तुरीयाश्रमसेवी
प्रणम्यते, परन्तु प्रभूणामाज्ञामुल्लङ्घ्य निजपरिचयमददद्देवाऽऽ-
तीत्याक्रुश्यते।

संन्यासी—सत्यं क्षान्तोऽयमपराधः, परमद्यावधि संन्यासि-
ब्रह्मचारिणः, पण्डिताः, स्त्रियः, बालाश्च न किमपि प्रष्टव्या
आत्मानमपरिचाययन्तोऽपि प्रवेष्टव्याः।

कृत्वोऽर्थे"। 'रुद्राक्षमालिकया, सनाथितः=भूषितः, कण्ठो यस्य स'।
आलापः=अन्योन्यसम्बोधनपूर्वकभाषणम्।

तुरीयाश्रमसेवी=चतुर्थाश्रमवासी। "स संन्यासी च योगी च
निरग्निर्न चाक्रियः" इति भगवद्वचनेन संन्यासिपदस्य न चतुर्थाश्रमि-गैरि-
धारिमात्ररूढतेति ध्वनयता पदद्वयं विशेष्यविशेषणभावेनोपात्तमिति विज्ञाः।
अददत्=अयच्छन्, "नाभ्यस्ताच्छतुः"ति नुम्निषेधः।

अपरिचाययन्तः=परिचयमददतः। अपरिचितानपि प्रवेशयेति भावः।

संन्यासी—तुम हम संन्यासियों को भी कठोर वचनों द्वारा अपमानित
क्यों करते हो?

दौवारिक—भगवन्! आप संन्यासी हैं, चतुर्थ आश्रम में हैं, अतः
मैं आप को प्रणाम करता हूँ, किन्तु आप महाराज की आज्ञा का उल्लंघन
कर अपना परिचय दिये बिना ही आ रहे हैं इसलिये हम आप पर
बिगड़ रहे हैं।

संन्यासी—सच है, अच्छा तुम्हारा यह अपराध मैंने क्षमा कर दिया,
लेकिन आज से संन्यासियों, ब्रह्मचारियों, पण्डितों, स्त्रियों, और बालकों से
कुछ भी मत पूछना, और यदि वे अपना परिचय न दें तो भी उन्हें
अन्दर आने की अनुमति दे देना।

दौवारिकः—संन्यासिन् ! संन्यासिन् ! बहूक्तम् , विरम, न वयं दौवारिका ब्रह्मणोऽप्याज्ञां प्रतीक्षामहे। किन्तु यो वैदिकधर्म-रक्षा-व्रती, यश्च संन्यासिनां ब्रह्मचारिणां तपस्विनाञ्च संन्यासस्य ब्रह्मचर्यस्य तपसश्चान्तरायाणां हन्ता, येन च वीरप्रसविनीयमुच्यते कोङ्कणदेश-भूमिः; तस्यैव महाराज-शिववीरस्याऽऽज्ञां वयं शिरसा वहामः।

संन्यासी—अथ किमप्यस्तु,पन्थानं निर्दिश, आवां शिववीर-निकटे जिगमिषावः।

दौवारिकः—अलमालप्यापि तत्,प्राह्णे महाराजस्य सन्ध्योपा-

संन्यासिनामित्यादित्रिकस्य संन्यासस्येत्यादित्रिकेण यथासङ्ख्य-मन्वयः। अत एव यथासङ्ख्यनामाऽलङ्कारः। शिरसा वहामः=सर्वथा पालयामः। अन्तरायाणाम्=विघ्नानाम्। "विघ्नोऽन्तरायः प्रत्यूह" इत्यमरः। हन्ता=निवारयिता।

अलमालप्यापि=इदमालपनीयमपि नास्तीत्यर्थः। "अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वे"ति क्त्वा प्रत्ययः। यथा शाकुन्तले "अलं रुदित्वा, ननु भवतीभ्यामेव स्थिरीकर्त्तव्या शकुन्तले"त्यत्र, शिशुपालवधे "आलप्याल-मिदं बभ्रोर्यत्स दारानपाहरदि" त्यत्र च प्रसिद्धोऽयम्। प्राह्णे=पूर्वाह्णे।

दौवारिक—संन्यासी ! संन्यासी ! बहुत कह चुके, अब बस करो, हम दौवारिक लोग ब्रह्मा की आज्ञा की भी परवाह नहीं करते, वरन् जिन्होंने वैदिक-धर्म की रक्षा का व्रत ले रखा है, जो सन्यासियों, ब्रह्मचारियों, तपस्वियों, तथा संन्यास,ब्रह्मचर्य और तप के विघ्नों के नाशक हैं, जिन के कारण ही कोङ्कण देश की भूमि वीरप्रसू (वीरों को जन्म देने वाली) कहलाती है, उन्हीं महाराज शिवा जी की आज्ञा को शिरोधार्य करते हैं।

संन्यासी—अच्छा जो कुछ भी हो, हमें रास्ता दिखाओ, हम वीर शिवा जी के पास जाना चाहते हैं।

दौवारिक—उसका नाम भी न लीजिये, आपके से लोगों के मिलने का

सनसमये भवादृशानां प्रवेश-समयो भवति; न तु रात्रौ।

संन्यासी—तत्कि कोऽपि न प्रविशति रात्रौ ?

दौवारिकः—(साक्षेपम्) कोऽपि कथं न प्रविशति ? परिचित वा प्राप्त-परिचयपत्रा वा आहूता वा प्रविशन्ति, न तु भवादृशाः; ये तुम्बीं गृहीत्वा द्वाराद् द्वारम्—इति कथयन्नेव तत्तेजसा धर्षितो मध्य एव विरराम।

संन्यासी—(स्वगतम्) राजनीति-निष्णातः शिववीरः। सर्वथा दौवारिकता-योग्य एवायं द्वारपालः स्थापितोऽस्ति। परीक्षितमप्येनमेकस्मिन् विषये पुनः परीक्षिष्ये तावत्। (प्रकटम्) दौवारिक इत आयाहि, किमपि कर्णे कथयिष्यामि।

दौवारिकः—(तथा कृत्वा) कथ्यताम्।

तुम्बी=अलाबूपात्रम्। भिक्षाभाजनमिति सव्यङ्ग्यम्। धर्षितः=भीषितः। राजनीतौ, निष्णातः=निपुणः। "प्रवीणे निपुणाभिज्ञविज्ञनिष्णातशिक्षिता"इत्यमरः। दौवारिकता=द्वारपालकर्म। परीक्षिष्ये=परीक्षां करिष्ये।

समय प्रातःकाल महाराज के सन्ध्योपासन के समय होता है, न कि रात में।

संन्यासी—तो क्या रात में कोई नहीं आता ?

दौवारिक—(बिगड़ता हुआ) 'कोई कैसे नहीं आता ? महाराज के परिचित लोग, परिचय-पत्र प्राप्त लोग या आमन्त्रित लोग, आते हैं, कि आप के से लोग जो तुम्बी लिये दरवाजे से दरवाजे'—यह कहते कहते मानों उसके तेज से घबराकर वह बीच में ही रुक गया।

संन्यासी—(अपने मन में) शिवाजी राजनीति में कुशल हैं। उन्होंने पहरेदारी के योग्य ही द्वारपाल नियुक्त किया है। यद्यपि मैं इसकी परीक्षा ले चुका हूँ, फिर भी मैं इसकी एक विषय पर पुनः परीक्षा लूँगा। (प्रकाश में) द्वारपाल ! इधर आओ, कुछ तुम्हारे कान में कहूँगा।

दौवारिक—(वैसा ही कर के) कहिये।

संन्यासी—निरीक्षस्व त्वमधुना दौवारिकोऽसि, प्राणानगणयन् जीविकां निर्वहसि, त्वं सहस्रं वाऽयुतं वा मुद्रा राशीकृताः कदापि प्राप्स्यसीति न कथमपि संभाव्यते।

दौवारिकः—आम्, अग्रे कथ्यताम्।

संन्यासी—वयञ्च संन्यासिनो वनेषु गिरिकन्दरेषु च विचरामः, सर्वं रसायन-तत्त्वं विद्मः।

दौवारिकः—स्यादेवम्, अग्रे अग्रे ?

संन्यासी—तद् यदि त्वं मां प्रविशन्तं न प्रतिरुन्धेः तदधुनैव परिष्कृतं पारद-भस्म तुभ्यं दद्याम्; यथा त्वं गुञ्जामात्रेणापि द्वापञ्चाशत्सङ्ख्याक-तुलापरिमितं ताम्रं जाम्बूनदं विधातुं शक्नुयाः।

निरीक्षस्व=अवलोकय। त्वम्=निस्स्वः साधारणदौवारिकः क्लेशेन जीविकां निर्वहन्निति ध्वनिः। अत एव तत्प्रयोगः, अन्यथा 'निरीक्षस्वे' त्येनेनैव गतार्थता स्यात्। रसायनानाम्=ताम्रादीनां सुवर्णादिनिर्माणशक्तिमतामोषधिविशेषाणाम्, तत्त्वम्=सामर्थ्यम्। प्रतिरुन्धेः=प्रतिवारयेः। 'रुधिर् आवरणे' इत्यस्य विधौ सिपि रूपम्। परिष्कृतम्=सुसाधितम्। तुला=पलानां शतम्। "तुला

संन्यासी—देखो इस समय तुम द्वारपाल हो, प्राणों की बाजी लगाकर जीवन निर्वाह करते हो, तुम कभी हजार दस हजार रुपये इकट्ठे पा जाओगे यह किसी भी तरह सम्भव नहीं है।

दौवारिक—हाँ, आगे कहिये।

संन्यासी—और हम संन्यासी लोग वनों और पर्वत-कन्दराओं में विचरते हैं, हमें सारा रसायन-रहस्य मालूम है।

दौवारिक—हो सकता है, आगे और आगे कहिये।

संन्यासी—तो यदि तुम मुझे अन्दर जाने से न रोको, तो मैं अभी तुम्हें शोधित पारे की भस्म दे दूँ, जिससे तुम रत्ती भर से भी लगभग ७५ सेर ताँबे को सोना बना सकोगे।

दौवारिकः—हंहो ! कपटसंन्यासिन् !! कथं विश्वासघा स्वामिवञ्चनञ्च शिक्षयसि ? ते केचनान्ये भवन्ति जार-जाता ये उत्कोच-लोभेन स्वामिनं वञ्चयित्वा आत्मानमन्धतमसे पा यन्ति, न वयं शिवगणास्तादृशाः। (संन्यासिनो हस्तं धृत्वा) इत सत्यं कथय कस्त्वम् ? कुत आयातः ? केन वा प्रेषितः ?

संन्यासी—(स्मित्वेव) अथ त्वं मां कं मन्यसे ?

दौवारिकः—अहं तु त्वामस्यैव ससेनस्याऽऽयातस्य अपज खानस्य—

संन्यासी—(विनिवार्य मध्य एव) धिग् धिग् !

दौवारिकः—कस्याप्यन्यस्य वा गूढचरं मन्ये। तदादेशं पा यिष्यामि प्रभुवर्यस्य। (हस्तमाकृष्य) आगच्छ दुर्गाध्यक्ष-समीं

स्त्रियां पलशतमि" त्यमरः। ताम्रम्, धातुनाम। जाम्बूनदम् = सुवर्णम्

जारजाताः, "अमृते जारजः कुण्डो मृते भर्तरि गोलक" इ कोशात् पत्यौ जीवति परपुरुषेण समुत्पादिता जारजाता इत्युच्यन्ते, अ

दौवारिक—अच्छा जी ? क्यों रे कपटी संन्यासी विश्वासघात औ स्वामी को छलने की शिक्षा देता है ? वे हरामजादे कोई दूसरे ही होते जो घूस के लालच से स्वामी को छल कर अपने को नरक में डालते हैं महाराज शिवाजी के सेवक हम लोग वैसे नहीं है। (संन्यासी का हा पकड़ कर) अच्छा, अब सच-सच कह तू कौन है, कहाँ से आया है, तुझे किसने भेजा है ?

संन्यासी—(मुस्कराता हुआ सा) अच्छा तुम मुझे कौन समझते हो!

दौवारिक—मैं तो तुझे इसी सेना सहित आये हुये अफ़जल खाँ का

संन्यासी—(बीच ही में रोककर) छिः छिः !!

दौवारिक—या किसी दूसरे का गुप्तचर समझता हूँ, अतः मैं महारा के आदेश का पालन करूँगा। (हाथ खींच कर) इधर आओ, दुर्गाध्य

स एवाभिज्ञाय त्वया यथोचितं व्यवहरिष्यति।

ततः संन्यासी तु—"त्यज, नाहं पुनरायास्यामि, नाहं पुनरेवं कथयिष्यामि, महाशयोऽसि, दयस्व दयस्व"—इति सहस्रधा समचकथत्, तथापि दौवारिकस्तु तमाकृष्य नयन्नेव प्रचलितः।

अथ यावद् द्वारस्थ-स्तम्भोपरि संस्थापितायां काच-मञ्जूषायां जाज्वल्यमानस्य प्रबल-प्रकाशस्य दीपस्य समीपे समायातः, तावत्संन्यासिनोक्तम्—"दौवारिक! अपि मां पूर्वमपि कदाऽप्यद्राक्षीः?" ततो दौवारिकः पुनस्तं निपुणं निरीक्षमाणो मन्द्रेण स्वरेण, अरुणापाङ्गाभ्यां लोचनाभ्याम्, गौरतरेण वर्णेन चुम्बितयौवनेन वयसा, निर्भीकेण हारिणा च मुख-मण्डलेन पर्यचिनोत्। भुशुण्डी-समु-

---

निन्दार्थकम्। उत्कोचो हिन्द्यां "घूस" इति, "रिशवत" इति चोच्यते।

काचघटिता मञ्जूषा काचमञ्जूषा=रक्तवर्तिका। "लालटेन" इति हिन्दी। अपाङ्गः=नेत्रप्रान्तभागः। "अपाङ्गौ नेत्रयोरन्तावि"त्यमरः। चुम्बितम्=स्पृष्टम्, यौवनम्=नवं वयो येन तेन। निर्भीकेण=भयशून्येन। हारिणा=मनोहरेण। पर्यचिनोत्=परिचितवान्।

के समीप चलो, वह सोच समझकर और तुम्हें पहचान कर तुम्हारे साथ जैसा उचित समझेंगे वैसा व्यवहार करेंगे।

उसके बाद संन्यासी ने "छोड़ दीजिये, मैं फिर नहीं आऊँगा, ऐसी बात नहीं कहूँगा, आप बड़े उदार हैं, दया कीजिये, दया कीजिये" ऐसा हजारों बार कहा, पर दौवारिक फिर भी उसे खींच ही ले चला।

तदनन्तर द्वारपाल के फाटक पर रखी लालटेन में जल रहे प्रखर प्रकाश वाले दीपक के समीप पहुँचने पर संन्यासी ने कहा, 'द्वारपाल! क्या मुझे तुमने कभी पहले भी देखा है?' तब द्वारपाल ने पुनः उसे गौर से देख कर, उसके गम्भीर स्वर, आरक्त नेत्र प्रान्त वाली आँखों, गोरे रंग, उमड़ रही नई जवानी और निर्भीक तथा मनोहर मुखमण्डल से

त्तोलन-किण-कर्कश-करग्रहमपहाय, सलज्ज इव च नम्रीभूय, प्र
मन्नुवाच-"आः! कथं श्रीमान् गौरसिंह आर्यः? क्षम्यतामनुचि
व्यवहार एतस्य ग्राम्य-वराकस्य"। तदवधार्य तस्य पृष्ठे
विन्यस्यन् संन्यासिरूपो गौरसिंहः समवोचत्—दौवारिक!
बहुशः परीक्षितोऽसि, ज्ञातोऽसि यथायोग्य एव पदे नियुक्तोऽ
चेति। त्वादृशा एव प्रभूणां पुरस्कारभाजनानि भवन्ति, लोकद्व
विजयन्ते। तव प्रामाणिकतां जानीत एवात्रभवान् प्रभुव
परमहमपि विशिष्य कीर्तयिष्यामि। निर्दिश तावत् कुत्र श्रीमा
किञ्चानुतिष्ठति ?

ततः पुनर्बद्धाञ्जलेर्दौवारिकस्य किमपि कर्णे कथितमाक

भुशुण्ड्याः=आयुधविशेषस्य, समुत्तोलनेन=उत्थापनेन, यः कि
चिह्नविशेषः तेन कर्कशस्य=कठोरस्य, करस्य, ग्रहः=ग्रहणम्। गौर
कथाभागे पूर्वं गौरबटुनाम्ना समायातोऽयमेवेति न विस्मर्तव्यम्।

उसे पहचान लिया। पहचानते ही, बन्दूक उठाने से जिसमें घट्टे पड़
थे ऐसे कठोर हाथ को संन्यासी से हटाकर अर्थात् संन्यासी का
छोड़कर, सहमा सा, सिर झुकाकर प्रणाम करता हुआ बोला—"अ
श्रीमान् गौरसिंह जी, आप ? इस बेचारे गँवार के अनुचित व्यवहार
क्षमा कीजियेगा।" यह सुनकर उसकी पीठ ठोंकते हुए संन्यासी
धारी गौरसिंह बोले—

दौवारिक! मैंने तुम्हारी कई बार परीक्षा ली है, मैं तुम्हें समझ
तुम यथायोग्य पद पर ही नियुक्त किये गये हो। तुम्हारे जैसे लोग ही
मियों के पुरस्कार के पात्र होते हैं तथा इहलोक और परलोक दो
सम्मान पाते हैं। तुम्हारी प्रामाणिकता को तो पूज्य शिवाजी जानते
हैं, फिर भी मैं उनसे विशेष रूप से कहूँगा। बताओ महाराज क
और क्या कर रहे हैं ?

तदनन्तर द्वारपाल ने हाथ जोड़कर गौरसिंह के कान में कुछ कहा,

प्रधानद्वारमुल्लङ्घ्य, नेदीयस्यामेकस्यां निम्वतरु-तल-वेदिकायां सह-चरं समुपवेश्य, तुम्बीमेकतः संस्थाप्य, स्वाङ्गरक्षिकावरण-काषाय-वसनं चैकतो निम्बशाखायामवलम्बय्य, पट-खण्डेन पद्मणोः कपोलयोः कर्णयोर्भ्रुवोश्चिबुके नासायां केशप्रान्तेषु च छुरितामिव विभूतिं प्रोञ्छ्य, स्कन्धयोः पृष्ठे च लम्बमानान् मेचकान् कुञ्चितान् कचानाबध्य, सहचर-पोटलिकात उष्णीषमादाय, शिरसि चाऽऽ-धाय, सुन्दरमुत्तरीयं चैकं स्कन्धयोर्निक्षिप्य, दौवारिक-निर्देशानु-सारं श्रीशिववीरालंकृतामट्टालिकां प्रति प्रातिष्ठत ।

शिववीरस्तु कस्याञ्चिच्चन्द्रचुम्बिन्यां सान्द्र-सुधासार-संलिप्त-

नेदीयस्याम् = समीपवर्तिन्याम् । अङ्गरक्षिका = कञ्चुकस्यैव संक्षेपः । "अंगरखी" इति हिन्दी । पद्मणोः = अक्षिलोम्नोः "पद्माक्षिलोम्नी" त्यमरः । "पलक" इति हिन्दी । चिबुकं "ठोड़ी" इति हिन्दीप्रसिद्धम् । छुरिताम् = व्याप्ताम्, संलग्नामित्यर्थः । प्रोञ्छ्य = दूरीकृत्य । "पोंछकर" इति हिन्दी । मेचकान् = कृष्णवर्णान्, "कृष्णे नीलसितश्यामकालश्यामल-मेचकाः" इत्यमरः । पोटलिकातः = "गठरीसे" इति भाषायाम् ।

शिववीरोऽट्टालिकायामुपविष्ट आसीदिति सम्बन्धः । अट्टालिकां विशि-नष्टि—चन्द्रचुम्बिन्याम् = अत्युच्छ्रायायाम् । असम्बन्धे सम्बन्धवर्णनादति-

सुनकर, प्रधान द्वार पार कर, पास में ही स्थित नीम के पेड़ के नीचे के एक चबूतरे पर साथ के बालक को बिठा कर, तुम्बी को एक ओर रखकर, अपने अंगरखे को ढकने के लिये पहने गए गेरुए वस्त्र को नीम की शाखा में एक ओर लटका कर, रुमाल से आँखों, गालों, कानों, भौंहों, ठोढ़ी, नाक तथा बालों में लगी भस्म को पोंछ कर, कन्धों और पीठ पर लटक रहे काले घुंघराले बालों को संभाल—संवार कर, साथ के बच्चे के हाथ की पोटली से एक पगड़ी निकाल कर, ऐसे सिर पर रख कर, और एक सुन्दर उत्तरीय को कन्धों पर डाल कर गौरसिंह द्वारपाल के द्वारा बताये गये रास्ते से, श्री शिवाजी द्वारा अलंकृत अट्टालिका की ओर चल दिये ।

शिवाजी एक गगनचुम्बी, गाढ़े चूने से पुती दीवारों वाले, धूप से

भित्तिकायां धूपधूपितायां गजदन्तिकावलम्बित-विविध-च्छुरिकाखड्ग-रिष्टिकायां सुवर्ण-पिञ्जर-परिलम्बमान-शुक-पिक-चकोर-सारिका-कल-कूजित-पूजितायामट्टालिकायां सन्ध्यामुपास्य पविष्ट आसीत्। परितश्च तस्यैव खर्वामप्यखर्व-पराक्रमां श्यामामपि यशःसमूह-श्वेतीकृत-त्रिभुवनां कुशासनाश्रयां

शयोक्तिः। सान्द्रेण=घनेन, सुधासारेण=चूर्णद्रव्येण, संलिप्ताः=रूषित-भित्तिकाः=कुड्यानि यस्यां तस्याम्। स्वल्पो गजदन्तो गजदन्तिका=भित्तिशङ्कुः, "खूटी" इति हिन्दी, तस्यामवलम्बिताः, विविधाः=अनेकप्रकाराः, छुरिकाखड्गरिष्टिका यस्यां तस्याम्। छुरिकाऽसिधेनुका, खड्गोऽसिः, रिष्टिका तद्विशेषः। सुवर्णपिञ्जरेषु, परिलम्बमानानां=निवसताम्, शुक-पिकचकोरसारिकाणां, कलकूजितैः=मधुरभाषणैः, पूजितायाम्=भूषितायाम्। शुकाः=कीराः, पिकाः=कोकिलाः, चकोराः=जीवञ्जीवाः, सारिकाः=शारिकाः, "मैना" इति हिन्दी। परितश्च तस्यैव मूर्तिं दर्शं दर्शं वयस्याः कटानध्यवस्यन्निति सम्बन्धः। मूर्तिं विशिनष्टि—खर्वाम्=ह्रस्वाम्, शिववीरः खर्वः स्थूलोऽपठितश्चाऽऽसीदति वृत्तवेदिनो वदन्ति। अखर्वः=अनल्पः पराक्रमो यस्यान्ताम्। अखर्वस्य पराक्रमो यस्यामिति विग्रहे यः खर्वस्तस्मिन्नखर्वस्य पराक्रमः कुत आयात इति विरोध इवाऽऽभासते परिहारोपायश्च वास्तविकविग्रहाश्रयणेन। तथा च विरोधो न वास्तव इति विरोधाभासोऽत्रालङ्कारः। कलितगौरवामपि कलितलाघवामित्यन्तं सर्वत्रैवमेव। सोऽपि च स्वभावोक्त्योत्प्रेक्षया चानुप्राणित इति विपुलां शोभामाश्रयति। श्यामाम्=कृष्णाम्। यशःसमूहेन=कीर्त्तिकूटेन, श्वेतीकृतम्

सुगन्धित, प्रासाद में—जिसमें खूँटियों पर नाना प्रकार के छुरे, कृपाण, तलवार आदि लटक रही थीं और जो सोने के पिंजड़ों में लटक रहे तोतों, कोयलों, चकोरों और सारिकाओं के कलरव से सुशोभित था, सन्ध्यावन्दन से निवृत्त होकर बैठे हुए थे। उनके चारों ओर, उन्हीं की, देखने में ठिंगनी होने पर भी महापराक्रमशालिनी, साँवली होते हुए भी तीनों लोकों को अपनी कीर्ति से धवलित करने वाली, कुश के आसन पर आसीन

रिक्शासनाश्रयां पठन-पाठनादि-परिश्रमानभिज्ञामपि नीति-
कोष्णातां स्थूलदर्शनामपि सूक्ष्म-दर्शनां ध्वंसकाण्ड-व्यस-
नीमपि धर्म-धौरेयीं कठिनामपि कोमलाम् उग्रामपि शान्तां
शोभित-विग्रहामपि दृढ-सन्धि-बन्धां कलित-गौरवामपि कलित-

लितम्, त्रिभुवनं यया ताम्। श्यामया धवलीकरणं विरोधविषयः,
रिहारश्च कीर्तेः श्वैत्याभिधानद्वारेण। कुशानाम्, आसनम्=विष्टरः,
आश्रयः=अवस्थितिः, यस्यास्ताम्। सुशासनम्=शोभनराष्ट्रस्थितिः,
आश्रयो यस्यास्ताम्। कुत्सितं शासनं कुशासनमाश्रयो यस्या इति विग्रहे
कुशासनाश्रया सा कथं सुशासनाश्रयेति विरोधः। स्थूलं दर्शनम्=
यस्यास्ताम्। सूक्ष्मं दर्शनम्=कर्तव्याकर्तव्यविचारो यस्यास्ताम्।
स्थूलदर्शना सा कथं सूक्ष्मदर्शनेति विरोधः सामान्यतोऽर्थाश्रयणे।
सूक्ष्मबुद्धित्वरूपवास्तविकार्थे परिहारश्च। ध्वंसकाण्डस्य=विधर्मिहिं-
सनस्य, व्यसनमस्ति यस्यां तादृशोमपि धर्मधौरेयीम्=धर्मभारधारिणीम्।
ध्वंसव्यसनवती सा कथं धर्मं पालयेदिति विरोधः, विधर्मिवधेन सनातन-
धर्मपालिका चेति विरोधपरिहारः। उग्रशान्तयोर्विरोधः स्पष्ट एव, उग्रत्वं
धर्षत्वाच्छान्तत्वञ्च दयाविभूषितत्वादिति परिहारः। कठिनकोमलयोः
स्पर्शपरत्वे विरोधः। तयोः पुनः शरीर-हृदय-गतत्वे स्थलविशेषविषयत्वे
परिहारः। शोभितः=सुन्दरः, विग्रहः=संग्रामो यस्यास्ताम्। दृढः=
स्थिरः, सन्धिबन्धः=सन्धिप्रस्तावो यस्यास्तामिति विरोधः, परिहारस्तु
विग्रहशब्दस्य शरीररूपार्थाश्रयणेन, सन्धिबन्धशब्दोऽपि अवयवसन्धान-
रः। कलितगौरवलाघवयोर्विरोधः स्फुट एव, गौरवमित्यस्य गाम्भी-

आसीन होने पर भी सुन्दर शासन का आश्रय, पठन-पाठन के परिश्रम से
अपरिचित होती हुई भी राजनीति में निष्णात, देखने में स्थूल होने पर भी
सूक्ष्मदृष्टि (कर्तव्याकर्तव्यविचार) वाली, (विधर्मियों-म्लेच्छों की) हिंसा की
व्यसनिनी होनेपर भी धर्म का भार धारण करने वाली, कठिन होती हुई भी
कोमल, उग्र होती हुई भी शान्त, सुन्दर शरीर वाली होती हुई भी सुदृढ़

लाघवां विशाल-ललाटां प्रचण्ड-बाहुदण्डां शोणापाङ्गां कम्बु-
सुनद्धस्नायुं वर्तुल-श्याम-श्मश्रुं, धारिताकृतिमिव वीरतां विग्रहिणी-
मिव धीरतां समासादित-समर-स्फूर्त्तिं मूर्तिं दर्शं दर्शं परं
मासादयन्तस्तस्य वयस्याः कटानध्यवसन्। तेपु च अपजल-
दमन-विषयक-वार्तामारिप्सुष्वेव कश्चिद् वेत्रहस्तः प्रतीहारः प्र-
वेत्रं कक्षे संस्थाप्य, शिरो नमयित्वा, अञ्जलिं बद्ध्वा न्यवी-
"प्रभो ! श्रीमान् गौरसिंहो दिदृक्षतेऽत्र भवन्तम्"—तदाक-
"आम् ! प्रवेशय प्रवेशय" इति सानन्दं सोत्साहं च कथि-

र्यमित्यर्थाश्रयणे लाघवशब्दस्य चातुर्यार्थकत्वे च परिहारः। शोणापाङ्गा-
रक्तकटाक्षाम्। सुनद्धाः=शोभनतया श्लिष्टाः, स्नायवो यस्यास्ताम्।
श्यामं च श्मश्रु यस्यास्ताम्। उत्प्रेक्षते—धारिता=गृहीता, आकृ-
ताम्। विग्रहिणीमिव=शरीरवतीमिव। समासादिता=लब्धा,
स्फूर्तिर्यया ताम्। दर्शं दर्शम्=दृष्ट्वा दृष्ट्वा। कटान्=तृणनि-
पवेशनानि। "चटाई" इति हिन्दी। "उपान्वध्याङ् वस" इत्या-
कर्मत्वम्। आरिप्सुषु=प्रारम्भं चिकीर्षुषु। न्यवीविदत्=निवेदित-
दिदृक्षते=द्रष्टुमिच्छति, "ज्ञाश्रुस्मृदृशां सन" इत्यात्मनेपदम्।

आखण्डलशब्द इन्द्रवाच्यपि प्रकृते श्रेष्ठपरः। प्रावीविश-

सन्धिबन्धोंवाली, गौरवशालिनी होते हुए भी चातुर्यसम्पन्न, विशाल ल-
और प्रबल भुजदण्डों वाली, आरक्त नेत्रों वाली, शंख सदृश कंठ वाली,
गठित नसोंवाली, गोल और काली दाढ़ी मूँछ वाली, मूर्तिमती वीरता सी, श-
धारिणी धीरता सी, और युद्ध भूमि में असाधारण फुर्ती दिखाने वाली
(देह) को देख-देख कर, परम प्रसन्न होते हुए, शिवाजी के साथी, चटा-
पर बैठे थे। वे अफजल खाँ दमन से सम्बन्धित बातचीत शुरू ही करने
रहे थे, कि बेंत हाथ में लिये प्रतीहारी ने प्रवेश कर, बेंत को बगल में
कर, सिर झुका कर, हाथ जोड़ कर निवेदन किया, 'स्वामिन्! श्री-

महाराष्ट्रमण्डलाऽऽखण्डले, प्रतीहारो निवृत्य, सपद्येव तं प्रावीवेशत्।

तमवलोक्यैव "इत इतो गौरसिंह ! उपविश, उपविश, चिराय दृष्टोऽसि, अपि कुशलं कलयसि ? अपि कुशलिनस्तव सहवासिनः ? अप्यङ्गीकृत-महाव्रतं निर्वहथ यूयम् ? अपि कश्चिन्नूतनो वृत्तान्तः ?" इति कुसुमानीव वर्षता पीयूष-प्रवाहेणेव सिञ्चता मृदुना वचनजातेन तत्रभवता शिववीरेणाऽऽद्रियमाणः, आपृच्छ्यमानश्च, त्रिः प्रणम्य, अन्तरङ्ग-मण्डली-जुष्ट-कटे समुपविश्य करौ सम्पुटीकृत्य "भगवन् ! अखिलं कुशलं प्रभूणामनुग्रहेणास्माकमखिलानाम् , अङ्गीकृत-महाव्रते च मा स्म पदं धात् कश्चनान्तराय इत्येव सदा प्रार्थ्यते भगवान् भूतनाथः। नूतनः प्रत्नश्च को नामाद्यतनसमये वक्तव्यः श्रोतव्यश्च

अन्तर्णीतवान्। जुष्टम् = सेवितम्। अध्युषितमिति यावत्। धात् , लुङो रूपं, माङो योगादडभावः। प्रत्नः = पुरातनः, "पुराणे प्रतनप्रत्नपुरातनचिरन्तना" इत्यमरः। अद्यतनसमये = सम्प्रति। "आजकल" इति

गौरसिंह आपका दर्शन करना चाहते हैं।' यह सुनकर, महाराष्ट्रमण्डल के इन्द्र-श्रेष्ठ शिवाजी के 'अच्छा, ले आओ, ले आओ' कहने पर, प्रतीहार लौट कर तुरन्त उन्हें ले आया।

उन्हें देखते ही, "इधर, इधर गौरसिंह ! बैठो बैठो, काफी समय बाद दीख पड़े, कुशल से तो हो ? तुम्हारे साथी कुशल से तो हैं ? तुम लोग स्वीकृत महाव्रत को निबाहते तो हो न ? क्या कोई नया समाचार है !" इस प्रकार पुष्पवर्षा सी करते हुए, अमृतप्रवाह से सींचते हुए से, मृदुवचनों से महाराज शिवाजी द्वारा आदर पाते हुए और पूछे जाते हुए गौरसिंह ने तीन बार प्रणाम कर, जिस पर अन्तरङ्ग मित्र बैठे थे उसी चटाई पर बैठ कर, हाथ जोड़ कर कहा, "भगवन् ! प्रभुचरणों के अनुग्रह से हम सब लोग पूर्णतया सकुशल हैं और भगवान विश्वनाथ से सदा यही प्रार्थना किया करते हैं कि स्वीकृत महाव्रत में कोई विघ्न न उपस्थित

वृत्तान्तः—ऋते दुराचारात् स्वच्छन्दानामुच्छृङ्खलानामु[illegible]
सच्छीलानां म्लेच्छ-हतकानाम्" इति कथयामास। ततश्[illegible]
मेवमभूदालापः।

शिववीरः—अथ कथ्यतां को वृत्तान्तः? का च [illegible]
अस्मन्महाव्रताश्रम-परम्परायाः?

गौरसिंहः—भगवन् सर्वं सुसिद्धम्, प्रतिगव्यूत्यन्तराल[illegible]
कृत-सनातनधर्म-रक्षा-महाव्रतानां धारित-मुनि-वेषाणां वीरवा[illegible]
माश्रमाः सन्ति। प्रत्याश्रमञ्च वलीकेषु गोपयित्वा स्था[illegible]
परश्शताः खड्गाः, पटलेषु तिरोभाविताः शक्तयः, कुशपुञ्ज[illegible]
स्थापिता भुशुण्ड्यश्च समुल्लसन्ति। उञ्छस्य, शिलस्य, स[illegible]

हिन्दी। अद्यतनशब्दो वैयाकरणैः परिभाषितो यस्मिन्नर्थे अतीत[illegible]
धारब्धागामिराज्यर्धचरमावयवरूपे—न तदभिप्रायेण प्रयोग [illegible]
वेदितव्यम्। स्वच्छन्दानामित्यारभ्य म्लेच्छान्तेऽनुप्रासः। महाव्रत[illegible]
महान् नियमः। उञ्छः=पतितकणानामेकैकशो ग्रहणम्। शिल[illegible]
क्षेत्रादौ स्वामित्यक्तानां कणिशानां ग्रहणम्। "उञ्छः कणश आदानं[illegible]

हो, नया कहने लायक और सुनने लायक समाचार आजकल नि[illegible]
उद्दण्ड, शील और सदाचारविहीन दुष्ट म्लेच्छों के दुराचार के सिवा
क्या है?" तदनन्तर उनकी बातचीत इस प्रकार हुई।

शिवाजी—अच्छा बताइये हमारे महाव्रताश्रमों का क्या हाल
है? उनकी व्यवस्था कैसी चल रही है?

गौरसिंह—भगवन्! सब ठीक हो गया है। प्रत्येक दो कोस के
में सनातन धर्म की रक्षा का महाव्रत स्वीकार किये हुए मुनिवेषधारी
के आश्रम हैं और प्रत्येक आश्रम में छप्परों की ओरियों में सैकड़ों
वारें, छप्परों में शक्तियाँ (शस्त्रविशेष) और कुशों के ढेर में
छिपा कर रखी हुई हैं। खेतों में गिरे अनाज के दानों और बालि[illegible]

रणस्य, इङ्गुदी-पर्य्यन्वेषणस्य, भूर्जपत्र-परिमार्गणस्य, कुसुमावचयनस्य, तीर्थाटनस्य, सत्सङ्गस्य च व्याजेन, केचन जटिलाः, परे मुण्डिनः, इतरे काषायिणः, अन्ये मौनिनः, अपरे ब्रह्मचारिणश्च बहवः पटवो वटवश्चराः सञ्चरन्ति। विजयपुरादुड्डीयात्राऽऽगच्छन्त्या मक्षिकाया अप्यन्तः स्थितं वयं विद्मः, किं नाम एषां यवनहतकानाम् ?

शिववीरः—साधु साधु, कथं न स्यादेवम् ? भारतवर्षीया यूयम्, तत्रापि महोच्चकुलजाताः, अस्ति चेदं भारतं वर्षम्, भवति च स्वाभाविक एवानुरागः सर्वस्यापि स्वदेशे, पवित्रतमश्च यौष्माकीणः सनातनो धर्मः, तमेते जाल्माः समूलमुच्छिन्दन्ति, अस्ति च "प्राणा यान्तु, न च धर्म" इत्यार्याणां दृढः सिद्धान्तः। महान्तो

शाद्यर्जनं शिलर्भि"त्यमरः। इङ्गुद्याः=पिण्याकस्य, पर्यन्वेषणम्=सर्वतो मार्गणम्, तस्य। जटिलाः=जटायुताः। "लोमादि-पामादि-पिच्छादिभ्यः शनेलचः"। काषायिणः=गैरिकवसनाः। मक्षिकाया अपि, किमुत मनुष्याणाम्, कैमुत्ययुता लोकोक्तिः। अन्तः स्थितम्=मानसे विद्यमानम्। जाल्माः=अविवेकिनः। "जाल्मोऽसमीक्ष्यकारी स्यादि"त्यमरः।

बीनने, समिधा लाने, इंगुद (हिंगोट या मालकाँगनी के बीज) खोजने, भूर्जपत्र खोजने, फूल चुनने, तीर्थाटन करने तथा सत्संग करने के बहाने, कोई जटा धारण किये, दूसरे सिर मुड़ाए, कुछ गेरुआ वस्त्र पहने, कुछ मौनी बने, और अन्य ब्रह्मचारी वेष धारण किये, अनेक चतुर गुप्तचर बालक घूम रहे हैं। हम बीजापुर से उड़कर यहाँ आने वाली मक्खी तक की आन्तरिक बातों को जानते हैं, इन दुष्ट यवनों की तो बात ही क्या है ?

शिवाजी—शाबाश, शाबाश, ऐसा कैसे न हो ? तुम लोग भारतीय हो, उसमें भी उच्च कुल में उत्पन्न हुए हो, यह भारतवर्ष है, अपने देश पर सभी का स्वाभाविक प्रेम होता है, आपका सनातन धर्म पवित्रतम धर्म है, उसे ये जालिम जड़ से उखाड़ रहे हैं, और आर्यों का, 'प्राण भले ही चले जायँ, पर धर्म न जाय' यह दृढ़ सिद्धान्त है। महापुरुष

हि धर्मस्य कृते लुण्ठ्यन्ते, पात्यन्ते, हन्यन्ते, न च धर्मं त्यज… किन्तु धर्मस्य रक्षायै सर्वसुखान्यपि त्यक्त्वा, निशीथेष्वपि, … स्वपि, ग्रीष्म-घर्मेष्वपि, महारण्येष्वपि, कन्दरिकन्दरेष्वपि, … वृन्देष्वपि, सिंह-सङ्घेष्वपि, वारण-वारेष्वपि, चन्द्रहास-चम… रेष्वपि च निर्भया विचरन्ति। तद् धन्याः स्थ यूयं वस्तुत… वंशीयाः वस्तुतश्च भारतवर्षीयाः।

अथ कथ्यतां कोऽपि विशेषोऽवगतो वा अपजलखा… विषये?

गौरसिंहः—"अवगतः, तत्पत्रमेव दर्शयामि"—इति व्या… उष्णीष-सन्धौ स्थापितं कन्यापहारक-यवन-युवक-मृत-श… वस्त्रान्तः प्राप्तं पत्रं बहिश्चकार।

"जालिम" इति हिन्दी। लुण्ठ्यन्ते=चोर्यन्ते। निशीथेषु=अर्धरा… वारणवारेषु=हस्तिसमूहेषु। "समूहे निवहव्यूहसंदोहविसर… स्तोमौघ-निकर-व्रात-वार-संघात-सञ्चया" इत्यमरः। कन्यापहारक… बालिकाचोरस्य, नवयुवकस्य, मृतस्य=गतासोः, मारितस्येति य… शरीरस्य, वस्त्रान्तः=वसनान्तराले, प्राप्तम्=लब्धम्।

धर्म के लिए लुट जाते हैं, गिराये जाते हैं, मारे जाते हैं, पर धर्म को… छोड़ते, वरन् धर्म की रक्षा के लिए सारे सुखों को भी छोड़कर, अर्द्धरा… में भी, वर्षा में भी, गर्मी की धूप में भी, घने जंगलों में भी, पर्वतों… गुफाओं में भी, सर्पों के समूह के बीच में भी, सिंहों के झुण्डों में… हाथियों के यूथों में भी और चमकती तलवारों में भी निर्भय विचरते… तुम लोग धन्य हो और वस्तुतः आर्यवंशी और भारतवर्षीय हो।

अच्छा बताइये क्या अफ़जल खाँ के विषय में कोई नई बात मा… हुई?

गौरसिंह ने 'हाँ मालूम हुई, उसका पत्र ही दिखाऊँगा।' यह… कर पगड़ी के अन्दर रखे हुए कन्याहरण करने वाले यवन युवक… मृत शरीर के वस्त्रों के अन्दर से प्राप्त पत्र को बाहर निकाला।

सर्वे च विजयपुराधीशमुद्रामवलोक्य, "किमेतत् ? कुत एतत् ? कथमेतत् ? कस्मादेतत् ?" इति जिज्ञासमानाः सोत्कण्ठा वितस्थिरे। गौरसिंहस्तु शिववीरस्यापि तत्प्राप्ति-चरित-शुश्रूषामवगत्य संक्षिप्य सर्वं वृत्तान्तमवोचत्। ततस्तु "दर्श्यताम्, प्रसार्यताम्; पठ्यताम्, कथ्यताम्, किमिदमि"ति पृच्छति शिववीरे गौरसिंहो व्याजहार–

भगवन्! सर्पाकारैरक्षरैः पारस्य-भाषायां लिखितं पत्रमेतदस्ति। एतस्य सारांशोऽयमस्ति—विजयपुराधीशः स्वप्रेषितमपजलखानं सेनापतिं सम्बोध्य लिखति यत्-"वीरवर! महाराष्ट्र-राजेन सह योद्धुं प्रस्थितोऽसीति मा स्म भूत्कश्चनान्तरायस्तव विजये। शिवं युद्धे जेष्यसि चेत्, पद्भ्यां सिंहं जितवानसीति मंस्ये, किन्तु

विजयपुरम्='बीजापुर' इति भाषायां प्रसिद्धं नगरम्। वितस्थिरे=स्थिताः। "समवप्रविभ्यः स्थ" इत्यात्मनेपदम्। शश्रूषाम्=श्रोतुमिच्छाम्। सर्पाकारैः=वक्रैः। सोपहासम्। पारस्यानाम्=पारसीकानाम्, भाषायाम्=वाचि। "फारसी भाषा में" इति हिन्दी।

सभी लोग, बीजापुर के सुल्तान की मुहर देखकर 'यह क्या है ? कहाँ मिला ? कैसे मिला ? किससे मिला ?' यह जानने को अत्यधिक उत्सुक हो उठे। गौरसिंह ने, शिवाजी को भी उसकी प्राप्ति का वृत्तान्त जानने को उत्सुक जानकर संक्षेप में सारा वृत्तान्त कह सुनाया। तदनन्तर, वीर शिवाजी के 'दिखाइये, खोलिये, पढ़िये, कहिये यह क्या है ?' इस प्रकार पूछने पर गौरसिंह बोला—

भगवन्! यह सर्पाकार अक्षरों (अरबी लिपि) से फारसी भाषा में लिखा गया पत्र है। इसका सारांश यह है, बीजापुर का सुल्तान, अपने द्वारा भेजे गये सेनापति अफजल खाँ को सम्बोधित करके लिखता है कि वीरवर ! तुमने महाराष्ट्र के अधिपति शिवाजी के साथ युद्ध करने के लिए प्रस्थान किया है, अतः तुम्हारी विजय में किसी प्रकार का विघ्न न उपस्थित हो, यदि युद्ध में तुमने शिवाजी को जीत लिया, तो मैं

सिंहहननापेक्षया जीवतः सिंहस्य वशीकार एवाधिकं प्रशस्यः। यदि छलेन जीवन्तं शिवमानयेस्तद् वीरपुङ्गवोपाधि-दान-कारेण तव महतीं पदवृद्धिं कुर्य्याम्। गोपीनाथपण्डितोऽपि तव निकटे प्रस्थापितोऽस्ति, स मम तात्पर्यं विशदीकृत्य तव कथयिष्यति। प्रयोजनवशेन शिवमपि साक्षात्करिष्यति";

इत्याकर्णयत एव शिववीरस्य अरुणकौशेय-जाल-नि मीनाविव नयने संजाते, मुखञ्च बाल-भास्कर-बिम्ब-विड मालम्बे, अधरश्च धीरताधुरामधरीकृतवान्।

'शिवं युद्धे जेष्यसि चेत् पद्भ्यां सिंहं जितवानसी' ति निदर्शनाल मंस्ये=ज्ञास्ये। प्रशस्यः=श्लाघ्यः। प्रस्थापितः=प्रेषितः। वि कृत्य=स्पष्टीकृत्य।

अरुणम्=लोहितम्, यत् कौशेयस्य पट्टवस्त्रस्य, जालम्=आ तेन निबद्धौ=गृहीतौ। मीनाविवेत्युपमा। क्रोधान्नयने लोहिते अभू वाच्योऽर्थः। बालभास्करस्य=नवोदितसूर्यस्य, यद्, बिम्बम्=नि लोहितं मण्डलम्, तद्विडम्बनाम्=तदनुकृतिम्। आललम्बे=धृ धीरताधुराम्=धैर्यभारम्। "ऋक् पूरब्धू" रित्यादिना समा ऽप्रत्ययः। अधरीकृतवान्=त्यक्तवान्। अनुप्रासः। चूर्णकं ग

समझूँगा कि पैदल ही शेर जीत लिया; लेकिन शेर मारने की जीवित शेर को वश में करना ही अधिक प्रशंसनीय होता है, अ तुम छल से शिवाजी को जीवित ही पकड़ लाओ तो तुम्हें वीरपुं उपाधि देने के साथ ही तुम्हारी पदवृद्धि भी कर दूँगा। मैंने गो पण्डित को भी तुम्हारे पास भेज दिया है, वे मेरे अभिप्राय को विस्तार से समझायेंगे और प्रयोजनवश शिवाजी से भी मिलेंगे।"

यह सुनते ही शिवाजी की आँखें लाल रेशमी जाल में फँसी की तरह हो गईं (आँखों में लाल डोरे पड़ गए), मुखमण्डल न सूर्यबिम्ब के समान लाल हो गया और अधर धैर्य छोड़कर फड़कने

अथ स दक्षिण-कर-पल्लवेन श्मश्रु परामृशन्नाकाशे दृष्टिं बद्ध्वा "अरे रे विजयपुर-कलङ्क ! स्वयमेव जीवन् शिवः तव राजधानीमाक्रम्य, वीरपुङ्गवोपाधिसहकारेण तव महतीं पदवृद्धिमङ्गीकरिष्यति, तत्किं प्रेषयसि मृत्योः क्रीडनकानेतान् कदर्य्य-हतकान् ?"—इति साम्रेडमवोचत्। अपृच्छच्च "ज्ञायते वा कश्चिद् वृत्तान्तो गोपीनाथपण्डितस्य ?"

यावद् गौरसिंहः किमपि विवक्षति तावत्प्रतीहारः प्रविश्य 'विजयतां महाराजः' इति त्रिर्व्याहृत्य, करौ संपुटीकृत्य, शिरो नमयित्वा कथितवान् "भगवन् ! दुर्गद्वारि कश्चन गोपीनाथनामा पण्डितः श्रीमन्तं दिदृक्षुरुपतिष्ठते। नायं समयः प्रभूणां दर्शनस्य, पुनरागम्यताम्" इति बहुशः कथ्यमानोऽपि "किञ्चनात्यावश्यक-

---

वैदर्भी रीतिः, प्रसादश्च गुण इति तत्र तत्र न विस्मरणीयम्। शिवः= शिवाजीत्यर्थः । पदवृद्धिं=स्थानोन्नतिम्, 'तरक्की' इति भाषायाम्। मृत्योः=यमस्य। क्रीडनकान्=खेलासाधनानि। सन्निहितमरणानिति

उसके बाद शिवाजी ने, दाहिने हाथ से मूँछों पर ताव देते हुए, आकाश की ओर दृष्टि कर, "अरे बीजापुर के कलङ्क ! स्वयं शिवाजी ही जीवित रहकर, तुम्हारी राजधानी पर आक्रमण करके, वीरपुङ्गव उपाधि के साथ तुम्हारी दी हुई पदवृद्धि (तरक्की) स्वीकार करेगा, मृत्यु के खिलौने इन दुष्ट कायरों को क्यों भेजते हो ?" यह वाक्य कई बार दुहराया और गौरसिंह से पूछा 'क्या गोपीनाथ पण्डित का कोई समाचार मिला ?'

गौरसिंह कुछ कहना ही चाहते थे कि इतने ही में द्वारपाल ने आकर, तीन बार 'महाराज की जय हो' कह कर, हाथ जोड़कर, सिर झुका कर कहा महाराज ! किले के फाटक पर कोई गोपीनाथ नामक पण्डित आपके दर्शनों की इच्छा से खड़े हैं। 'यह समय महाराज से मिलने का

कार्यम्" इति प्रतिजानाति। तदत्र प्रभुचरणा एव प्रमाणम्—इति।

तदवगत्य "सोऽयं गोपीनाथः, सोऽयं गोपीनाथः" इति साम्रेडं सतर्कं सोत्साहञ्च व्याहृतवत्सु निखिलेषु, शिववीरेण निजबाल्यप्रियो माल्यश्रीकनामा संबोध्य कथितो यद् गम्यतां दुर्गान्तर एव महावीर-मन्दिरे तस्मै वासस्थानं दीयताम् , भोज्य-पर्यङ्कादि-सुखद-सामग्री-जातेन च सत्क्रियताम् , ततोऽहमपि साक्षात्करिष्यामि—इति।

ततो बाढमित्युक्त्वा प्रयाते माल्यश्रीके; "महाराज ! आज्ञा चेदहमद्यैव अपजलखानं कथमपि साक्षात्कृत्य, तस्याखिलं व्यवसितं विज्ञाय प्रभुचरणेषु विनिवेदयामि। नाधुना मम क्षान्तिः शान्तिश्च, यतः संन्यासिवेषोऽहं समागच्छन् द्वयोर्यवनभटयोर्वार्तयाऽवागमम्,

---

यावत्। साक्षात्करिष्यामि=द्रक्ष्यामि। गोपीनाथमिति शेषः।
बाढम् , अङ्गीकारसूचकमव्ययम्। व्यवसितम्=उद्योगम्।

नहीं है, पुनः आइयेगा,' बार-बार कहने पर भी, कहते हैं कि 'कुछ बहुत जरूरी काम है।' प्रभुचरणों की जैसी आज्ञा हो वैसा ही किया जाय।

यह जानकर, 'यह वही गोपीनाथ है, यह वही गोपीनाथ है,' इस प्रकार सभी लोगों के अनुमान पूर्वक और उत्साहपूर्वक बार-बार कहने पर शिवाजी ने अपने बचपन के मित्र माल्यश्रीक को सम्बोधित कर कहा, 'जाओ, दुर्ग के अन्दर ही महावीर-मन्दिर में उन्हें ठहराओ और भोजन, पलंग आदि सुखद सामग्रियों से उनका सत्कार करो, फिर मैं भी उनसे मिलूँगा।'

उसके बाद, माल्यश्रीक के 'अच्छी बात है' कहकर चले जाने पर, गौरसिंह ने शिवाजी के कान में धीरे से कहा, 'महाराज ! यदि आपकी आज्ञा हो, तो मैं आज ही किसी प्रकार अफ़ज़ल खाँ से मिल कर, उसका सारा इरादा जान कर आकर आप से निवेदन करूँ। अब मुझमें न तो सहिष्णुता रह गई है, न शान्ति, क्योंकि संन्यासी के वेष में आते हुए मुझे

यत् श्व एवैते युयुत्सन्ते" इति गौरसिंहो मन्दं कर्णान्तिकं व्याहार्षीत् [ ]

ततो "वीर ! कुशलोऽसि, सर्वं करिष्यसि, जाने तव चातुरीम्, तद् यथेच्छं गच्छ, नाहं व्याहन्मि तवोत्साहम्, नीतिमार्गान् वेत्सि, किन्तु परिपन्थिन एते अत्यन्तनिर्दयाः, अतिकदर्य्याः, अतिकूटनीतयश्च सन्ति। एतैः सह परम-सावधानतया व्यवहरणीयम्"—इति कथयित्वा शिववीरस्तं विससर्ज।

गौरसिंहस्तु त्रिः प्रणम्य, उत्थाय, निवृत्य, निर्गत्य, अवतीर्य, सपदि तस्या एव निम्ब-तरु-तल-वेदिकायाः समीप आगत्य, स्वसह-

---

क्षान्तिः=क्षमा। कर्णान्तिकम्=श्रवणसमीपम्। असर्वश्रव्यमिति यावत्।

चातुरीम्=कौशलम्। "गुणवचनब्राह्मणादिभ्य" इति ष्यञि अल्लोपयलोपयोः, षित्वान्ङीषि। व्याहन्मि=नाशयामि। परिपन्थिनः=शत्रवः। अत्यन्तं निर्दयाः=दयाशून्याः। अतिकदर्याः=परमनीचाः। "कदर्ये कृपणक्षुद्र" इत्यमरः। अतिकूटनीतयः=कपटाचारचतुराः। "माया निश्चलयन्त्रेषु कैतवानृतराशिषु। अयोघने शैलशृङ्गे सीराङ्गे कूटमस्त्रियामि" इत्यमरः।

रास्ते में दो मुसलमान सिपाहियों की बातचीत से पता चला कि ये कल ही लड़ना चाहते हैं।'

तदनन्तर, शिवाजी ने, "वीरवर ! तुम अत्यन्त कुशल हो, मैं तुम्हारी चतुरता को जानता हूँ, तुम सब कर लोगे, अतः अपनी इच्छानुसार जाओ, मैं तुम्हारा उत्साह नहीं मारना चाहता। तुम नीतिमार्गों को तो जानते ही हो, पर ये शत्रु बड़े क्रूर, नीच और कपटपटु हैं, इनके साथ बड़ी सावधानी बरतनी चाहिये।" यह कह कर गौरसिंह को बिदा किया।

गौरसिंह ने तीन बार प्रणाम कर, उठ कर, घूम कर, बाहर निकल कर, नीचे उतर कर, झट उसी नीम के पेड़ के नीचे चबूतरे पर आकर

चरं कुमारमिङ्गितेनाऽऽहूय कस्मिंश्चित् स्वसंकेतित-भवने प्रविश्य, आत्मनः कुमारस्यापि च केशान् प्रसाधनिकया प्रसाध्य, मुखमार्द्र-पटेन प्रोञ्छ्य, ललाटे सिन्दूर-बिन्दु-तिलकं विरचय्य, उष्णीषम-पहाय, शिरसि सूचिस्यूतां सौवर्ण-कुसुम-लतादि-चित्र-विचित्रिता-मुष्णीषिकां संधार्य, शरीरे हरितकौशेय-कञ्चुकिकामायोज्य, पादयोः शोण-पट्ट-निर्मितमधोवसनमाकलय्य, दिल्लीनिर्मिते महार्हे उपानहौ धारयित्वा, लघीयसीं तानपूरिकामेकां सह नेतुं सहचर-हस्ते समर्प्य, गुप्तच्छुरिकां दन्तावलदन्त-मुष्टिकां यष्टिकां मुष्टौ गृहीत्वा, पटवा-

इङ्गितेन=सङ्केतेन । प्रसाधनिकया=कङ्कतिकया । "प्रसाधनी कङ्कतिके" त्यमरः । "कंघी" इति हिन्दी । सौवर्णेन=सुवर्णविरचितेन, कुसुमलतादीनां चित्रेण, विचित्रिताम्=संवलिताम् । लघूष्णीष-मुष्णीषिका, ताम् । "टोपी" इति हिन्दी । शोणपट्टनिर्मितम्=रक्तकौ-शेयरचितम् । अधोवसनम्=अधोमार्गेण चरणेन धारणीयं वसनम् । "पायजामा" इति हिन्दी । दिल्लीशब्दो "दिल्लीवल्लभपाणिपल्लवतले नीतं नवीनं वय" इत्यादौ पण्डितराजेनापि व्यवहृतः । महार्हे—इत्यत्र 'ईदूदे' दित्यनेन प्रगृह्यत्वात् प्रकृतिभावो बोध्यः । तानपूर एव तानपूरिका । "तानपूरा" इति हिन्दी । सहेत्यस्य "आत्मने"ति शेषः । तानपूरिका-शब्दस्य तु न सहशब्देन विशेष्यविशेषणभाव एवेति न तत्र तृतीयाऽऽशंका । दन्तावलस्य=करिणः दन्तः मुष्टिका यस्यां ताम् । 'दन्तेन निर्मिते'ति मध्यमपदलोपिसमासो वा । "हाथी दाँत की मूठवाली गुप्ती छड़ी" इति

अपने साथी लड़के को इशारे से बुलाकर, किसी पहले से निश्चित भवन में प्रवेश कर अपने और उस लड़के के बालों को कंघी से सँवार कर, मुँह को गीले कपड़े से पोंछ कर, मत्थे पर सिन्दूर का तिलक लगा कर, पगड़ी उतार कर, सुई से सिली सोने के काम वाली पुष्पलतादि चित्रित टोपी लगाकर, हरा रेशमी अंगरखा, लाल कपड़े का पायजामा दिल्ली के बने बहुमूल्य जूते पहन कर, छोटे से एक तानपूरे को साथ ले जाने के लिये साथी बालक के हाथ में देकर जिसमें छुरी गुप्त थी ऐसी हाथी के

सैर्दिगन्तं दन्तुरयन्, करस्थपटखण्डेन च मुहुर्मुहुराननं प्रोञ्छन् गायकवेषेण अपजलखान-शिबिराभिमुखं प्रतस्थे।

अथ तौ त्वरितं गच्छन्तौ, सपद्येव परश्शत-श्वेतपट-कुटीरैः शारद-मेघ-मण्डलायितं दीपमाला-विहित-बहुल-चाकचक्यम् अपजलखान-शिबिरं दूरत एव पश्यन्तौ, यावत्समीपमागच्छतस्तावत् कश्चन कोकनद-च्छवि-वस्त्र-खण्ड-वेष्टित-मूर्द्धा, कटिपर्यन्त-सुनद्ध-काकश्यामाङ्गरक्षिकः, कर्बुराधोवसनः, शोण-श्मश्रुः, विजय-पुराधीश-नामाङ्कित-वर्तुल-पित्तल-पट्टिका-परिकलित-वाम-वक्ष-

---

भाषा। पटवासैः=सुगन्धितद्रव्यैः। "इत्र" इति हिन्दी। दन्तुरयन्=उन्नतयन्, सुगन्धयन्निति तात्पर्यम्। करस्थपटखण्डेन=हस्तस्थयाऽङ्गवलक्ष्या। "दस्ती रुमाल" इति हिन्दी।

शारदमेघमण्डलायितम्=शरत्समयमेघमण्डलमिवाऽऽचरितम्। शुभ्रत्वादुन्नतत्वाच्च सादृश्यम्। कोकनदच्छविना=रक्तकमलकान्तिना, वस्त्रखण्डेन=वेष्टितो मूर्धा यस्य सः। कटिपर्यन्ता सुनद्धा काकश्यामा=अतिश्यामला, अङ्गरक्षिका यस्य सः। कर्बुरम्=अनेकवर्णम्, अधोवसनं यस्य सः। शोणश्मश्रुः=रक्तमुखकेशः। विजय-पुराधीशनाम्नाऽङ्कितया=तन्नामधेयेन चिह्नितया, वर्तुलया=गोलाकारया,

---

दाँत की मूठ वाली गुप्ती छड़ी हाथ में लेकर, इत्र की सुगन्ध से दिशाओं को सुगन्धित करते हुए, हाथ में लिये रूमाल से बार-बार मुँह पोंछते हुए, गायक के वेष में, अफ़ज़ल खाँ के शिविर की ओर प्रस्थान किया।

तदनन्तर, जल्दी जल्दी कदम बढ़ा रहे वे दोनों, सैकड़ों श्वेत खेमों से शरद ऋतु के मेघमण्डल के समान लगने वाले, दीपमालिकाओं से जगमगा रहे, अफ़ज़ल खाँ के शिविर को दूर से ही देखते हुए, बात की बात ज्योंही समीप पहुँचे, लालकमल की सी कान्तिवाले कपड़े के टुकड़े को सिर पर लपेटे, कमर तक लम्बी कौए के रंग के समान काला अँगरखा पहने, चितकबरी लुङ्गी पहने, लाल मूँछ दाढ़ी वाले, बीजापुर के सुल्तान

स्थलः स्कन्धे भुशुण्डीं निधाय, इतस्ततो गतागतं कुर्वन् सावष्टम्भमुर्दू-भाषया उवाच–'कोऽयंकोऽयम् ?' इति; ततो गौरसिंहेनापि 'गायकोऽहं श्रीमन्तं दिदृक्षे' इति समार्दवं व्याख्यायि। ततो 'गम्यतामन्येऽपि गायका वादकाश्च सम्प्रत्येव गताः सन्ति' इति कथयति प्रहरिणि, 'घृतेन स्नातु भवद्रसना' इति व्याहरन् शिविर-मण्डलं प्रविवेश। २

तत्र च कचित् खट्वासु पर्यङ्केषु चोपविष्टान्, सगडगडाशब्दं ताम्रक-धूममाकृष्य, मुखात् कालसर्पानिव श्यामल–निश्वासानुद्गिरतः, स्वहृदय–कालिमानमिव प्रकटयतः, स्वपूर्वपुरुषोपार्जित-

---

पित्तलपट्टिकया = धातुफलकिकया, लोके "चपरास" इति ख्यातया, परिकलितम् = भूषितम्, वामं वक्षःस्थलं यस्य सः। सावष्टम्भम् = सप्रतिरोधम्। समार्दवम् = सकोमलतम्। व्याख्यायि = कथितम्। घृतेन स्नातु भवद्रसनेति, "आपके मुँह में घी चीनी" इत्यर्थकलोकप्रवादकथनम्। अतएव लोकोक्तिरलंकारः।

तत्र चेत्यारभ्य प्रधानपटकुटीरद्वारमाससादेत्येकान्वयि। ताम्रकम् = "तमाखू" इति हिन्दी। ताम्रकधूमनिश्वासस्य स्वत एव श्यामलस्य मुखादुद्वमितस्य कालसर्पत्वेनोत्प्रेक्षा। यथैन्द्रजालिका जनान्मोहयितुमाननात् कृष्णान् सर्पानुद्वमन्ति तथैवैते शिववीरमोहनाय स्थिता इत्युपमालंकारस्य व्यङ्ग्यत्वेन

के नाम से अङ्कित गोल पीतल की चपरास छाती की बाईं ओर डाले, कंधे पर बन्दूक रखकर इधर-उधर गश्त लगा रहे किसी आदमी ने उन्हें टोक कर, उर्दू भाषा में कहा, 'कौन है, यह कौन ?' गौरसिंह ने नम्रता से कहा, 'मैं गायक हूँ, हुजूर से मिलना चाहता हूँ।' तब प्रहरी के 'जाओ और भी गाने और बजाने वाले अभी अभी गये हैं' यह कहने पर, 'आपके मुँह में घी-शक्कर' कहता हुआ गौरसिंह शिविर में प्रविष्ट हो गया।

वहाँ, कहीं खाटों और पलंगों पर बैठे हुए गड़गड शब्द के साथ तम्बाकू का धुआँ खींच कर मुँह-से काले सर्पों के समान धुआँ निकाल रहे, मानो अपने हृदय की कालिमा को प्रकट कर रहे, मानो अपने पूर्वजों द्वारा

पुण्यलोकानिव फूत्कारैरग्निसात् कुर्वतः, मरणोत्तरमतिदुर्लभं मुखाग्निसंयोगं जीवन-दशायामेवाऽऽकलयतः, प्राप्ताधिकारकलिताखर्वगर्वान्; क्वचिद् "हरिद्रा, हरिद्रा, लशुनं लशुनम्, मरिचं मरिचम्, चुक्रं, चुक्रम्, वितुन्नकं वितुन्नकम्, शृङ्गवेरं शृङ्गवेरम्, रामठं रामठम्, मत्स्यण्डी मत्स्यण्डी, मत्स्या मत्स्याः, कुक्कुटाण्डं कुक्कुटाण्डम्, पललं पललम्" इति कलकलैर्बालानां निद्रां विद्रावयतः,

---

वस्त्वलङ्कारध्वनिः। अन्यथोत्प्रेक्षते स्वहृदयस्य कालिमानमिव। पुनरप्युत्प्रेक्षते स्वपूर्वपुरुषैः=अन्वयमूलभूतैः, उपार्जितान्=संचितान्, पुण्यलोकान्=स्वर्गादिकान्। अग्निसात्=वह्न्यधीनीभूतान्। दहत इति भावः। ताम्रकधूमाकर्षणमग्निसंस्कारत्वेनोत्प्रेक्षते—मरणादुत्तरम्=देहात्यागानन्तरम्। प्राप्तेन=लब्धेन, अधिकारेण=स्वाम्येन, अखर्वः=बहुलीभूतः, गर्वः=अभिमानो येषां तान्। हरिद्रा=महारजनम्। "निशाह्वा काञ्चनी पीता हरिद्रा वरवर्णिनी"त्यमरः। संभ्रमे द्विरुक्तिः। चुक्रम्=वृक्षाम्लम्। "तिन्तिडीकञ्च चुक्रञ्च वृक्षाम्लमि"त्यमरः। "चूक"इति हिन्दी। वितुन्नकम्=छत्रा। "अथच्छत्रा वितुन्नकमि"त्यमरः। "सौंफ" इति हिन्दी। शृङ्गवेरम्=आर्द्रकम्। "आर्द्रकं शृंगवेरं स्यादि"त्यमरः। "आदी" इति हिन्दी। रामठम्=हिङ्गु। मत्स्यण्डी=फाणितम्। "राब" इति हिन्दी। कुक्कुट्या अण्डं कुक्कुटाण्डम्। "कुक्कुट्यादीनामण्डादिष्वि" ति

उपार्जित स्वर्गादि पुण्य-लोकों को फूँक मार कर जला रहे, मरने के बाद (मुसलमानों के मुर्दों का जलाना उनके धर्म से निषिद्ध होने के कारण) न प्राप्त हो सकने वाले अग्निसंयोग को जीवित दशा में ही प्राप्त कर ले रहे, अधिकार सम्पन्न होने से घमण्ड में चूर हो रहे, यवनयुवकों; और कहीं 'हल्दी-हल्दी, लहसुन-लहसुन, मरिच-मरिच, खटाई-खटाई, सौंफ-सौंफ, अदरख-अदरख, हींग-हींग, राब-राब, मछलियाँ-मछलियाँ, मुर्गी का अण्डा-मुर्गी का अण्डा, मांस-मांस' के कोलाहल से बच्चों की नींद हराम कर रहे,

समीप - संस्थापित - कुतू - कुतुप-कर्करी-करण्डोल-कट-कटाह-कम्बि-कडम्बान् , उग्रगन्धीनि मांसानि शूलाकुर्वतः, नखम्पचा यवागूः स्थालिकासु प्रसारयतः, हिंगुगन्धीनि तेमनानि तिन्तिडीरसैर्मिश्रयतः, परिपिष्टेषु कलम्बेषु जम्बीर-नीरं निश्च्योतयतः, मध्ये मध्ये समागच्छतस्ताम्रचूडान् व्यजन-ताडनैः पराकुर्वतः, त्रपु-लिप्तेषु

पुंवत्त्वम् , पललम्=मांसम् । विद्रावयतः=दूरयतः । कुतूः=चर्मनिर्मितं तैलाद्याधारपात्रम् । कुतुपः=सैव लघुः । "कुतूः कृत्तेः स्नेहपात्रं सैवाल्पा कुतुपः पुमानि" त्यमरः । कर्करी=हस्तप्रक्षालनादियोग्यं पात्रम् । "कर्कर्यालुर्गलन्तिके" त्यमरः । "करवा" "गडुवा" इति हिन्दी । यवनानां "बधना" इति । करण्डोलः=पिटः । वेणुदलादिरचितो भाण्डविशेषः । "बाँसकी पिटारी" इति हिन्दी । कटः=किलिञ्जकः । कटाहः=शष्कुल्यादिपाकपात्रम् । "कढायी" इति भाषायाम् । कम्बिः=दर्विः । "कलछी" इति हिन्दी । कडम्बः=कलम्बः । शूलेन=लोहशलाकया, शूलाकुर्वतः=संस्कुर्वतः । "शूलात्पाके" इति डाच् । नखम्पचन्ति यास्ता नखम्पचाः । यवागूः=तरलाः । "यवागूरुष्णिका धाना विलेपी तरला च से" त्यमरः । हिङ्गुनो गन्धो येषु तानि हिङ्गुगन्धीनि । "अल्पाख्यायामि" ति गन्धस्येकारः । "गन्धो गन्धक आमोदे लेशे सम्बन्धगर्वयोरि"त्यमरः । तेमनानि=व्यञ्जनानि । तिन्तिडीरसैः=चुक्ररसैः । मिश्रयतः=संयोजयतः । अत्र विशेष्यविशेषणाभ्यां "कढी" इति ख्यातस्य ग्रहणम् । कलम्बेषु=वास्तूकादिशाकदण्डेषु । "अस्त्री शाकं हरितकं शिग्रुरस्य तु नाडिका । कलंम्बश्च कडम्बश्चे"त्यमरः । "पीसी हुई चटनी में". इ

पास में ही कुप्पा, कुप्पी, करवा (गडुआ या बधना) टोकरी, चटाई, कढ़ाई करछुल और साग के डण्ठल रखे, दुर्गन्ध देने वाले मांस खण्डों को लोहे की सलाखों में पिरोकर पका रहे, गरम-गरम गीला भात थालियों में परोस रहे, हींग से बघारी कढ़ी में इमली का रस मिला रहे, पिसी हुई चटनी में नींबू का रस निचोड़ रहे, बीच बीच में आने वाले मुर्गों को पंखों से भ

ताम्र-भाजनेषु आरनालं परिवेषयतः सूदान् ; क्वचिद्वक्र-प्रसाधित-काकपक्षान् , मद-व्याघूर्णित-शोण-नयनान् , सपारस्परिक-कण्ठग्रहं पर्य्यटतः, यौवन-चुम्बित-शरीरान् , स्वसौन्दर्य-गर्व-भारेणेव मन्द-गतीन् , अनवरताऽऽक्षिप्त-कुसुमेषु-बाणैरिव कुसुमैर्भूषितान् , वसना-तिरोहिताङ्गच्छटान् , विविध-पटवास-वासितानपि चिरास्नान-

हिन्दी । निश्च्योतयतः = क्षारयतः । ताम्रचूडान् = कुक्कुटान् । त्रपु-लिप्तेषु = "कलई किये हुये" इति हिन्दी । आरनालम् = काञ्जिकम् , "आरनालकसौवीरकुल्माषाभिषुतानि च । काञ्जिक" इत्यमरः । सूदान् = पाचकान् । वक्रम् यथा तथा प्रसाधिताः = क्षालिताः, काकपक्षाः = कुञ्चितकचाः "काकुल" इति हिन्दी, यैस्तान् । मदेन व्याघूर्णितानि शोणानि नयनानि येषां तान् । पारस्परिकेण = आन्योन्येन, कण्ठग्र-हेण = गलधारणेन सहितं यथा स्यात्तथेति पर्यटनक्रियाविशेषणम् । यौव-नेन = नववयसा, चुम्बितानि = सम्बद्धानि, शरीराणि येषां तान् । चुम्बि-तपदं लक्षणया सम्बद्धबोधकम्, वक्त्रसंयुक्तत्वरूपस्य मुख्यार्थस्य बाधात् । स्वभावतो मन्दाया गतेर्निमित्तमुत्प्रेक्षते स्वसौन्दर्यस्य गर्वभारेणेवेति । कुसुम-भूषितेषु तेषु कुसुमानि कुसुमेषुधनुर्निपतितानीत्युत्प्रेक्षते—अनवरतम् = सततम्, आक्षिप्ताः = पतिताः, कुसुमेषुबाणाः = कामशराः, येषु तान् । वसनैः = वस्त्रैः, अतिरोहिता, अङ्गच्छटा येषां तान् । विविधैः, पटवासैर्वा-सितानपि, चिरास्नानेन = अत्यधिककालतो देहानिर्योजनेन, महामलिन-

मार कर भगा रहे, और कलई किये हुये ताँबे के बर्तनों में कांजी परोस रहे रसोइयों को, कहीं तिरछी जुल्फें सँवारे हुए, नशे से झूमते लाल आँखों वाले, एक दूसरे के गले में हाथ डाले घूमते हुए, नई जवानी वाले, मानो अपने सौन्दर्य के घमण्ड के भार से धीरे धीरे चल रहे, निरन्तर चलाए जा रहे मानों काम बाण रूपी पुष्पों से अलंकृत, कपड़ों से अङ्गच्छवि को तिरोहित न कर सकने वाले, नाना प्रकार के इत्रों से सुगन्धित होते हुए

महा–मलिन–महोत्कट–स्वेद-पूतिगन्ध-प्रकटीकृतास्पृश्यतान् यव
युवकान्;

क्वचिद् "अहो! दुर्गमता महाराष्ट्रदेशस्य, अहो! दुराधर्षता म
राष्ट्राणाम्, अहो! वीरता शिववीरस्य, अहो! निर्भयता एतत्से
नीनाम्, अहो त्वरितगतिरेतद्घोटकानाम्, आः! किं कथयामः
दृष्ट्वैव चमत्कारं शिववीर–चन्द्रहासस्य न वयं पारयामो
धर्त्तुम्, न च शक्नुमो युद्धस्थाने स्थातुम्, को नाम द्विशिराः
शिवेन योद्धुं गच्छेत्? कश्च नाम द्विपृष्ठो यस्तद्भटैरपि छला

स्य=अत्यन्तं मलीमसस्य, महोत्कटस्य=अत्युग्रस्य, स्वेदस्य=घर्मवारि
पूतिगन्धेन=दौर्गन्ध्येन, प्रकटीकृता=व्यक्तीकृता अस्पृश्यता=स्प
योग्यता, यैस्तान्।

क्वचिद् व्याहरंत इति द्वितीयान्तेन सम्बन्धः। व्याहरणं कथयति-अ
इति। पुनः पुनः सम्भवति सम्बोभवीति, अतिशयेन सम्बोभवीति सम्
भवीतितमाम्। "वर्त्तमानसामीप्ये वर्त्तमानवद्वे" ति लट्। भ्रूकुंसकः
स्त्रीवेषधारी नर्त्तकः। भ्रुवोः कुंसः=भाषणम्, भ्रुवा कुंसः=शोभा
यस्य सः। दुराधर्षता=दुरभिभवनीयता। द्वे शिरसी यस्य
द्विशिराः=द्विशीर्षः, एवम्भूत एव हि परितः प्रसृतान् तदीयान् भ
छलयन् रहस्यमाख्यातुमर्हति य उभयतोदृष्टिर्भवेदिति तत्त्वम्। द्वे

भी, बहुत दिनों से स्नान न करने के कारण कुचैले और उग्र गन्ध
पसीने की बदबू से अपनी अस्पृश्यता को प्रकट कर रहे यवन युवकों

तथा कहीं 'उफ़! महाराष्ट्र देश बड़ा दुर्गम है, ओह! मराठे
दुर्धर्ष हैं, ओह! शिवाजी की वीरता अद्भुत है। इसके सैनिक बड़े निडर
इसके घोड़े कितने तेज़ हैं! आह, क्या कहें शिवाजी की तलवार की
देखकर ही हमारे छक्के छूट जाते हैं और युद्धस्थल से टिक सकना ह
लिए कठिन हो जाता है। कौन दो सिर वाला होगा जो शिवाजी से ल
जायगा और कौन दो पीठ वाला होगा जो उसके सैनिकों से भी

विदध्यात् ? वयं बलिनः, आस्माकीना महती सेना, तथाऽपि न जानीमः किमिति कम्पत इव क्षुभ्यतीव च हृदयम् ! 'यवनानां पराजयो भविष्यति, अपजलखानो विनङ्क्ष्यती'ति न विद्मः को जपतीव कर्णे, लिखतीव सम्मुखे, क्षिपतीव चान्तःकरणे। मा स्म भोः ! मैवं स्यात्, रक्ष भो ! रक्ष जगदीश्वर ! अथवा सम्भोभवीतितमामेवमपि, योऽयमपजलखानः सेनापति–पद–विडम्बनोऽपि 'शिवेन योत्स्ये हनिष्यामि ग्रहीष्यामि वे' ति सप्रौढि विजयपुराधीश-महासभायां प्रतिज्ञाय समायातोऽपि, शिवप्रतापञ्च विदन्नपि अद्य नृत्यम्, अद्य गानम्, अद्य लास्यम्, अद्य मद्यम्, अद्य वाराङ्गना, अद्य भ्रूकुंसकः, अद्य वीणावादनमिति स्वच्छन्दैरुच्छृङ्खलाऽऽचरणैर्दिनानि गमयति। न च यः कदापि विचारयति; यत्

यस्यासौ द्विपृष्ठः यस्य पृष्ठद्वयं भवेत् स एव तद्घटेन छलं कुर्यात्, नतु साधारण इति भावः। जपतीव=मन्दं कथयतीव। इवेन न वास्तवो जप

छन्द की बात करेगा ? हमलोग बलशाली हैं, हमारी सेना भी बहुत बड़ी है, फिर भी न जाने क्यों हृदय काँपता-सा है, क्षुब्ध-सा होता है। 'यवनों की हार होगी और अफ़जल खाँ मारा जायगा' इस प्रकार न जाने कौन कान में धीरे से कह-सा रहा है, सामने लिख-सा रहा है, दिल में यही बात जमा-सा रहा है। नहीं नहीं ऐसा कभी नहीं, या खुदा बचाना ! अथवा ऐसा हो भी सकता है, क्योंकि सेनापति पद को विडम्बित करने वाला यह अफ़जल खाँ, यद्यपि 'मैं शिवाजी से लड़ूँगा, उसे या तो मार डालूँगा या कैद कर लाऊँगा' इस प्रकार बीजापुर के सुल्तान की सभा में प्रतिज्ञा करके आया है और शिवाजी के पराक्रम से भी भली-भाँति परिचित है, फिर भी आज नाच है तो आज गाना है, आज शृङ्गारप्रधान स्त्रीनृत्य है तो आज मदिरा है, आज वेश्या है तो आज स्त्रीवेषधारी नर्तक है, आज सितारवादन है, इस प्रकार स्वच्छन्द उच्छृङ्खल असदाचरण से दिन बिता रहा है। यह कभी भी यह नहीं सोचता कि कहीं

कदाचित् परिपन्थिभिः प्रेषिता काचन वारवधूरेव मामासवे सह विषं पाययेत्, कोऽपि नट एव ताम्बूलेन सह गरलं ग्रासये कोऽपि गायक एव वा वीणया सह खड्गमानीय खण्डयेदित्यां ध्रुव एव तस्य विनाशः, ध्रुवमेव पतनम्, ध्रुवमेव च पशुव मरणम्। तन्न वयं तेन सह जीवन-रत्नं हारयिष्यामः"— व्याहरतः; इतरांश्च—

"मैवं भोः! श्व एव आहव-क्रीडाऽस्माकं भविष्यति, तत् श्रू सन्धि-वार्त्ता-व्याजेन शिव एकत आकारयिष्यते, यावच्च स स्वसे मपहाय एकाकी अस्मत्स्वामिना सहाऽऽलपितुमेकान्तस्थाने यास्य तावद्वयं श्येना इव शकुनिमण्डले महाराष्ट्र-सेनायां, छि

इति सूचितम्। आसवेन=मद्येन। जीवनरत्नम्=श्रेष्ठं जीवन रत्नशब्दः श्रेष्ठवाची। "रत्नं स्वजातिश्रेष्ठेऽपी" त्यमरः। इतरांश्च कर्णा मुखमानीयोत्तरयत इति सम्बन्धः। उत्तरं प्रदर्शयति मैवमिति। आहवः संग्रामः, स एव क्रीडा। श्येना इव=बाजपक्षिण इव। शकुनिमण्डले

दुश्मनों द्वारा भेजी गई कोई वेश्या ही मुझे मदिरा के साथ विष न पि दे, कोई नट ही पान के साथ जहर न खिला दे, कोई गायक ही वीणा साथ खड्ग लाकर मेरे टुकड़े-टुकड़े न कर दे, उसका विनाश अवश्यम्भ है, उसका पतन होने में कोई सन्देह नहीं, उसका पशुवत् मारा ज निश्चित है। इसलिए हम उसके साथ अपना बहुमूल्य जीवन र गँवायेंगे।' इस प्रकार कहते हुए कुछ सिपाहियों और दूसरों को उ कानके पास मुँह ले जाकर, 'ऐसा मत कहो, कल ही हमारी युद्ध-क्रीडा हो सुनते हैं कि सन्धि की बातचीत के बहाने शिवाजी को एक ओर बुल जायगा, और ज्यों ही वह अपनी सेना को छोड़कर हमारे मालिक के स बात करने के लिए एकान्त स्थान में जायँगे, हम लोग पक्षियों पर की तरह, मराठों की सेना पर मार-काट मचाते हुए एक साथ टूट प

भिन्धि—इति कृत्वा युगपदेव पतिष्यामः, वसन्त-वाताहत-नीरसच्छदानिव च तृणेन विद्रावयिष्यामः। इतस्तु छलेनास्मत्स्वामिसहचराः शिवं पाशैर्बद्ध्वा पिञ्जरे स्थापयित्वा तं जीवन्तमेव वशंवदं करिष्यन्ति। परन्तु गोप्यतमोऽयं विषयो मा स्म भूत् कस्यापि कर्णगतः"— इति कर्णान्तिकं मुखमानीयोत्तरयतः सांग्रामिक-भटानवलोकयन्; "धन्या भवन्तो येषां गोप्यतमा अपि विषया एवं वीथिषु विकीर्यन्ते। महाराष्ट्रा धूर्ताचार्याः, नैतेषु भवतां धूर्तता सफला भवति" इत्यात्मन्येवाऽऽत्मना कथयन्, स्व-प्रभा-धर्षित-सकल-रक्षकगणः स्वसौन्दर्येणाऽऽकर्षयन्निव विश्वेषां मनांसि, सपद्येव प्रधान-पट-कुटीर-द्वारमाससाद। तत्र च प्रहरिणमालोकयदुक्तवांश्च यत् पुण्यनगर-निवासी गायकोऽहमत्रभवन्तं गान-रस-रसायनैरमन्दमानन्दयितुमिच्छामीति। तदवगत्य स भ्रूसंचारेण कञ्चित्

पत्तिसमूहे। वसन्तवातेन, आहतान्, अतएव नीरसान् शुष्कान्, छदानिव=पत्राणीव। उपमा। वशं वदतीति वशंवदस्तम्। "प्रियवशे वदः खजि"ति खच्। आकर्षयन्=वशीकुर्वन्। वीणाया आवरणम्=

और क्षण भर में ही उसे वसन्त (पतझड़) ऋतु की हवा से गिरे सूखे पत्तों की तरह मार भगायेंगे। इधर हमारे मालिक के नौकर, शिवा जी को छल से रस्सियों से बाँध कर, पिंजड़े में बन्द करके, जीते जी ही अपने वश में कर लेंगे। लेकिन यह विषय ही बड़ा गोपनीय है, किसी के कान में न पड़ने पाये' इस प्रकार उत्तर देते हुए देखकर, मन-ही-मन 'आप लोग धन्य हैं, जिनके अति गोपनीय विषय भी रास्तों में इस प्रकार फैले रहते हैं, पर मराठे परले सिरे के धूर्त हैं, आपकी धूर्तता इनके आगे सफल नहीं हो सकती' ऐसा कहते हुए, अपने तेज से सभी पहरेदारों को निष्प्रभ कर, अपनी सुन्दरता से सभी के हृदयों को अपनी ओर खींचते हुए से गौरसिंह (तानरंग) बात की बात में प्रधान खेमे के दरवाजे पर पहुँच गये। वहाँ पहरेदार से मिले और कहा कि पूना नगर का निवासी मैं हुजूर को गानरस के रसायन से आनन्दित करना चाहता हूँ। उनका

निवेदकं सूचितवान्। स चान्तः प्रविश्य, क्षणानन्तरं पुनर्बहिर्नि-र्गत्य गायकमपृच्छत्—'किं नाम भवतः? पूर्वञ्च कदाऽपि समायातो न वा?' अथ स आह—'तानरङ्गनामाऽहं कदाचन युष्मत्कर्णमगमं शम्। न पूर्वं कदाऽपि ममात्रोपस्थातुं संयोगोऽभूत्, अद्य भाग्या-न्यनुकूलानि चेच्छ्रीमन्तमवलोकयिष्यामि' इति। स च 'आम्' इत्युदीर्य पुनः प्रविश्य क्षणानन्तरं निर्गत्य च, विचित्र-गायकमनु सह निनाय।

तानरङ्गस्तु तेनैव तानपूरिका-हस्तेन बालकेनानुगम्यमानः, शनैः शनैः प्रविश्य, प्रथमं द्वितीयं तृतीयञ्च द्वारमतिक्रम्य, कांश्चित् मृदङ्ग-स्वरान् सन्दधतः; कांश्चिद्वीणावरणमुन्मुच्य, प्रवालं प्रोञ्छ्य, कोणं कलयतः; कांश्चिदविचलोऽयमेतेनैव सह योज्यन्तामपरवाद्या-

आच्छादनवस्त्रम्। प्रवालम्=वीणादण्डम् "वीणादण्डः प्रवालः स्यादि" त्यमरः! कोणम्=वादनोपयोगिनमुपकरणविशेषम्। "मिजराफ"

भाव समझकर उसने भौंहों के इशारे से एक सन्देशवाहक को सूचित किया। उसने अन्दर जाकर क्षण भर बाद पुनः बाहर आकर गायक से पूछा 'आपका नाम क्या है? आप पहले कभी आये हैं या नहीं?' गायक ने कहा 'मेरा नाम तानरङ्ग है, शायद कभी यह नाम आपके कानों में पड़ा हो। मुझे पहले कभी यहाँ आने का अवसर नहीं मिला, आज यदि भाग्य ने साथ दिया तो हुजूर के दर्शन करूँगा।' वह 'अच्छा' कह कर भीतर जाकर और थोड़ी ही देर में बाहर आकर उस विचित्र गायक को साथ ले गया।

तानरङ्ग—जिसके पीछे-पीछे तानपूरा हाथ में लिए वह बालक चल रहा था—ने धीरे-धीरे प्रवेश कर, पहले, दूसरे और तीसरे दरवाजे को पार कर, किसी को मृदङ्ग के स्वर साधते, किसी को सितार का गिलाफ उतार कर, वीणादण्ड को पोंछ कर, कोण (मिजराफ) पहनते, किसी को 'बाँसुरी का स्वर अविचल है, इसी के साथ अन्य बाजों को मिलाओ'

नीति वंशीरवं साक्षीकुर्वतः; कांश्चित् कलित-नेपथ्यान्, पादयोर्नूपुरं बध्नतः; कांश्चित् स्कन्धावलम्बिगुटिकातः करतालिकामुत्तोलयतः; कांश्चिच्च कर्णे दक्षकरं निधाय, चक्षुषी सम्मील्य, नासामाकुञ्च्य, पातितोभयजानु उपविश्य, वामहस्तं प्रसार्य, तन्त्रीस्वरेण स्व-काकलीं मेलयतः; सम्मुखे च पृष्ठतः पार्श्वतश्चोपविष्टैः कैश्चित् ताम्बूल-वाहकैः, अपरैर्निष्ठ्यूतादान-भाजन-हस्तैः, अन्यैरनवरत-चालित-चामरैः, इतरैर्बद्धाञ्जलिभिर्लालाटिकैः परिवृतम्, रत्नजटितोष्णीषिकामस्तकम्, सुवर्ण-सूत्र-रचित-विविध-कुसुम-कुड्मल-लता-

---

इति हिन्दी। साक्षीकुर्वतः=साक्षाद्दर्शितां नयतः। इतरवाद्यसत्यतायै प्रमाणतां प्रापयत इति यावत्। करतालिकाम्="करताल" इति हिन्दी। काकलीम्=सूक्ष्मं कलम्। 'ईषदर्थे चेति' कोः कादेशः, गौरादित्वात् ङीष्। "काकली तु कले सूक्ष्म" इत्यमरः। निष्ठ्यूतादानम्=पतद्ग्रहः। "पीकदान" इति हिन्दी। लालाटिकैः=अधिपतिभालमात्रावलोकनक्षमैर्न तु कार्यसम्पादकैः। "लालाटिकः प्रभोर्भालदर्शी कार्याक्षमश्च यः" इत्यमरः। सुवर्णसूत्रेण=सूक्ष्मतमसुवर्णतन्तुना, "कलावत्तू" इति हिन्दी, रचिता या विविधाः=अनेकप्रकाराः, कुसुमकुड्मललताः= पुष्पकलिकावल्ल्यः, तासां प्रतानैः=वितननैः, अङ्कितः=अञ्चितः,

---

यह कहते; किसी को वेष रचना कर पैरों में घुँघुरू बाँधते; किसी को कन्धे पर लटकती झोली से करताल निकालते; किसी को कान पर दाहिना हाथ रखकर, आँखें मूँद कर, नाक सिकोड़ कर, घुटनों के बल बैठकर, बायाँ हाथ फैला कर, वीणा के स्वर के साथ अपनी काकली (सूक्ष्म कलगान) का मिलान करते; और सामने, पीछे तथा दायें-बायें बैठे हुए कुछ ताम्बूल-वाहकों, दूसरे हाथ में पीकदान लिए लोगों, अन्य निरंतर चँवर डुला रहे आदमियों तथा दूसरे हाथ जोड़े खड़े चापलूस नौकरों से घिरे हुए, सिर पर रत्न जड़ी टोपी लगाये हुए, सोने के तारों से कढ़े विविध फूलों,

प्रतानाङ्कित-कञ्चुकं महोपबर्हमेकं क्रोडे संस्थाप्य, तदुपरि सन्ध
रितभुजद्वयम् , रजत-पर्य्यङ्के विविध-फेन-फेनिल-क्षीरधि-जल-त
च्छविमङ्गीकुर्वत्यां तूलिकायामुपविष्टमपजलखानं च ददर्श।

ततस्तु तानरङ्ग-प्रभा-वशीभूतेषु सर्वेषु 'आगम्यतामागम्यताम
स्यतामास्यताम्' इति कथयत्सु, तानरङ्गोऽपि सादरं दक्षिण-ह
नाऽऽदरसूचक-सङ्केत-सहकारेण यथानिर्दिष्टस्थानमलञ्चकार।

ततस्तु इतरगायकेषु सगर्वं सासूयं सक्षोभं साक्षेपं सचक्षु
स्फारणं सशिरःपरिवर्तनं च तमालोकयत्सु अपजलखानेन स
तस्यैवमभूदालापः।

कञ्चुकः = निचोलो यस्य तम्। मपहोबर्हम् = महोपधानम्। "मसन
इति हिन्दी। विवधफेनेन = प्रचुरडिण्डीरेण, फेनिलस्य = फेनसंव
तस्य, क्षीरधेः = वारिधेः, जलतलस्य छविम् = शोभाम्, अङ्गीकुर्वत्याम्
धारयन्त्याम्। तूलमस्ति यस्यां सा तूला = तूलवती, तूलैव तूलिका
तूलमयो विष्टरः, तस्याम्। "रूई की गद्दी, तोसक" इति हिन्दी। क्व
पर्यायत्वमनुचिन्तायन्तस्तु चिन्तनीयबुद्धय एवेति शम्।

आदरसूचकसंकेतः = "सलाम" इति हिन्दी।

कलियों और वेलबूटों वाली अचकन पहने, गोद में एक बड़ी-सी मस
रखकर उस पर अपने दोनों हाथ रखे हुए, चाँदी के पलंग के ऊ
प्रचुर फेन से फेनिल समुद्र की शोभा को मात कर रहे गद्दे पर बैठे अ
जल खाँ को देखा।

उसके बाद तानरङ्ग की चमक-दमक से सबके मंत्रमुग्ध हो
'आइये! आइये! बैठिये! बैठिये!' कहने पर, तानरङ्ग ने भी द
हाथ से सलाम करते हुए निर्दिष्ट आसन अलंकृत किया।

अन्य गायकों के गर्व, ईर्ष्या, झुँझलाहट और निन्दा के साथ आँ
फाड़-फाड़ कर तथा सिर हिला-हिला कर, तानरङ्ग को देखने पर, अफ
खाँ के साथ तानरङ्ग की इस प्रकार बातचीत हुई।

अपजलखानः—किन्देशवास्तव्यो भवान् ?
तानरङ्गः—श्रीमन् ! राजपुत्रदेशीयोऽहमस्मि ।
अपजल०—ओः ! राजपुत्रदेशीयः ?
तान०—आम् ! श्रीमन् !
अप०—तत् कथमत्र महाराष्ट्रदेशे ?
तान०—सेनापते ! मम देशाटन-व्यसनं मां देशाद्देशं पर्याटयति ।

अप०—आ ! एवम् ! तत्किं प्रायः पर्य्यटति भवान् ?

तान०—एवं चमूपते !, नव्यान् नव्यान् देशानवलोकयितुम्, नवा नवा भाषा अवगन्तुम्, नूतना नूतना गान-परिपाटीश्च कलयितुम् एधमान-महाभिलाष एष जनः ।

वास्तव्यः=निवासी । "वसेस्तव्यत् कर्त्तरि णिच्चे" ति तव्यत् । पर्याटयति=सर्वतो भ्रामयति । एधमानः=वृद्धिं गच्छन्, महान् अभि-

---

अफ़ज़ल खाँ—आप किस देश के निवासी हैं ?
तानरङ्ग—हुजूर ! मैं राजपूताने का हूँ ।
अफ़ज़ल खाँ—ओह ! राजपूताने के ?
तानरङ्ग—हाँ, हुजूर !

अफ़ज़ल खाँ—तो यहाँ महाराष्ट्र देश में कैसे आना हुआ ?

तानरङ्ग—सेनापति जी ! अपने घूमने के शौक के कारण मैं एक देश से दूसरे देश में घूमता रहता हूँ ।

अफ़ज़ल खाँ—अच्छा, यह बात है, तो क्या आप अक्सर घूमा करते हैं ?

तानरङ्ग—हाँ सेनापति जी ! नये-नये देशों को देखने, नई-नई भाषाओं को जानने, नई-नई गान-शैलियों को सीखने का मुझे बड़ा शौक है ।

अप०—अहो ! ततस्तु बहुदर्शी बहुज्ञश्च भवान्। अथ वङ्ग देशे गतो भवान् ? श्रूयतेऽतिवैलक्षण्यं तद्देशस्य।

तान०—सेनापते ! वर्षत्रयात्पूर्वमहं काश्यां गङ्गायां संस्नाय, उज्जयिनी-देशीय-क्षत्रिय-कुलालङ्कृतं भोजपुर-देशमालोक्य, गङ्गा-गण्डक-तटोपविष्टं हरिहरनाथं प्रणम्य, विलासि-कुल-विलसितं पाटलिपुत्र-पुरमुल्लङ्घ्य, सीताकुण्ड-विक्रमचण्डिकादि-पीठ-पटल-पूजितं विक्रम-यशःसूचक-दुर्गावशेष-शोभितं देवधुनी-तरङ्ग-क्षालित-प्रान्तं मुद्गलपुरं निरीक्ष्य, कर्ण-दुर्ग-स्थानेन तद्यशोमहामुद्रये-वाङ्कितमङ्गदेशं दिनत्रयमध्युष्य, अतिवर्द्धमानवैभव वर्द्धमान-नगरं च सम्यक् समालोक्य, यथोचित-सम्भारैस्तारकेश्वरमुपस्थाय, ततो-

---

लाषः=इच्छा, यस्य सः। उज्जयिनीदेशीय-क्षत्रियकुलालंकृतम्, अतएव भोजपुरमिति तन्नाम। भोजो हि बभूवोज्जयिन्या नातिदूरे धारानगरे। देव-धुन्याः=जह्नुतनयायाः, तरङ्गैः, क्षालितः प्रान्तो यस्य तत्। मुद्गलपुरम्='मुङ्गेर' इति ख्यातम्। वर्द्धमाननगरम्=अद्यत्वे "बर्दवान" इति ख्यातम्।

अफ़जल खाँ—तब तो आपने बहुत कुछ देखा सुना है। क्या आप बंगाल गये हैं ? सुनते हैं वह देश बड़ा अद्भुत है।

तानरङ्ग—सेनापति जी, मैंने तीन साल पहले काशी में गङ्गा में नहाकर, उज्जैन के क्षत्रिय-वंशों से अलंकृत भोजपुर देश को देखकर, गङ्गा और गण्डक नदियों के तट पर विराजमान हरिहरनाथ को प्रणाम कर, विलासी लोगों से सुशोभित पटना नगर को पार कर, सीताकुण्ड, विक्रमचण्डिका आदि पीठों से पूजित, वीर विक्रमादित्य की कीर्ति के परि-चायक खंडहरों से सुशोभित और गङ्गा की लहरों से धुले प्रान्त मुँगेर का दर्शन कर, कर्ण-दुर्ग स्थान रूपी महारथी कर्ण की मुद्रा से अङ्कित से अङ्गदेश में तीन दिन निवास कर, महा समृद्धिशाली बर्दवान नगर को भली-भाँति देखकर, समुचित सामग्री से भगवान तारकेश्वर की पूजा करके, उससे

ऽपि पूर्वं वङ्गदेशे, पूर्ववङ्गेऽपि च चिरमहमटाट्यामकार्षम् ।

अप०—किं किं किं पूर्ववङ्गेऽपि ?

तान०—आम् श्रीमन् ! पूर्ववङ्गमपि सम्यगवालुलोकदेष जनः, यत्र प्रान्त-प्ररूढां पद्मावलीं परिमर्दयन्ती पद्मेव द्रवीभूता पयः-पूर-प्रवाह-परम्पराभिः पद्मा प्रवहति, यत्र ब्रह्मपुत्र इव शत्रु-सेना-नाशन-कुशलः ब्रह्म-देशं विभजन् ब्रह्मपुत्रो नाम नदो भूभागं क्षालयति, यत्र साम्ल-सुमधुर-रस-पूरितानि फूत्कारोद्धूत-भूति-ज्वलदङ्गार-विजित्वर-वर्णानि जगत्प्रसिद्धानि नारङ्गाण्युद्ग-

---

अटाट्याम्=पर्यटनम् ।

अवालुलोकत्=अवलोकयाञ्चकार । प्रान्तयोः=तटोपान्तयोः, प्ररूढाम्=समुद्भूताम् । पद्मावलीम्==कमलश्रेणीम् । सरिति कमलानि विकसन्तीति कविसमयख्यातिः । पद्मेव=श्रीरिव । द्रवीभूता=प्रस्नुता । पद्मा=तन्नाम्नी नदी । ब्रह्मपुत्रः=गरलविशेषः । "ब्रह्मपुत्रः प्रदीपन" इत्यमरः । ब्रह्मदेशम्="बर्मा" इति ख्यातदेशम् । साम्ल-सुमधुरः='खट-मीठ' इति भाषा । फूत्कारेण=मुखवायुना, उद्धूता=उड्डायिता, भूतिः=भस्म, येषां तादृशा ये ज्वलदङ्गाराः=प्रकाशमानाङ्गाराः, तेषां विजित्वराः=

भी पूर्व में स्थित बंगाल में और पूर्वी बंगाल में, बहुत दिनों तक भ्रमण किया है ।

अफ़जल खाँ—क्या, क्या, क्या, पूर्वी बंगाल में भी ?

तानरङ्ग—हाँ हुजूर ! मैंने पूर्वी बङ्गाल भी खूब अच्छी तरह देखा है । जहाँ किनारे उगी हुई कमल की पंक्ति को जलप्रवाह से मसलती हुई, जलरूप में परिणत हो गई लक्ष्मी के समान, पद्मा नदी बहती है, जहाँ ब्रह्मपुत्र (एक विशेष प्रकार का विष) के समान वैरियों की सेना के नाश करने में दक्ष ब्रह्मपुत्र नाम का नद, ब्रह्मदेश को भारतवर्ष से पृथक् करता हुआ, भूमिभाग को सींचता है, जहाँ खटमिट्ठे रस से भरे, धधकते हुए अंगारों-जिनकी राख फूँक मार कर उड़ा दी गई हो—के रंग को मात

वन्ति, यद्देशीयानां जम्बीराणां रसालानां तालानां नारिकेला खर्जूराणां च महिमा सर्वदेश-रसज्ञानां साम्रेडं कर्णं स्पृशति, च भयंकराऽऽवर्त-सहस्राऽऽकुलासु स्रोतस्वतीषु सहोहोकारं क्षेपर्ण क्षिपन्तः, अरित्रं चालयन्तः, बडिशं योजयन्तः, कुवेणीस्थ-म्रियमा मत्स्य-परीवर्त्तानालोकमालोकमानन्दन्तः, अदृष्टतटेष्वपि महाप्र हेषु स्वल्पया कूष्माण्ड-फक्किकाकारया नौकया भिन्नाञ्जन-लि इव मसी-स्नाता इव साकारा अन्धकारा इव काला धीवर-बा निर्भयाः क्रीडन्ति ।

जयनशीलाः, वर्णा येषां तानि। नारङ्गाणि=नागरङ्गाणि । "नारङ्ग" इ हिन्दी । भयङ्करैः=भीतिजनकैः, आवर्त्तसहस्रैः=बहुसंख्याम्भसां भ्र "स्यादावर्त्तोऽम्भसां भ्रम" इत्यमरः, आकुलासु । स्रोतस्वतीषु=नदी सहोहोकारम्=नौकादण्डप्रक्षेपावसरे तद्देशीयाः "हो हो" शब्दं कुर्वन्ति क्षेपणीः=नौकादण्डान् । "नौकादण्डः क्षेपणी स्यादि" त्यमरः । "डाँड़ इति हिन्दी । अरित्रम्="अरित्रं केनिपातक" इत्यमरः । "पतवार" इ हिन्दी । बडिशम्="बडिशं मत्स्यवेधनमि" त्यमरः, कुवेण्याम्- मत्स्याधान्यां तिष्ठन्ति ये ते कुवेणीस्थाः, म्रियमाणाः=आसन्नमर मत्स्यास्तेषां परीवर्त्तान्=पार्श्वपरिवर्तितानि । आलोकमालोकम्- समवलोक्येत्यर्थः, फक्किका="फाँक, फाँकी" इति हिन्दी । धीवरबाल

करनेवाले विश्वविख्यात संतरे पैदा होते हैं, जहाँ के नीबू, आम, नारि और खजूरों का नाम सभी देशों के रसिकों के कान में बार-बार पड़ता और जहाँ भयंकर हजारों भँवरों से भरी नदियों में, 'हो हो' करते डाँड़ डालते और पतवार चलाते हुए, बंसी डालते, जाल में मरणासन्न मछलियों का छटपटाना देखकर आनन्दित होते हुए, जि तट भी नहीं दिखाई देते ऐसे महाप्रवाहों में भी छोटी-सी कुँभड़े की के आकार की नाव से, पिसे हुए अञ्जन से लिपे-पुते से, स्याही में डूबे शरीर धारण कर आये हुए अन्धकार के समान काले धीवरों (मछुवे लड़के निडर होकर खेलते हैं ।

अप०—[स्वयं हसन्, सर्वांश्च हसतः पश्यन्] सत्यं सत्यम् !! धन्यो भवान्, योऽल्पेनैव वयसैवं विदेश-भ्रमणैः चातुरीं कलयति।

तान०—धन्य एव यदि युष्मादृशैरभिनन्द्ये !

अप०—(क्षणानन्तरम्) अथ भवान् मूर्छना-प्रधानं गायति, तान-प्रधानं वा ?

तान०—ईदृक्षं तादृक्षञ्च ।

कलत्वमुत्प्रेक्षते-भिन्नाञ्जनलिप्ता इव, मसीस्नाता इव, साकारा अन्धकारा इवेति ।

अभिनन्द्ये, कर्मणि उत्तमपुरुषे। मूर्छनाप्रधानमिति, अविच्छेदं स्वरात् स्वरान्तरप्राप्तिर्मूर्छना, सविच्छेदं स्वरात्स्वरान्तरप्राप्तिस्तानः। "स्फुटीभवद्ग्राम-विशेषमूर्छनामवेक्षमाणं महतीं मुहुर्मुहुरि"ति वायुसम्पर्केण मूर्छना कथमि-वोद्भाव्यत इति माघ एव जानातु, परिसमाप्नोतु वा वीणावैलक्षण्यं सर्वमिति मूलकृच्छिष्यकृतटिप्पणी। महत्यास्तत्तत्स्वरानुगासु तन्त्रीषु क्रमिकेण पवना-घट्टनेन निर्दिष्टमूर्छनाया अव्याघातान्माघाक्षेपो निरर्थक इति दार्शनिकसार्व-भौमा गोस्वामिदामोदरशास्त्रिचरणाः। "आरोहावरोहक्रमयुक्तः स्वर-समुदायो मूर्छनेत्युच्यते, तानस्त्वारोहक्रमेण भवती" ति मतङ्गः।

भवति च सङ्गीतशास्त्रपद्यम्—

"आरोहेणावरोहेण क्रमेण स्वरसप्तकम्।
मूर्छनाशब्दवाच्यं हि विज्ञेयं तद्विचक्षणैः ॥"

अफ़ज़ल खाँ—(स्वयं हँसते हुए और हँसते हुए सभी अन्य लोगों को देखते हुए) सच है, सच है ! आप धन्य हैं, जिसने इतनी कम उम्र में ही, इस तरह विदेशों में घूम कर इतनी चतुरता सीख ली।

तानरङ्ग—यदि आप जैसे लोग मेरी सराहना करते हैं तो मैं सचमुच धन्य हूँ।

अफ़ज़ल खाँ—(क्षणभर बाद) अच्छा, आप मूर्च्छना-प्रधान गाते हैं या तानप्रधान ?

तानरङ्ग—मूर्च्छना-प्रधान भी और तान-प्रधान भी।

अप०—(क्षणानन्तरम्) अस्तु, आलप्यतां कश्चन रागः।

तान०—(किञ्चिद् विचार्य) आज्ञा चेदकां राग-माला-गीतिं गायामि, यत्र प्रत्याभोगं नवीन एव रागो भवेदेकेनैव च ध्रुवेण सङ्गच्छेत, तत्तद्राग-नामानि च तत्रैव प्राप्येरन्।

अप०—आः! किमेवम्? ईदृशं तु गानं न प्रायः श्रूयते, तद् गीयताम्।

आलप्यताम्=आलापः क्रियताम्। विशकलय्य रागोदीरणमालापः। रागः=रञ्जकस्वरसन्दर्भः।

"योऽसौ ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः।
रञ्जको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः॥"

रागमालाम्=तन्नाम्नीम्, गीतिम्। प्रत्यालापं विभिन्नीभवद्भी रागैर्मालारूपैः सहितत्वात्। तदाह-यत्रेति। प्रत्याभोगम्=प्रतिगेयखण्डम्, उच्चारणविषयाणां शब्दानां शरीरत्वमाश्रित्य तथोक्तम्।

ध्रुवेण=स्थिरपदेन। सकलपादान्ते वारं वारं समुच्चार्यमाणत्वेन ध्रुवत्वम्, अत एव तथा संज्ञा। सङ्गच्छेत=सम्मेल्येत, "समो गम्यृच्छिभ्याम्" इत्यात्मनेपदम्। स्वरान्=निषादप्रभृतीन्।

निषादर्षभगान्धारषड्जमध्यमधैवताः।
पञ्चमश्चेत्यमी सप्त तन्त्रीकण्ठोत्थिताः स्वराः॥ इत्यमरः।

अफ़जल ख़ाँ—(थोड़ी देर बाद) अच्छा, कोई राग अलापिये।

तानरङ्ग—(कुछ सोचकर) अगर हुजूर का हुक्म हो तो एक 'राग-माला' गीत सुनाऊँ, जिसमें गीत के प्रत्येक गेयखण्ड में एक नया ही राग होगा और वे सब एक ही ध्रुव से मिलेंगे, तथा उसी में उन सभी रागों के नाम भी आ जायँगे।

अफ़जल ख़ाँ—अच्छा! क्या ऐसा है? ऐसा गाना तो अक्सर नहीं सुनाई पड़ता, अच्छा गाइये।

ततस्तानपूरिकायाः स्वरान् संमेल्य पातित-वाम-जानुः तान-पूरिका-तुम्बं क्रोडे निधाय दक्षपादस्योत्थितजानुनि च दक्ष-हस्त-कूर्पर-स्थापन-पुरःसरं तेनैव हस्तेन तर्जन्यङ्गुल्या तानपूरिकां रण-यन् स्वकण्ठेनापि त्रीन् ग्रामान् सप्त स्वरांश्च समधात्। तन्मात्र-श्रवणेनैव मुग्धेष्विवाखिलेषु इमां राग-माला-गीतिमगायत्—

सखि हे नन्द-तनय आगच्छति। सखि० ॥
मन्दं मन्दं मुरली-रणनैः समधिक-सुखं प्रयच्छति ॥

पातितं वामजानु येन सः। गायकानामवस्थानरीतिः। दक्षहस्तस्य= वामेतरकरस्य यः कूर्परः=कफोणिः, "स्यात्कफोणिस्तु कूर्परं" इत्यमरः, भुजमध्यग्रन्थिरिति यावत्, तत्स्थापनपुरस्सरम्। त्रीन् ग्रामान्=षड्जम-ध्यमगान्धारान्। तथा चोक्तम्—

"यथा कुटुम्बिनः सर्वेऽप्येकीभूता भवन्ति हि।
तथा स्वराणां सन्दोहो ग्राम इत्यभिधीयते ॥
षड्जग्रामो भवेदादौ मध्यमग्राम एव च।
गान्धारग्राम इत्येतद् ग्रामत्रयमुदाहृतम् ॥"

समधात्=समयोजत्। सखि !=आलि ! मुरलीरणनैः= वंशीस्वनैः। समधिकम्=ब्रह्मानन्दलक्षणम्। कीदृशोऽसौ नन्दसुतस्त-

---

उसके बाद तानपूरे के स्वरों को मिला कर, बायाँ घुटना टेक कर, तानपूरे की तुम्बी को गोद में रखकर, दाहिने पैर के उठे घुटने पर दाहिने हाथ की कुहनी रखकर, उसी हाथ की तर्जनी उँगली से तानपूरे को बजाते हुए तानरंग ने अपने कण्ठ से भी तीन ग्रामों (षड्ज, मध्यम और गान्धार) और निषादादि सात स्वरों को अलापा। इतना सुनकर ही सबके मुग्ध हो जाने पर इस 'रागमाला' गीत को गाया—

हे सखि! नन्दनन्दन श्रीकृष्ण आ रहे हैं। मुरली की मन्द-मन्द

भैरव-रूपः पापिजनानां सतां सुख-करो देवः।
कलित-ललित-मालती-मालिकः सुरवर-वाञ्छित-सेवः॥

सारङ्गैः सारङ्ग-सुन्दरो दृग्भिर्निपीयमानः।
चपला-चपल-चमत्कृति-वसनो विहित-मनोहर-गानः॥

श्रीवत्सेन लाञ्छितो हृदये श्रीलः श्रीदः श्रीशः।
सर्वश्रीभिर्युतः श्रीपतिः श्री-मोहनो गवीशः॥

त्राऽऽह-पापिजनानाम्=अघिनराणाम्। भैरवरूपः=भयङ्करः। तमःप्रकृतीनां राक्षसायमानानामपजलखानप्रभृतीनामपि पापित्वात्तेषामपि भैरव एवेति ध्वनिः। सताम्=सत्त्ववतां सज्जनानाम्, शिवादीनाम्। कलिता ललिता मालतीमालिका येन सः। सुरवरैः=इन्द्रादिभिः, वांछिता सेवा यस्य सः। सारङ्ग इव सुन्दरः। "सारङ्गो मृगपक्षिणोः"। सारङ्गैः, दृग्भिः=नयनैः निपीयमानः=सलालसं वीक्ष्यमाणः, चपलेव=विद्युदिव, चपला चमत्कृतिर्यस्य तादृशम् चञ्चलचाकचक्यं, वसनं यस्य सः। विहितं मनोहरम्=श्रोतृचित्ताकर्षकम्, गानम्=गीतिर्येन सः। श्रीवत्सेन=भृगुपदेन। लाञ्छितः=चिह्नितः। श्रीलः=श्रीमान्, "श्रीलः श्रीमान् स्निग्धस्तु वत्सल" इत्यमरः। श्रियं=धनं ददातीति श्रीदः। श्रियाः=लक्ष्म्याः, ईशः। सर्वश्रीभिः=सर्वाभिः शोभाभिः। गवाम्=वाणीनाम्, ईशः=

ध्वनि से वे अति आनन्द प्रदान कर रहे हैं। ये भगवान श्रीकृष्ण पापियों के लिए भयङ्कर और सज्जनों को सुख देने वाले हैं, उन्होंने सुन्दर मालती पुष्प की माला पहन रखी है। देवता लोग भी उनकी सेवा करने को लालायित रहते हैं। कामदेव के समान सुन्दर श्रीकृष्ण को हरिण टकटकी लगाकर देख रहे हैं। उनके वस्त्र बिजली के समान चञ्चल चमचमाहट वाले हैं और वे मनोहर गाना गा रहे हैं। उनका हृदय श्रीवत्स नाम के चिह्न से सुशोभित है, वे श्रीमान्, सम्पत्ति के देनेवाले, लक्ष्मी के स्वामी, सारी शोभाओं से युक्त, लक्ष्मी के पति, श्री को मोहित करनेवाले और

गौरी–पतिना सदा भावितो बर्हिण–बर्ह–किरीटः।
कनककशिपु–कदनो बलि–मथनो विहत–दशानन–कीटः॥
अथ एतावदेव श्रुत्वा अतितरां प्रसन्नेषु पारिषदेषु, ससाधुवादं

प्रादुर्भावकः, वेदाविष्कारकर्तेति यावत्। गवां=इन्द्रियाणाम्, ईशः, इन्द्रियजिदिति वा। गवाम्=वृन्दावनपशूनां, स्वामी वा। गौर्याः=हिमतनयायाः, पत्या=भगवता शिवेन। भावितः=ध्यातः। बर्हिण-बर्हकिरीटः=मयूरपिच्छमुकुटः। कनककशिपुकदनः=हिरण्यकशिपु-संहारकः, वराहः। बलिमथनः= बलिध्वंसी, वामनः। विहतः=नाशितः, दशानन एव कीटः=क्षुद्रजन्तुः, येन सः, श्रीरामः। अत्र भैरव-ललित-सारङ्ग-श्री-गौरी-नामानि रागाणाम्। तत्र भैरवः प्रथमः प्रातःकालिकश्च। अत्र सप्त स्वरा अपेक्ष्यन्त इत्ययं सम्पूर्ण इत्युच्यते। ऋषभ-मध्यम-धैवता निम्नका लगन्ति, गान्धार- निषादौ चोच्चकौ। गांधार-मध्यमापञ्चमा अत्र प्रधानानि। ललिते ऋषभधैवतौ निम्नकौ गान्धारनिषादौ चोच्चकौ। अत्र पञ्चमो नापेक्ष्यत इति वैशिष्टयम्। सारङ्गे मध्यमनिषादौ निम्नकौ ऋषभधैवतौ चोच्चकौ। गान्धारोऽत्र नितरां वर्जितः, धैवतोऽपि केवलमवरोहेऽपेक्षितः। श्रीरागोऽपि सम्पूर्णः। ऋषभधैवतौ निम्नकौ,गान्धा-रनिषादावुच्चकौ, मध्यमश्चोभयथा लगति। निम्नमध्यमयोजनं चातुर्यकृत्यम्। यद्यप्यत्राऽऽरोहे गान्धारधैवतौ वर्जितौ, तथापि विज्ञाः संलगयन्त्येव कचित्। गौरी सम्पूर्णा रागिणी, ऋषभधैवतौ निम्नकौ गान्धारमध्यमनिषादाश्चोच्चकाः। आरोहेऽत्र नियमेन चर्षभं त्यजन्ति, कदाचिच्च पञ्चमं धैवतञ्चेत्यादिकं बहुतर-मूहनीयम्। संगीतशास्त्रविदां मोदाय तु कियन्मात्रमत्र संगृहीतम्।

वेदवाणी के आविष्कारक हैं। श्री शङ्कर जी उनका सदा ध्यान किया करते हैं, वे मोर मुकुट धारण करने वाले, हिरण्यकशिपु का नाश करने वाले, बलि का विध्वंस करने वाले और रावण रूपी कीड़े को मारने वाले हैं।

इतना ही सुनकर सब सभासदों के अत्यधिक प्रसन्न हो जाने और

भैरव-रूपः पापिजनानां सतां सुख-करो देवः ।
कलित-ललित-मालती-मालिकः सुरवर-वाञ्छित-सेवः ॥

सारङ्गैः सारङ्ग-सुन्दरो दृग्भिर्निपीयमानः ।
चपला-चपल-चमत्कृति-वसनो विहित-मनोहर-गानः ॥

श्रीवत्सेन लाञ्छितो हृदये श्रीलः श्रीदः श्रीशः ।
सर्वश्रीभिर्युतः श्रीपतिः श्री-मोहनो गवीशः ॥

अऽऽहृ-पापिजनानाम्=अघिनराणा. । भैरवरूपः=भयङ्करः । तमः-प्रकृतीनां राक्षसायमानानामपजलखानप्रभृतीनामपि पापित्वात्तेषामपि भैरव एवेति ध्वनिः । सताम्=सत्त्ववतां सज्जनानाम्, शिवादीनाम् । कलिता ललिता मालतीमालिका येन सः । सुरवरैः=इन्द्रादिभिः, वांछिता सेवा यस्य सः । सारङ्ग इव सुन्दरः । "सारङ्गो मृगपक्षिणोः" । सारङ्गैः, दृग्भिः=नयनैः निपीयमानः=सलालसं वीक्ष्यमाणः, चपलेव=विद्युदिव, चपला चमत्कृतिर्यस्य तादृशम् चञ्चलचाकचक्यं, वसनं यस्य सः । विहितं मनोहरम्=श्रोतृचित्ताकर्षकम्, गानम्=गीतिर्येन सः । श्रीवत्सेन=भृगुपदेन । लाञ्छितः=चिह्नितः । श्रीलः=श्रीमान्, "श्रीलः श्रीमान् स्निग्धस्तु वत्सल" इत्यमरः । श्रियं=धनं ददातीति श्रीदः । श्रियाः=लक्ष्म्याः, ईशः । सर्वश्रीभिः=सर्वाभिः शोभाभिः । गवाम्=वाणीनाम्, ईशः=

ध्वनि से वे अति आनन्द प्रदान कर रहे हैं । ये भगवान श्रीकृष्ण पापियों के लिए भयङ्कर और सज्जनों को सुख देने वाले हैं, उन्होंने सुन्दर मालती पुष्प की माला पहन रखी है । देवता लोग भी उनकी सेवा करने को लालायित रहते हैं । कामदेव के समान सुन्दर श्रीकृष्ण को हरिण टकटकी लगाकर देख रहे हैं । उनके वस्त्र बिजली के समान चञ्चल चमचमाहट वाले हैं और वे मनोहर गाना गा रहे हैं । उनका हृदय श्रीवत्स नाम के चिह्न से सुशोभित है, वे श्रीमान्, सम्पत्ति के देनेवाले, लक्ष्मी के स्वामी, सारी शोभाओं से युक्त, लक्ष्मी के पति, श्री को मोहित करनेवाले और

गौरी–पतिना सदा भावितो बर्हिण–बर्ह–किरीटः ।
कनककशिपु–कदनो बलि–मथनो विहत–दशानन–कीटः ॥

अथ एतावदेव श्रुत्वा अतितरां प्रसन्नेषु पारिषदेषु, ससाधुवादं

प्रादुर्भावकः, वेदाविष्कारकर्तेति यावत्। गवां=इन्द्रियाणाम्, ईशः, इन्द्रियजिदिति वा। गवाम्=वृन्दावनपशूनां, स्वामी वा। गौर्याः=हिमतनयायाः, पत्या=भगवता शिवेन। भावितः=ध्यातः। बर्हिण-बर्हकिरीटः=मयूरपिच्छमुकुटः। कनककशिपुकदनः=हिरण्यकशिपु-संहारकः, वराहः। बलिमथनः= बलिध्वंसी, वामनः। विहतः=नाशितः, दशानन एव कीटः=क्षुद्रजन्तुः, येन सः, श्रीरामः। अत्र भैरव-ललित-सारङ्ग-श्री-गौरी-नामानि रागाणाम्। तत्र भैरवः प्रथमः प्रातःकालिकश्च। अत्र सप्त स्वरा अपेक्ष्यन्त इत्ययं सम्पूर्ण इत्युच्यते। ऋषभ-मध्यम-धैवता निम्नका लगन्ति, गान्धार- निषादौ चोच्चकौ। गांधार-मध्यमापञ्चमा अत्र प्रधानानि। ललिते ऋषभधैवतौ निम्नकौ गान्धारनिषादौ चोच्चकौ। अत्र पञ्चमो नापेक्ष्यत इति वैशिष्ट्यम्। सारङ्गे मध्यमनिषादौ निम्नकौ ऋषभधैवतौ चोच्चकौ। गान्धारोऽत्र नितरां वर्जितः, धैवतोऽपि केवलमवरोहेऽपेक्षितः। श्रीरागोऽपि सम्पूर्णः। ऋषभधैवतौ निम्नकौ,गान्धा-रनिषादावुच्चकौ, मध्यमश्चोभयथा लगति। निम्नमध्यमयोजनं चातुर्यकृत्यम्। यद्यप्यत्राऽऽरोहे गान्धारधैवतौ वर्जितौ, तथापि विज्ञाः संलगयन्त्येव क्वचित्। गौरी सम्पूर्णा रागिणी, ऋषभधैवतौ निम्नकौ गान्धारमध्यमनिषादाश्चोच्चकाः। आरोहेऽत्र नियमेन चर्षभं त्यजन्ति, कदाचिच्च पञ्चमं धैवतञ्चेत्यादिकं बहुतर-मूहनीयम्। संगीतशास्त्रविदां मोदाय तु कियन्मात्रमत्र संगृहीतम्।

वेदवाणी के आविष्कारक हैं। श्री शङ्कर जी उनका सदा ध्यान किया करते हैं, वे मोर मुकुट धारण करने वाले, हिरण्यकशिपु का नाश करने वाले, बलि का विध्वंस करने वाले और रावण रूपी कीड़े को मारने वाले हैं।

इतना ही सुनकर सब सभासदों के अत्यधिक प्रसन्न हो जाने और

वितीर्णकङ्कणे च अपजलखाने, तानरङ्गोऽपि सप्रसादं तानपूरिकां भूमौ संस्थाप्य अपजलखानस्य गुणग्राहितां प्रशशंस।

अथ अपजलखानः क्रमशो मैरेय-मद-परवशतां वहन् उवाच—यत् कथ्यतामस्मिन् प्रान्ते भवादृशानां गुण-ग्राहकाः के सन्ति? के वा कवितायाः संगीतस्य च मर्मावगच्छन्ति?

ततस्तानरङ्गोऽचकथत्—को नामापरः शिववीरात्? स एव राजनीतौ निष्णातः, स एव सैन्धवाऽऽरोह-विद्या-सिन्धुः, स एव मल्ल-विद्या-मर्मज्ञः, स एव बाण-चन्द्रहास-चालने चतुरः, स एव बाण-विद्या-वारिधिः, स एव पण्डित-मण्डल-मण्डनः, स एव धैर्य-धारि-धौरेयः, स एव वीर-वार-वरः, स एव पुरुष-पौरुष-

---

पारिषदेषु, परिषदि=सभायां साधवः पारिषदास्तेषु। "परिषदो ण्य" इत्यत्र योगविभागाद् णोऽपि। गुणग्राहिताम्=गुणज्ञताम्।

मैरेयम्=मद्यम्, तस्य यो मदः, तत्परवशताम्=तदधीनताम्। शिववीरादित्यत्रापरशब्दयोगे "अन्यारादितरर्ते दिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्ते" इति पञ्चमी। सैन्धवारोहविद्यायाः=अश्वारोहणकलायाः, सिन्धुः=सागर इति रूपणम्। वीरवारवरः, वीराणां वारः=समूहः, तत्र वरः=

अफ़जल खाँ के शाबाशी तथा प्रशंसापूर्वक सोने का कड़ा पुरस्कार देने पर, तानरङ्ग ने भी प्रसन्न होकर, तानपूरे को जमीन पर रख कर अफ़जल खाँ की गुणग्राहकता की प्रशंसा की।

उसके बाद क्रमशः शराब के नशे में चूर होता हुआ अफ़जल खाँ बोला—'कहिये, इस प्रान्त में आप जैसे लोगों के गुणग्राहक कौन हैं? अथवा कविता और संगीत का मर्म जानने वाले कौन हैं?'

तानरङ्ग ने कहा—'शिवाजी को छोड़ ऐसा और कौन है? वे ही राजनीति में कुशल हैं, वे ही घुड़सवारी की विद्या के समुद्र हैं, वे ही मल्लविद्या के मर्मज्ञ हैं, वे ही बाण-विद्या के सागर हैं, वे ही पुरुषों के

परीक्षकः, स एव दीन-दुःख-दाव-दहनः, स एव स्वधर्मरक्षण-सक्षणः, स एव विलक्षण-विचक्षणः, स एव च मादृश-गुणि-गण-गुण-ग्रहणाऽऽग्रही वर्तते।

अथ अपजलखाने—"तत् किं शिव एष एवंगुण-गण-विशिष्टोऽस्ति? एवं वा वीर-वरोऽस्ति!" इति सचकितं सभयं सतर्कं सरोमोद्गमं च कथयति, किञ्चिद् विचार्येव नीति-कौशल-पुरःसरं गौरःपुनरवादीत्-

भगवन्! सामान्य-राजभृत्यस्य पुत्रः शिववीरो यदि नाम नाभविष्यत्स्वयमीदृश ऊर्जस्वलः, तत्कथं स्वर्णदेव-सदृशं सहचरं प्राप्स्यत्? तद्द्वारा समस्तं कल्याण-प्रदेशं कल्याण-दुर्गं च स्वहस्त-गतमकरिष्यत्? कथं तोरण-दुर्ग-भोग-भाजनतामकलयिष्यत्? कथं तोरण-दुर्गाद् दक्षिण-पूर्वस्यां पर्वतस्य शिखरे महेन्द्र-

श्रेष्ठः। दीनानाम्=अनाथानाम्, दुःखदावस्य=क्लेशविपिनस्य, दहनः=अग्नितुल्यः। स्वधर्मरक्षणे सक्षणः=सोत्साहः। हर्षवाची क्षणशब्दः। विलक्षणविचक्षणः=विशिष्टविद्वान्। गुणिनां गणस्य गुणग्रहणे, आग्रही। अनुप्रास एषु।

पौरुष के सच्चे पारखी हैं, वे ही दीनों के दुःख रूप वन के लिए दावाग्नि के समान हैं, वे ही अपने धर्म की रक्षा में उत्साह रखते हैं, वे ही अद्भुत विद्वान् हैं और वे ही हम जैसे गुणियों के गुणों के कदरदान हैं।'

इसके बाद अफ़जल खाँ के 'तो क्या यह शिवाजी इस प्रकार के गुणों से युक्त और इतना वीर है' यह आश्चर्य, भय, अनुमान और रोमाञ्च के साथ कहने पर मानों कुछ सोचकर, नीति कौशल-पूर्वक गौरसिंह ने पुनः कहा—

हुजूर राजा के एक साधारण कर्मचारी के लड़के शिवाजी यदि स्वयं इस प्रकार के तेजस्वी न होते तो स्वर्णदेव के समान साथी कैसे पाते और उसके द्वारा सारे कल्याण प्रदेश और कल्याण दुर्ग को हस्तगत कैसे कर लेते! तोरणदुर्ग को अपना भोग्य कैसे बनाते, और तोरण दुर्ग से दक्षिण-

मन्दिर-खण्डमिव धर्षितारि-वर्गं डमरु-हुडुक्कार-तोषित-भर्गं राय-
गढनामकं महादुर्गं व्यरचयिष्यत् ? कथं वा तपनीय-
भित्तिका-जटित-महारत्न-किरणावली-वितन्यमान-महावितान-
वितति-विरोचित-प्रताप-तापित-परिपन्थि-निवहं चन्द्रचुम्बन-चतुर-
चारु-शिखर-निकरं भुशुण्डिका-किणाङ्कित-प्रचण्ड-भुजदण्ड-रक्षक-

ऊर्जस्वलः=बलशाली। दक्षिणपूर्वस्याम्=दक्षिणस्याः पूर्वस्याश्च
दिशोर्यदन्तरालं सा दक्षिणपूर्वा, तस्याम्। महेन्द्रमन्दिरस्य=देवेन्द्रस-
दनस्य, खण्डमिव=अंशमिव। धर्षितः=भयं प्रापितः, अरिवर्गो ये-
तम्। उपमयाऽरिवर्गाजेयत्वं व्यनक्ति। डमरुहुडुक्कारेण, तोषितः
भर्गः=शिवो यस्मिंस्तम्। कथं वा प्रतापदुर्गं निरमापयिष्यदिति सम्ब-
प्रतापदुर्गं विशिनष्टि तपनीयस्य=हिरण्यस्य, भित्तिकासु=कुड्ये-
जटितानाम्=खचितानाम्, महारत्नानाम्=हीरकादीनाम्, किरणा-
वलीभिः=मयूखसमूहैः, वितन्यमानस्य=विस्तार्यमाणस्य, महवितानस्य
महोल्लोचस्य, वितत्या=विस्तारेण, विरोचितेन=शोभितेन, प्रतापेन=
तेजसा, तापितः=ज्वलितः, परिपन्थिनिवहः=शत्रुसमूहो येन त-
शिवराजविभूतिवर्णनादुदात्तालङ्कारः। चन्द्रचुम्बने=इन्दुस्पर्शे, चतु-
समर्थः, चारुः=शोभनः, शिखरनिकरः=ऊर्ध्वभागसमूहो यस्य त-
उच्छ्रायवर्णनपरमिदम्; चन्द्रस्पर्शासम्बन्धेऽपि सम्बन्धाभिधानादतिशयोक्तिः
अनुप्रासश्च स्पष्ट एव। भुशुण्डिकानां किणैः=आघातैः, अङ्किताः=
चिह्निताः, भुजा दण्डा इव येषां तेषाम्, रक्षकाणाम्=रक्षानिरतानां

पूर्व की ओर पहाड़ की चोटी पर, इन्द्र के महल के एक भाग के सम-
दुश्मनों को डराने वाले, डमरू की हुडुक् हुडुक् ध्वनि से शङ्कर को प्र-
करने वाले रायगढ नामक महादुर्ग का निर्माण कैसे कर लेते! अ-
सोने की दीवारों पर जड़े हुए हीरे आदि महारत्नों की किरणावलि-
ताने गए विशाल मण्डप से सुशोभित तेज से दुश्मनों को जलाने वा-
अनेक चन्द्रचुम्बी शिखरों वाले, बन्दूक लिये रहने से पड़ गये घट्टों से

कुल-विधीयमान-परस्सहस्र-परिक्रमं धमद्धमद्दोधूयमानानेक-ध्वज-पटल-निर्मथित-महाकाशं प्रताप-दुर्गं निरमापयिष्यत्? कथं वा 'आगत एष शिववीरः'-इति भ्रमेणापि सम्भाव्य अस्य विरोधिषु केचन मूर्च्छिता निपतन्ति, अन्ये विस्मृत-शस्त्रास्त्राः पलायन्ते, इतरे महात्रासाऽऽकुञ्चितोदरा विशिथिल-वाससो नग्ना भवन्ति, अपरे च शुष्कमुखा दशनेषु तृणं सन्धाय साम्रेडं प्रणिपात-परम्परा रचयन्तो जीवनं याचन्ते।

ततस्तस्य महाप्रतापमवगत्य किञ्चिद्भीते इव तच्छत्रूणां चावहेलामाकलय्य किञ्चिदरुण-नयने इव, दक्षिण-हस्ताङ्गुष्ठ-तर्जनीभ्यां श्मश्र्वग्रं परिमृजति यवन-सेनापतौ; तानरङ्गः पुनर्न्यवेदयत्—

कुलेन=समूहेन, विधीयमानाः परस्सहस्राः परिक्रमाः=मण्डलानि यस्य तम्। धमद्धमदिति शब्देन दोधूयमानानाम्=भृशं सञ्चलताम्, अनेकेषां ध्वजानां पटलेन निर्मथितः=विलोडितः, महाकाशो येन तम्। महात्रासेन=महाभयेन, आकुञ्चितानि=कृशिमानमायान्ति, उदराणि येषां ते। अत एव विशेषतः शिथिलानि वासांसि येषां ते। याचन्ते=प्रार्थयन्ते।

प्रबल हाथों वाले रक्षकों से गश्त लगा लगा कर रक्षा किये जाने वाले, फहराती हुई ध्वजाओं से महाकाश को मथने वाले प्रतापगढ़ को ही कैसे बनवा लेते? अथवा 'ये वीर शिवाजी आ गये' यह भ्रमवश समझकर भी, इनके विरोधियों में कुछ मूर्च्छित होकर क्यों गिर पड़ते हैं? कुछ शस्त्रास्त्र भूल कर भाग क्यों खड़े होते हैं? कुछ डर के मारे पेट के कृश हो जाने अतएव वस्त्रों के ढीले हो जाने से नंगे क्यों हो जाते हैं? और दूसरे सूखे मुँह वाले दाँतों में तृण दबा कर, बार बार प्रणाम करते हुए गिड़गिड़ा कर जीवन भिक्षा क्यों माँगने लगते हैं?

तब शिवा जी के महाप्रताप को जानकर, यवन सेनापति के कुछ डर से जाने पर और शिवा जी के दुश्मनों की अवहेलना सुनकर कुछ क्रुद्ध से हो जाने पर, तथा दाहिने हाथ के अंगूठे और तर्जनी से मूँछ के अग्र भाग पर हाथ फेरने पर, तानरङ्ग ने पुनः निवेदन किया—

परन्त्वद्य सिंहेन सह शिवस्य साम्मुख्यमस्ति, तन्मन्ये इयमस्त-मनवेला तत्प्रतापसूर्यस्य।

तत् कर्णे कृत्वा सन्तुष्ट इव सकन्धराकम्पं सेनापतिरुवाच-अथात्र संग्रामे कस्य विजयः सम्भाव्यते ?

स उवाच—श्रीमन् ! यदि शिवस्य साहाय्यं साक्षाच्छिव एव न कुर्यात्; तद् विजयपुरस्यैव विजयः।

अथ सहासं सोऽब्रवीत्—को नाम खपुष्पायितः शशशृङ्गायितः कमठी-स्तन्यायितः सरीसृप-श्रवणायितः भेक-रसनायितः वन्ध्या-पुत्रायितश्च शिवोऽस्ति ? य एनं रक्षिष्यति, दृश्यतां श्व एवैषोऽस्माभिः पाशैर्बद्ध्वा चपेटैस्ताड्यमानो विजयपुरं नीयते।

अस्तमनवेला, तत्प्रतापरूपसूर्य्यस्य समाप्तिवेलेत्यर्थः। सूर्यास्तोदयौ तु न भवतः, केवलं तत्खण्डवासिभिस्तदनवलोकनेन तादृशशब्दव्यवहार एवाऽऽस्थीयते। तदुक्तम् "नैवास्तमनमर्कस्य नोदयः सर्वदा सत" इति।

खपुष्पमिवाऽऽचरितः खपुष्पायितः। खपुष्पम्, शशशृङ्गम्, कमठी-(कच्छपी) दुग्धम्, सरीसृपश्रवणम्, भेकरसना, वन्ध्यापुत्रश्चेत्यसम्भ-वालीढवस्तूनि। यथैतानि न सन्त्येवं भूतनाथः सदाशिवोऽपि नास्तीत्यर्थः।

'लेकिन आज सिंह के साथ शिवाजी का सामना हुआ है, इसलिये मेरी समझ से यह उनके प्रताप-सूर्य के अस्त होने का समय आ गया है।'

यह सुन कर सन्तुष्ट सा यवन सेनापति बोला—'अच्छा, इस युद्ध में किसकी जीत की सम्भावना है ?'

तानरङ्ग ने कहा—'हुजूर ! अगर शिवाजी की सहायता स्वयं शङ्कर जी ही न करें तो बीजापुर की ही जीत होगी।'

तब हँसते हुए अफजल खाँ ने कहा—'भला गगनकुसुम सा खरगोश के सींग सा, कछुई के दूध सा, साँपके कान सा, मेंढक की जीभ सा और बाँझ के लड़के सा शङ्कर भी कोई चीज़ है जो उसकी रक्षा करेगा। देखना कल ही रस्सियों से बाँध कर हम लोग उसे थप्पड़ मारते हुए बीजापुर ले जायँगे।'

—इति सकष्टमाकर्ण्य, "स्यादेवं भगवन्!" इति कथयति तानरङ्गे, अभिमान-परवशः स स्वसहचरान् सम्बोध्य पुनरादिशत्—भो भो योद्धारः! सूर्योदयात् प्रागेव भवन्तः पञ्चापि सहस्राणि सादिनां दशापि च सहस्राणि पत्तीनां सज्जीकृत्य युद्धाय तिष्ठत। गोपीनाथ-पण्डित-द्वाराऽऽहूतोऽस्ति मया शिव-वराकः, तद् यदि विश्वस्य स समागच्छेत्, ततस्तु बद्ध्वा जीवन्तं नेष्यामः; अन्यथा तु सदुर्गमेनं धूलीकरिष्यामः। यद्यप्येवं स्पष्टमुदीरणं राजनीति-विरुद्धम्, तथाऽपि मद्दावेशस्तु न प्रतीक्षते विवेकम्।

तदवधार्य समस्तक-कूर्चान्दोलनम्—"यदाज्ञाप्यते यदाज्ञाप्यते" इति वाचां धारासंपातैरिव स्नापयत्सु पारिषदेषु, "गोपनीयोऽयं

सादिनाम्=अश्वारोहिणाम्। "अश्वारोहास्तु सादिन" इत्यमरः। पत्तीनाम्=पदातीनाम्। "पदातिपत्तिपतगपादातिकपदाजय" इत्यमरः। विश्वस्य=विश्वासं कृत्वा। समस्तककूर्चान्दोलनम्=सशिरोदाढिकासञ्चालनम्। क्रियाविशेषणम्। अदुर्मनसो दुर्मनसो भवन्तीति दुर्मनायमानास्तेषु। "भृशादिभ्यो भुव्यच्वेर्लोपश्च हल" इति सूत्रेणाभूततद्भावविषये

तानरङ्ग के कष्टपूर्वक यह बात सुनकर हुजूर! हो सकता है ऐसा ही हो कहने पर, अभिमान के कारण आत्म-संयम खोकर अफजल खाँ ने अपने साथियों को सम्बोधित कर आज्ञा दी। 'ऐ योद्धाओं! आप लोग कल सूर्योदय से पहले ही पाँचों हजार घुड़सवारों और दसों हजार पैदल सैनिकों को सुसज्जित कर युद्ध करने के लिये तैयार रहना। गोपीनाथ पण्डित द्वारा मैंने बेचारे शिवाजी को बुलाया है तो अगर वह विश्वास कर के आ जाय तब तो बाँध कर जीवित ही ले चलेंगे अन्यथा दुर्ग-सहित उसे धूल में मिला देंगे। यद्यपि इस प्रकार खुल्लम-खुल्ला कहना राजनीति के विरुद्ध है, फिर भी मेरा आवेश (जोश) विवेक की परवाह नहीं करता।'

यह सुनकर, सभासदों की सिर और दाढ़ी हिला हिला कर 'जो आज्ञा, जो आज्ञा' यों मानों वाणियों की मूसलाधार वृष्टि से स्नान-सा कराने पर,

वृत्तान्तः कथं स्पष्टं कथ्यते ?" इति दुर्मनायमानेष्विव च अकस्मादेव प्रविश्य सूदेनोक्तम् "श्रीमन् ! व्यत्येति भोजनसमयः"—तत् श्रुत्वा "आ ! एवं किलैतत्" इति सोत्प्रासं सविस्मयं सकूर्चोद्धूननं सोपबर्हताडनमुच्चार्य सपद्युत्थाय, "पुनरागम्यताम्" इति तानरङ्गं विसृज्य सेनापतिरन्तः प्रविवेश । तानरङ्गश्च यथागतं निववृते ।

इतस्तु प्रतापदुर्गे विहिताहार-व्यापारे रजत-पर्य्यङ्किकामेकामधिष्ठिते किञ्चित् तन्द्रा-परवशे इव गोपीनाथे, शिववीरः शनैरुपसृत्य प्रणम्य, उपाविशदवोचच्च—अहो ! भाग्यमस्माकं यदालयं युष्मादृशा भूदेवाः स्वचरणरजोभिः पावयन्ति—इति ।

क्यङि शानच् , भावसप्तमी। सूदेन=पाककर्त्रा । सोत्प्रासम्=ईषद्धास्येन सह, क्रियाविशेषणम् । "सोत्प्रासः समनाक्स्मितम् " इत्यमरः। सकूर्चोद्धूननम्=श्मश्रूल्लासनेन सह । सोपबर्हताडनम्=उपधान-प्रहारेण साकम् । गर्वहर्षाभ्यामिदं ताण्डवं सर्वम् ।

रजतेन=दुर्वर्णेन, खचिताम्, पर्यङ्किकाम्=लघुपर्यङ्कम् । मञ्चिकामिति यावत् । तन्द्रा-परवशे=निद्रापूर्वालस्याधीने ।

तथा 'यह गोपनीय बात खुले आम कैसे कही जा रही है' यह सोच कर कुछ नाराज़ सा होने पर, एकाएक रसोइये ने प्रवेश करके कहा, 'हुजूर, खाने का वक्त बीत रहा है'। यह सुनकर थोड़ा मुस्कराकर, विस्मयपूर्वक, दाढ़ी हिला कर, मसनद पर हाथ पटक कर 'ओह ! क्या ऐसा है' यह कहकर, तानरंग को 'फिर आइयेगा' कहकर बिदा कर सेनापति ने अन्दर प्रवेश किया और तानरङ्ग जिस मार्ग से आया था उसी से वापस लौट गया।

इधर प्रतापदुर्ग में जब गोपीनाथ पण्डित भोजन कर के, एक चाँदी की पलंग पर लेटे ऊँघ रहे थे, शिवाजी धीरे से जाकर, उन्हें प्रणाम कर बैठ गये और बोले —'अहो ! हमारा सौभाग्य है कि आपके-से ब्राह्मण ने अपनी चरणरज से हमारे घर को पवित्र किया ।' फिर उन दोनो में इस प्रकार बातचीत हुई ।

अथ तयोरेवमभूवन्नालापाः।

गोपीनाथः—राजन्! कोऽत्र सन्देहः? सर्वथा भाग्यवानसि, परं साम्प्रतं नाहं पण्डितत्वेन कवित्वेन वा समायातोऽस्मि, किन्तु यवनराज-दूतत्वेन। तत् श्रूयतां यदहं निवेदयामि।

शिववीरः—शिव! शिव! खलु खलु खल्विदमुक्त्वा, येषां श्रीमतां चरणेनाङ्कितं विष्णोरपि वक्षःस्थलमैश्वर्य-मुद्रयेव मुद्रितं विभाति; न तेषां ब्राह्मण-कुल-कमल-दिवाकराणां यवन-कैङ्कर्य-कलङ्क-पङ्को युज्यते, यं शृण्वतोऽपि मम स्फुटत इव कर्णौ। तथाऽपि कुलीना निरभिमाना भवन्ति-इति आनीतश्चेत् कश्चित् सन्देशः; तदेष आज्ञाप्यतां श्रीमच्चरण-कमल-चञ्चरीकः।

गोपीनाथः—वीर! कलिरेष कालः, यवनाऽऽक्रान्तोऽयं भारत-

खल्विदमुक्त्वा, निषेधार्थकः खलुशब्दः। "अलंखल्वोः प्रतिषेधयोः प्राचां क्त्वा"। यवनानां कैङ्कर्यम्=किङ्करस्य भावः, दासता, तदेव कलङ्कपंकः। स्फुटत इव=दीर्यंते इव। कुलीनाः=सद्वंशजाः।

गोपीनाथ—इसमें क्या सन्देह? आप सचमुच भाग्यवान हैं, लेकिन इस समय मैं पण्डित या कवि के रूप में नहीं, वरन् यवनराज के दूत के रूप में आया हूँ, अतः मैं जो निवेदन करता हूँ उसे सुनिये।

शिवाजी—शिव! शिव! ऐसा मत कहिये, जिन आप लोगों के चरण से अङ्कित होने से विष्णु भगवान् का वक्षःस्थल भी ऐश्वर्य की मुद्रा से मुद्रित सा शोभित होता है उन ब्राह्मण-कुल-कमल-दिवाकरों को यवनों की चाकरी रूप कलङ्क कीचड़ शोभा नहीं देता, जिसे सुनकर भी मेरे कान फूट से रहे हैं। यह दूसरी बात है कि कुलीन अभिमान रहित होते हैं इसलिये आप कोई सन्देश लाये हों, यदि ऐसा हो तो अपने चरण-कमलों के भ्रमर इस जन को आज्ञा दीजिये।

गोपीनाथ—वीरवर, यह कलिकाल है, यह भारत-भूमि यवनों से

भूभागः, तन्नास्माकं तथा तानि तेजांसि, यथा वर्णयसि। साम्प्रतं तु विजयपुराधीश-वितीर्णां भृतिं भुञ्जे इति तदाज्ञामेव परिपालयामि। तत् श्रूयतां तदादेशः।

शिववीरः—आर्य! अवदधामि।

गोपीनाथः—कथयति विजयपुरेश्वरो यद्—"वीर! परित्यज नवामिमां चञ्चलतामस्माभिः सह युद्धस्य, त्वदपेक्षयाऽत्यन्तमधिकं बलिनो वयम्, प्रवृद्धोऽत्र कोषः, महती सेना, बहूनि दुर्गाणि, बहवश्च वीराः सन्ति। तच्छुभमात्मन इच्छसि चेत् त्यक्त्वा निखिलां चञ्चलताम्, शस्त्रं दूरतः परित्यज्य, करप्रदतामङ्गीकृत्य, समागच्छ मत्सभायाम्। मत्तः प्राप्त-पदश्चिरं जीविष्यसि, अन्यथा तु सदुर्दशं निहतः कथावशेषः संवर्त्स्यसि। तत् केवलं त्वयि दययैव सन्देशं

भृतिम्=जीविकाम्। अवदधामि=सावधानोऽस्मि।

आक्रान्त है, इसलिये हम लोगों में जैसा आप वर्णन कर रहे हैं वैसा तेज नहीं रहा, इस समय बीजापुर के सुल्तान द्वारा दी गई जीविका (वेतन) से अपना निर्वाह कर रहा हूँ, अतः उन्हीं की आज्ञा का पालन करता हूँ। अतः उनका आदेश सुनिये।

शिवाजी—आर्य! मैं सावधान हूँ।

गोपीनाथ—बीजापुर के सुल्तान कहते हैं कि—

'वीर! हमारे साथ लड़ाई ठानने की इस नई चपलता का परित्याग कर दो, हम तुम्हारी अपेक्षा बहुत अधिक बली हैं, हमारा कोष बहुत समृद्ध है, हमारी सेना बहुत बड़ी है, हमारे पास बहुत से किले हैं और बहुत से योद्धा हैं। अतः यदि अपना कल्याण चाहते हो तो सारी चपलता छोड़ कर, शस्त्र का सर्वथा परित्याग कर, मुझे कर देना स्वीकार करके, मेरी सभा में आ जाओ। मुझ से कोई बड़ा सा पद पाकर बहुत दिनों तक जीवित रहोगे। अन्यथा दुर्दशा करके मारे जाओगे और तुम्हारी सिर्फ कहानी ही शेष रह जाएगी। अतः सिर्फ तुम्हारे ऊपर दया कर के ही सन्देश भेज

प्रेषयामि, अङ्गीकुरु। मा स्म वृद्धायाः, प्रसविन्या रजतश्वेतां पक्ष्म-पङ्क्तिमश्रु-प्रवाह-दुर्दिने पातय"-इति।

शिववीरः-भगवन्! कथयेदेवं कश्चिद् यवनराजः, परं किं भवानपि मामनुमन्यते—यद् ये अस्मदिष्टदेवमूर्तीर्भङ्क्त्वा मन्दिराणि समुन्मूल्य, तीर्थस्थानानि पक्कणीकृत्य, पुराणानि पिष्ट्वा वेदपुस्तकानि विदार्य च, आर्यवंशीयान् वलाद् यवनीकुर्वन्ति; तेषामेव चरणयोरञ्जलिं बद्ध्वा लालाटिकतामङ्गीकुर्याम्? एवं चेद् धिङ् मां कुल-कलङ्कं क्लीबम्; यः प्राणभयेन सनातनधर्म-द्वेषिणां दासेरकतां वहेत्। यदि चाहमाहवे म्रियेय, वध्येय, ताड्येय वा

प्रसविन्याः=जनन्याः। रजतश्वेताम्=रूप्यधवलाम्। पक्ष्म-पङ्क्तिम्=नेत्रलोमश्रेणीम्। अश्रुप्रवाहेण=अस्रधारया, दुर्दिने=भरिते। मेघच्छन्नाहस्य वाचकमत्र लक्षणया प्रयुक्तम्। अस्माभिर्हतस्य तव विरहेण त्वन्माता शोकाकुला मा भूदिति भावः।

पक्कणीकृत्य=शबरसदनीकृत्य। "पक्कणः शबरालय" इत्यमरः। दासेरकताम्=भृत्यताम्। "भृत्ये दासेरदासेयदासगोप्यकचेटका" इत्यमरः। म्रियेय, वध्येय ताड्येय वा, क्रियादीपकम्। अत्र अहमिति कर्म।

रहा हूँ, उसे स्वीकार करो। बूढ़ी माँ की चाँदी के समान सफेद बरौनियों को आँसुओं की झड़ी में मत डुबाओं।'

शिवाजी—महाराज! कोई यवनराज ऐसा भले ही कहे, पर क्या आप भी मुझे यह अनुमति देते हैं कि जो हमारे इष्टदेव की मूर्तियों को तोड़कर, मन्दिरों को मटियामेट कर, तीर्थस्थानों को भीलों की बस्ती बनाकर, पुराणों को पीस कर, वेद की पुस्तकों को फाड़कर, आर्यवंशजों (हिन्दुओं) को को जबर्दस्ती मुसलमान बनाते हैं हम उन्हीं के चरणों में अञ्जलि बाँधकर, उनकी चाकरी मञ्जूर करे? यदि मैं ऐसा करूँ तो मुझ कुलकलङ्क कायर को धिक्कार है, जो अपने प्राणों के मोह से सनातन धर्म के दुश्मनों की चाकरी करे। यदि मैं युद्ध में मर जाऊँ, मार डाला जाऊँ या घायल किया

तदैव धन्योऽहम्, धन्यौ च मम पितरौ। कथ्यतां भवादृशां विदुषामत्र का सम्मतिः ?

गोपीनाथः-(विचार्य) राजन्! धर्मस्य तत्त्वं जानासि, तन्नाहं स्वसम्मतिं कामपि दिदर्शयिषामि। महती ते प्रतिज्ञा, महत्तवोद्देश्यमिति प्रसीदामितमाम्। नारायणस्तव साहाय्यं विदधातु।

शिववीरः—करुणानिधान! नारायणः स्वयं प्रकटीभूय न प्रायेण साहाय्यं विदधाति, किन्तु भवादृश-महाशय-द्वारैव। तत् प्रतिज्ञायतां काऽपि सहायता।

गोपीनाथः—राजन्! कथ्यतां किमहं कुर्याम्, परं यथा न मामधर्मः स्पृशेत्; तथैव विधास्यामि।

शिववीरः—शान्तं पापम्! कोऽत्राधर्मः? केवलं श्वोऽस्मिन्नुद्यान-प्रान्तस्थ-पट-कुटीरे यवन-सेनापतिरपजलखान आनेयः; यथा

दिदर्शयिषामि=दर्शयितुमिच्छामि। प्रसीदामितमाम्=अत्यन्तं प्रसीदामि।

जाऊँ तो मेरा अहोभाग्य है और मेरे माता-पिता धन्य हैं। कहिये आप के से विद्वानों की इस विषय में क्या सम्मति है ?

गोपीनाथ—(विचार कर) राजन्! आप स्वयं धर्म का तत्त्व जानते हैं, इसलिये मैं अपनी कोई भी राय नहीं देना चाहता। आपकी प्रतिज्ञा और आपका उद्देश्य बहुत महान है, इससे मुझे अत्यधिक प्रसन्नता है। भगवान तुम्हारी सहायता करें।

शिवाजी—कृपानिधान! भगवान प्रायः स्वयं प्रकट होकर नहीं, वरन् आप के समान महाशयों के द्वारा ही सहायता करते हैं। अतः आप कुछ सहायता करने की प्रतिज्ञा कीजिये।

गोपीनाथ—राजन्! कहिये, मैं क्या करूँ? लेकिन जिससे मुझे पाप न लगे वही करूँगा।

शिवाजी—शिव! शिव!! शिव!!! इसमें अधर्म या पाप की क्या बात है! बस, कल इसी उद्यान के किनारे लगे खेमे में यवनसेनापति

तेनैकाकिनाऽहमेकाकी मिलित्वा किमप्यालपामि।

गोपीनाथः—तत् सम्भवति।

ततः परं गोपीनाथेन सह शिववीरस्य बहुविधा आलापा अभूवन्; यैः शिववीरस्य उदारहृदयतां धार्मिकतां शूरताञ्चावगत्य गोपीनाथोऽतितरां पर्य्यतुष्यत्।

अथ स तमाशीर्भिरनुयोज्य यावत्प्रतिष्ठते, तावदुपातिष्ठत ससहचरस्तानरङ्गः। गोपीनाथस्तु तमनवलोकयन्निव तस्मिन्नेव निशीथे दुर्गादवातरत्। कपट-गायको गौरसिंहस्तु शिववीरेण सह बहुश आलप्य, सेनाऽभिनिवेश-विषये च सम्मन्त्र्य, तदाज्ञातः स्ववासस्थानं जगाम।

शिववीरोऽप्यन्य-सेनापतीन् यथोचितमादिश्य, स्वशयनागारं प्रविश्य होरात्रयं यावत्किञ्चन निद्रा-सुखमनुभूय, अल्पशेषायामेव रजन्यामुदतिष्ठत्।

निशीथे=अर्धरात्रे। सेनाभिनिवेशविषये=सेनासंस्थानसम्बन्धे, सम्मन्त्र्य=परामृश्य।

अफ़जल खाँ को ले आइये, जिससे मैं अकेले अफ़जल खाँ से अकेला मिल कर कुछ बातचीत कर सकूँ।

गोपीनाथ—यह हो सकता है।

उसके बाद गोपीनाथ के साथ शिवाजी की अनेक प्रकार की बातें हुई, जिनसे गोपीनाथ शिवाजी की उदारहृदयता, धार्मिकता और वीरता जानकर बहुत ही प्रसन्न हुआ।

इसके बाद शिवाजी को आशीर्वाद देकर गोपीनाथ ने प्रस्थान किया ही था कि अपने साथी बालक के साथ तानरङ्ग आ पहुँचा। गोपीनाथ उन्हें अन देखा सा कर उसी अर्धरात्रि में दुर्ग से नीचे उतर गए। गायक-वेषधारी गौरसिंह शिवाजी के साथ बहुत सी बात चीत कर, सेना की व्यूह-रचना के सम्बन्ध में सलाह कर, उनकी आज्ञा ले, अपने निवासस्थान को गये।

वीर शिवाजी भी, अन्य सेनापतियों को यथायोग्य आदेश देकर,

शिववीर-सेनास्तु यथासङ्केतं प्रथममेव इतस्ततो दुर्ग-प्राचीरान्तरालेषु गहन-लता-जालेषु उच्चावच-भूभाग-व्यवधानेषु सज्जाः पर्यवातिष्ठन्त। बहवोऽश्वारोहा यवन-पट-कुटीर-कदम्बकं परिक्रम्य ततः पश्चादागत्य, अवसरं प्रतिपालयन्ति स्म।

इतश्च सूर्यप्रभाभिररुणीक्रियमाणे भूभागे अरुण-श्मश्रवोऽपि सेनाः सज्जीकृतवन्तः।

बहवो-"वयमद्य शिवमवश्यमेव विजेष्यामहे; परं तथाऽपि न जानीमहे किमिति कम्पत इव हृदयम्, अहो! विलक्षणः प्रताप

"प्राचीरं=प्रान्ततो वृतिरि" त्यमरः। उदक् चावक् च उच्चावचम्, "मयूरव्यंसकादयश्च" इति समासः। होरात्रयम्=घण्टात्रिकम्। अहोरात्रशब्दस्याद्यन्तयोर्विलोपे 'होरा' इति दिनरात्रिवाचकम्, तदादायैव होराशास्त्रमित्युच्यते ज्यौतिषम्। सम्प्रति घटिकायां घण्टायाञ्च प्रयुज्यत इति वेदितव्यम्।

अरुणश्मश्रवः=यवनाः। विजेष्यामहे, "विपराभ्यां जेः" इत्यात्मनेपदम्। प्रवहति-पतति-मर्मरीभवतीति त्रयमपि शत्रन्तं सप्तम्येकवचनम्।

अपने शयनागार में प्रवेश कर, तीन घन्टे तक कुछ नींद का सुख लेकर, थोड़ी रात रहते ही जग गये।

वीर शिवाजी की सेना, संकेत के अनुसार पहले से ही, इधर उधर किले की चहारदीवारी के अन्दर, घनी झाड़ियों में और ऊँची नीची ऊबड़-खाबड़ जमीन के बीच में, शस्त्रास्त्र से सज्जित खड़ी थी। बहुत से घुड़सवार यवनों के खेमों का चक्कर लगाकर, लौट आकर, समय की प्रतीक्षा कर रहे थे।

इधर सूर्य के तेज से भूमण्डल के लाल हो जाने पर लाल दाढ़ी-मूछ वाले यवनों ने भी अपनी सेना सुसज्जित की।

बहुत से और लोग—"हम आज शिवाजी को अवश्य जीतेंगे" लेकिन फिर भी न जाने क्यों हृदय काँपता सा है। ओह, शिवाजी का

एतस्य, पवनेऽपि प्रवहति, पतत्रेऽपि पतति, पत्रेऽपि मर्मरीभवति, स एवाऽऽगत इत्यभिशंक्यतेऽस्माभिः। अहह !! विचित्रोऽयं वीरो यो दुर्ग–प्राचीरमुल्लंघ्य, प्रहरि–परीवारमविगणय्य, लोहार्गल-शृंखला-सहस्र-नद्धानि करि-कुम्भाघात-सहानि द्वाराणि प्रविश्य, विकोशचन्द्र-हासासिधेनुका-रिष्टि-तोमर-शक्ति-त्रिशूल-मुद्गर-भुशुण्डी - कराणां रक्षकाणां मण्डलमवहेल्य, प्रियाभिः सह पर्य्यंकेषु सुप्तानामपि प्रत्यर्थिनां वक्षःस्थलमारोहति, निद्रास्वपि तान् न जहाति, स्वप्नेष्वपि च विदारयति। कथमेतस्य चञ्चच्चन्द्रहास-चमत्कार-चाकचक्य-चिल्लीभूत–चक्षुष्काः समराङ्गणे स्थास्यामः ?" इति चिन्ता-चक्रमारूढा अपि कथं कथमपि कैश्चित् वीरवरैर्वर्धितोत्साहाः समर-भूमिमवातरन्।

प्रहरिपरीवारम्=दौवारिकसंघम्। विकोशः=कोशान्निःसारितः, नग्न इति यावत्। 'नंगी तलवार" इति हिन्दी। अवहेल्य=उपेक्ष्य। प्रत्यर्थिनाम्=शत्रूणाम्। निद्रा=सुषुप्तिः, जहाति=त्यजति। स्वप्नः=तत्पूर्वावस्था। चञ्चतश्चन्द्रहासस्य चमत्कारेण यच्चाकचक्यं तेन चिल्लीभूतानि=क्लिन्नीभूतानि, मुकुलप्रायाणि इति यावत्, चक्षूंषि=नेत्राणि येषां ते। भयादिति भावः।

प्रताप विलक्षण है, वायु चलने पर भी, पक्षी के उड़ने पर भी, पत्ते के के खड़खड़ाने पर भी, हम लोगों को 'शिवाजी आ गया' यही शङ्का होती है अहा, यह वीर विचित्र है। जो किले की चहारदीवारी लाँघ कर, पहरेदारों को कुछ न समझ, हजारों लोहे की जञ्जीरों से बँधे, हाथी के मस्तक के आघात को भी सह सकने वाले दरवाजों में घुसकर, नंगी तलवार, छुरी, बर्छा, शक्ति, त्रिशूल, मुद्गर और बन्दूक हाथ में लिए पहरेदारों की उपेक्षा कर अपनी प्रियाओं के साथ पलंगोंपर सोये हुए दुश्मनों की छाती पर चढ़ जाता है, गाढ़ी नींद में भी उन्हें नहीं छोड़ता और स्वप्नावस्था में भी चीर डालता है। इसकी चल रही तलवार के चमत्कार को चमचमाहट से चकाचौंध पड़े नेत्रोंवाले हम लोग युद्धभूमि में कैसे टिक सकेंगे ?" इसी प्रकार की चिन्ताओं से आक्रान्त होते हुए भी यवन सैनिक, किसी प्रकार कुछ वीरों के द्वारा प्रोत्साहित किये जाने पर युद्धभूमि में उतरे।

अथ कथंचित् प्रकाश-बहुले संवृत्ते नभःस्थले, परस्परं परिचीयमानासु आकृतिषु,कमलेष्विव विकचतामासादयत्सु वीरवदनेषु, भ्रमरालिष्विव परितः प्रस्फुरन्तीषु असि-पंक्तिषु, चाटकैर-चकचकायितेषु कवच-चकत्कारेषु, गोपीनाथ-पण्डितो वारमेकं शिववीरदिशि परतश्च यवन-सेनापति-दिशि गतागतं विधाय, सेनाद्वयस्य मध्य एव कस्मिंश्चित् पट-कुटीरे अपजलखानमानेतुं प्रबबन्ध।

शिववीरोऽपि कौशेय-कंचुकस्यान्तर्लौह-वर्म परिधाय, सुवर्णसूत्र-ग्रथितोष्णीषस्याप्यधस्तादायसं शिरस्त्राणं संस्थाप्य, सिंहनख-नामकं शस्त्रविशेषं करयोरारोप्य, दृढबद्ध-कटिरपजलखानसाक्षात्काराय सज्जस्तिष्ठति स्म।

विकचताम्=विकासभावम्। उपमालङ्कारः। एवं परत्र। चटकाया अपत्यानि पुमांसः चाटकैराः, तेषां चकचकायितेषु=चकचकमिवाचरितेषु, चकचक-इत्यनुकरणशब्दः। कवचानाम्=उरश्छदानाम्, "उरश्छदः कङ्कटकोऽजगरः कवचोऽस्त्रियाम्" इत्यमरः। चकत्कारेषु=तादृशशब्देषु। गतागतम्=यातायातम्। प्रबबन्ध=व्यवस्थापितवान्।

उसके बाद आकाश में पर्याप्त प्रकाश फैल जाने पर, जब परस्पर आकृतियाँ पहचान में आने लगीं, वीरों के मुखों के कमलों की तरह प्रफुल्लित हो जाने पर, भ्रमरावलियों की तरह तलवारों के चारों ओर दिखाई पड़ते लगने पर, कवचों की गौरैयों के चहचहाने की सी आवाज करते लगने पर, गोपीनाथ पण्डित ने एक बार शिवाजी की ओर दूसरे बार यवन सेनापति की ओर चक्कर लगा कर, दोनों सेनाओं के बीच में ही, किसी खेमे में अफजल खाँ को लाने का प्रबन्ध किया।

शिवाजी भी रेशमी कुर्ते के अन्दर लोहे का कवच पहन कर, सोने के तारों से गुँथी पगड़ी के नीचे लोहे का शिरस्त्राण रख कर, हाथों में बघनखा पहन कर, दृढ़ता से कमर कस कर अफजल खाँ से मिलने के लिए तैय्यार बैठे थे।

अपजलखानोऽपि च—"यदाऽहमेनं साक्षात्कृत्य, करताडनमेकं कुर्य्याम् ; तदैव तालिकाध्वनि-समकालमेव अमुकामुकैः श्येनैरिवाभिपत्य पाशैरेष बन्धनीयः, सेनया च क्षणात् तत्सेना झञ्झया घनघटेवापनेया"—इति संकेत्य, सूक्ष्म-वसन-परिधानः, वज्रक-जटितोष्णीषिकः, गल-विलुलित-पद्मराग-मालः, मुक्ता-गुच्छ-चोचुम्ब्यमानभालः, निश्वास-प्रश्वास-परिमथित-मद्य-गन्ध-परिपूरित-पार्श्व-देशान्तरालः, शोण-श्मश्रु-कूर्च-विजित-नूतन-प्रवालः, कञ्चुक-स्यूत-काञ्चन-कुसुम-जालः, विविध-वर्ण-वर्णनीय-शिविकामारुह्य निर्दिष्ट-पटकुटीराभिमुखं प्रतस्थे।

अमुकामुकैः="फलाना फलाना" इति हिन्दी। झञ्झया=झञ्झावातेन, "झञ्झावातःसवृष्टिक" इत्यमरः। घनघटेव=मेघसमूह इव। वज्रकेण=हीरकेण, जटिता=खचिता, उष्णीषिका=शिरोवेष्टनं यस्य सः। निश्वासप्रश्वासाभ्यां परिमथितो यो मद्यगन्धः=मैरेयामोदः, तेन, परिपूरितम्=भरितम्, पार्श्वदेशान्तरालं येन सः। शोणाभ्याम्=लोहिताभ्याम्, श्मश्रुकूर्चाभ्यां विजितो नूतनः प्रवालः=नवपल्लवं येन सः। कञ्चुके स्यूतानि=खचितानि, काञ्चनानि=हैरण्यानि, कुसुम-

---

अफजल खाँ भी 'ज्यों ही मैं उससे मिल कर एक ताली बजाऊँ, त्यों ही ताली की आवाज के साथ ही, अमुक अमुक लोग बाज की तरह उसपर टूट कर उसे रस्सियों से बाँध लें और हमारी सेना क्षण भर में उसकी सेना को, बादलों को झञ्झावात की तरह, भगा दे।' यह संकेत देकर, महीन कपड़े पहने, हीरा जड़ी टोपी लगाये, गले में पद्मराग मणियों की माला पहने, मस्तक पर मोतियों का गुच्छा लगाये, आसपास के वातावरण को श्वासोच्छ्वास से निकली शराब की दुर्गन्ध से दूषित करता हुआ, विविध रंगों की सुन्दर पालकी में बैठकर, मिलने के लिए पहले से निश्चित खेमे की ओर रवाना हुआ। उसकी लाल मूँछ और दाढ़ी नये पल्लवों को भी मात कर रही थी और उसकी शेरवानी सोने के तारों से कढ़े फूलों से भरी थी।

इतस्तु कुरङ्गमिव तुरङ्गं नर्त्तयन् रश्मि-ग्राह—वेषेण गौरसिंहेनानुगम्यमानः माल्यश्रीक-प्रभृतिभिर्वीर-वरैर्युद्ध-सज्जैः सतर्कं निरीक्ष्यमाणः शिववीरोऽपि तस्यैव संकेतितस्य समागमस्थानस्य निकटे एव सव्य-करेण वल्गामाकृष्याश्वमवारुधत् ।

ततस्तु, इतोऽश्वात् शिववीरः ततस्तु शिविकातोऽपजलखानः अपि युगपदेवावातरताम्, परस्परं साक्षात्कृत्य च, उभावप्युत्सुकाभ्यां नयनाभ्याम्, सत्वराभ्यां पादाभ्याम्, स्वागताऽऽम्रेडनतत्परेण वदनेन, आश्लेषाय प्रसारिताभ्यां च हस्ताभ्यां कौशेयास्तरणविरोचितायां वहिर्वेदिकायां धावमानौ परस्परमालिलिङ्गतुः ।

शिववीरस्तु आलिङ्गन-च्छलेनैव स्वहस्ताभ्यां तस्य स्कन्धौ दृढं

जालानि यस्य सः । विविधैः=नानाप्रकारैः, वर्णैः=रंगैः, अक्षरैर्वा, वर्णनीयाम्=प्रशंसनीयाम् । कुरङ्गमिवेति तुरङ्गस्य शीघ्रगामिताध्वननाय । रश्मिग्राहः=प्रग्रहधारो । "सईस" इति हिन्दी । वल्गाम्=कविकाम्, "लगाम" इति हिन्दी । आकृष्य=आकुञ्च्य । अवारुधत्=निरुद्धवान् ।

स्वागताम्रेडनम्=वारं वारं स्वागतनिवेदनम् । आश्लेषाय=आलिङ्गनाय । धावमानौ=शीघ्रं गच्छन्तौ । अन्योन्यं हर्षप्रदर्शनायेदम् ।

इधर हरिण की तरह घोड़े को नचाते हुए वीर शिवाजी—जिनके पीछे सईस के वेष में गौरसिंह चल रहा था और जिन्हें युद्ध के लिए सन्नद्ध माल्यश्रीक इत्यादि वीर सतर्कता पूर्वक देख रहे थे—ने भी उसी पहले से निश्चित सम्मिलन स्थान के निकट ही, बाएँ हाथ से लगाम खींचकर घोड़े को रोका ।

इधर घोड़े से वीर शिवाजी और उधर पालकी से अफजल खाँ, दोनों साथ ही उतरे और एक दूसरे को देख कर, उत्सुक नेत्रों, जल्दी-जल्दी बढ़ रहे पैरों, 'स्वागत, स्वागत' कहने में तत्पर मुख और आलिङ्गन करने के लिए फैलाये गये हाथों वाले उन दोनों ने, रेशमी चादर बिछे हुए बाहर के चबूतरे पर, दौड़ते हुए एक दूसरे को आलिङ्गन किया ।

शिवाजीने आलिंगन के ही बहाने, अपने हाथों से उसके कन्धों को

गृहीत्वा, सिंहनखैर्जत्रुणी कन्धरां च व्यपाटयत्। रुधिरदिग्धं च तच्छरीरं कटि-प्रदेशे समुत्तोल्य भूपृष्ठेऽपोथयत्।

तत्क्षणादेव च शिववीर–ध्वजिन्यां महाध्वज एकः समुच्छ्रितः। तत्समकालमेव यवन-शिबिरस्य पृष्ठस्थिता शिववीर-सेना शिबिरमग्निसात्कृतवती, पुरःस्थित-सेनासु च अकस्मादेव महाराष्ट्र-केसरिणः समपतन्। तेषां 'हरहर-महादेव' गर्जनपुरस्सरं छिन्धि-भिन्धि-मारय-विपोथय–इति कोलाहलः, प्रत्यर्थिनां च 'खुदा-तोबा-अल्लादि' पारस्य–पदमयः कलकलो रोदसी समपूरयत्।

ततो यवन–सेनासु शतशः सादिनः, गगनं चोचुम्ब्यमानाः, कृतदिगन्त-प्रकाशाः, कडकडा-ध्वनि-धर्षित-प्रान्त-प्रजाः, उड्डीय-

जत्रुणी=स्कन्धस्य सन्धी, "स्कन्धो भुजशिरोंऽसोऽस्त्री सन्धी तस्यैव जत्रुणी" इत्यमरः। व्यपाटयत्=व्यदारयत्। अपोथयत्=न्यपातयत्। "पटका" इति हिन्दी।

ध्वजिन्याम्=सेनायाम्, रोदसी=द्यावापृथिव्यौ।

शतशः सादिनो ज्वालमाला अवलोक्य तदभिमुखं प्रयाता इति सम्बन्धः। ज्वालमालां विशिनष्टि—गगनं चोचुम्ब्यमाना इत्यादिभिः।

मजबूती से पकड़ कर, बघनखों से, कन्धों के जोड़ों और गले को चीर डाला और उसके खून से लथपथ शरीर को कमर तक उठाकर, जमीन पर पटक दिया।

उसी क्षण वीर शिवाजी की सेना में एक बड़ी भारी पताका फहरा उठी। उसके फहराते ही यवन-शिविर के पीछे तैनात शिवाजी की सेनाने शिविर में आग लगा दी और आगे खड़ी यवन सेनाओं पर वीर मराठे एकाएक सिंह की भाँति टूट पड़े। उनके 'हरहर महादेव' गर्जन पूर्वक, 'मारो, काटो, पटको' के कोलाहल और शत्रुओं की 'खुदा तोबा, अल्ला' आदि फारसी शब्दमय हलचल से पृथ्वी और आकाश गूँज उठे।

तब यवनसेना के सैकड़ों घुड़सवार, आकाश को छूने वाली, दिशाओं को प्रकाशित कर देने वाली, कड़कड़ ध्वनि से समीप के लोगों को

मान-दन्दह्यमान-परसहस्र-पटखण्ड-विहित - हैम-विहङ्गम-विभ्रमाः, ज्योतिरिङ्गणायित-परस्कोटि-स्फुलिङ्ग - रिङ्गित-पिङ्गीकृत-प्रान्ताः, दोधूयमान-धूम-घटा-पटल-परिपात्यमान-भसित-सितीकृतानोकहाः, सकलकलध्वनि पलायमानैः पतत्रि-पटलैरिव सोसूच्यमानाः शिबिर-घस्मरा ज्वालमाला अवलोक्य, स-हाहा-कारं तदभिमुखं प्रयाताः। अपरे च महाराष्ट्रासि-भुजङ्गिनीभिर्दन्दश्यमानाः, केचन

कृतो दिगन्तस्य=दिक्प्रान्तभागस्य, प्रकाशो याभिस्ताः। कडकडाध्व-निभिर्धर्षिताः प्रान्तप्रजा याभिस्ताः। उड्डीयमानैः, दन्दह्यमानैः=नितरां ज्वलद्भिः, परस्सहस्रैः, पटखण्डैर्विहितो हैमानाम्=सौवर्णानाम्, विहंगमानाम्=पतत्रिणाम्, विभ्रमो याभिस्ताः। ज्योतिरिंगणायितानाम्=खद्योतायितानाम्, परस्कोटीनाम्=असंख्यानाम्, पारस्करादित्वात् सुट्, टित्वेन पराद्यवयवत्वात् न विसर्गः। स्फुलिंगानाम्=अग्निकणानाम्, रिङ्गितैः=उड्डयनैः, पिङ्गीकृताः=पिञ्जरीकृताः, प्रान्ताः=परिसरभूमयो याभिस्ताः। दोधूयमानानाम्=नितान्तं वृद्धिं गच्छन्तीनाम्, धूमघटानाम्=धूमलेखानाम्, पटलेन=समूहेन, परिपात्यमानैः=समन्ततो विकीर्यमाणैः, भसितैः=भस्मभिः, सितीकृताः=शुभ्रीकृताः, अनोकहाः=वृक्षाः, याभिस्ताः। सकलकलध्वनि=कलकलशब्देन सह, पलायमानैः, पतत्रिपटलैः=पक्षिसमूहैः। सोसूच्यमानाः=बोबुध्यमानाः। उड्डीना भयात्कलकलं कुर्वन्ति विहगाः, इह च स एव सूचनमुखेनोत्प्रेक्षितः।

भयभीत कर देने वाली, हजारों अधजले कपड़ों के टुकड़ों से स्वर्णपक्षियों का भ्रम उत्पन्न कर देने वाली, जुगुनू के समान करोड़ों चिनगारियों के उड़ने से पास पड़ोस को पीला बना देने वाली, लगातार बढ़ रही धूमघटाओं से चारों ओर बिखेरी जा रही भस्म से वृक्षों को सफेद बना देने वाली, शिविर को भस्मसात् कर देने वाली अग्नि की ज्वालाओं—कलकल ध्वनि करके उड़ रहे पक्षी मानो जिनकी सूचना दे रहे थे—को देखकर हाहाकार करते हुए उसी ओर दौड़े। अन्य यवन मराठों की

"त्रायस्व-त्रायस्व" इति साम्रेडं व्याहरमाणाः पलायमानाः; अन्ये धीरा वीराश्च—

"तिष्ठत रे तिष्ठत धूर्त-धुरीणाः ! महाराष्ट्र-हतकाः ! किमिति चौरा इव लुण्ठका इव दस्यव इव च यवन-सेनापतीनाक्राम्यथ ? समागच्छत सम्मुखम्, यथा शाम्येदस्मच्चन्द्रहासानां चिरप्रवृद्धा महाराष्ट्र-रुधिराऽऽस्वाद-तृषा"

—इति सक्ष्वेडं संगर्ज्य, युद्धाय सज्जाः समतिष्ठन्त।

तेषां चाश्वानां सव्यापसव्य-मार्गैः खुरक्षुण्णा व्यदीर्यत वसुधा। खड्ग-खटखटाशब्दैः सह च प्रादुरभूवन् स्फुलिङ्गाः। रुधिर-धाराभिः जपा-सुमनस्समाच्छन्नमिवाभूद्रणाङ्गणम्।

शिविरघस्मराः=पटगृहभक्षिकाः। दन्दश्यमानाः=भृशं दश्यमानाः, खण्ड्यमाना इत्यर्थः। साम्रेडम्=वारं वारम्।

सक्ष्वेडम्=ससिंहनादम्।

सुमनसः=पुष्पाणि। "स्त्रियः सुमनसः पुष्पमि" त्यमरः।

तलवार रूपी नागिन से डँसे जा रहे थे, कुछ 'बचाओ, बचाओ' कहते हुए भाग रहे थे, और कुछ वीर और धीर यवन सैनिक 'अरे धूर्तराजों! अरे दुष्ट मराठों! खड़े रहो, खड़े रहो, चोरों, लुटेरों और डाकुओं की तरह यवन सेनापतियों पर आक्रमण क्यों करते हो? सामने आओ, जिससे हमारी तलवारों की बहुत दिनों से बढ़ी मराठों की खून पीने की प्यास शान्त हो सके।' यह कह कर, सिंहनाद-पूर्वक गरज कर, युद्ध के लिये तैय्यार हो, खड़े हो गये।

उनके घोड़ों के दाँये-बायें पैतरा बदलने से खुरों से खुद कर पृथ्वी फट सी गई और तलवार के खटखट शब्दों के साथ ही चिनगारियाँ निकलने लगीं। रक्त की धारा से रणभूमि जपापुष्पों से आच्छन्न सो हो गई।

तदवलोक्य गौरसिंहो मृतस्यापजलखानस्य शोणित-शोणं शोणं शरीरं प्रलम्ब-वेणु-दण्डाग्रेषु बद्ध्वा समुत्तोल्य सर्वान् सन्दर्श्य सभेरीनादं घोषितवान् "यद्-दृश्यतां दृश्यतामितो हतोऽयं यवन-सेनापतिः, ततश्चाग्निसात् कृतानि ससकल-सामग्री-जातानि शिबिराणि, परितश्च बहूनि विनाशितानि यवन-वीर-कदम्बकानि, तत् किमिति अवशिष्टा यूयं मुधा बक-गृध्र-शृगालानां भोज्याः संवर्तध्वे ? शस्त्राणि त्यक्त्वा पलायध्वं पलायध्वम्, यथा नेयं भूः कदुष्णैर्भवतां सद्यश्छिन्न-कन्धरा-गलद्रुधिरप्रवाहैर्भवद्रमणीनां च कज्जल-मलिनैर्बाष्प-पूरैरार्द्रा भवेद्"–इति। तदवधार्य, दृष्ट्वा च रुधिर-दिग्धं क्रीडापुत्तलायितं स्वस्वामिशरीरम्, सर्वे ते हतोत्साहा विसृज्य शस्त्राणि, कान्दिशीका दिशो भेजुः।

शोणितशोणम्, शोणम् = रुधिरार्द्रत्वात् प्रकृत्या च रक्तवर्णमित्यर्थः। प्रलम्बानाम्=दीर्घाणाम्, वेणुदण्डानाम्=वंशानाम्, अग्रेषु, समुत्तोल्य= उत्थाप्य। कदुष्णैः=ईषदुष्णैः। रुधिरदिग्धम्=रक्तक्लिन्नम्। क्रीडा-पुत्तलायितम्=खेलार्थं निर्मितपटादिमूर्तिवदाचरितम्।

यह देख कर गौरसिंह ने मरे अफजल खाँ के खून से लथपथ लाल शरीर को लम्बे बाँसों की नोक में बाँध कर खड़ा कर, सब को दिखा कर, डुग्गी पिटाकर यह घोषणा कर दी–"देखो, देखो, इधर यह यवन सेनापति मार डाला गया है और उधर सारी सामग्री सहित सारे शिविर जला दिये गये हैं और चारों ओर अनेक यवन-वीरों के समूह नष्ट कर दिये गये हैं, तो बचे हुए तुम लोग व्यर्थ में बगुलों, गीधों और सियारों का भोजन क्यों बनते हो ! शस्त्र छोड़कर भागो, भागो, जिससे यह भूमि तुम्हारी तुरंत कटी गर्दन से बह रही गरम गरम खून की धाराओं और तुम्हारी स्त्रियोंके काजल से मैले आँसुओं के प्रवाहोंसे गीली न हो।' यह सुनकर और अपने सेनापति के खिलौने बनाये गये खून से लथपथ शरीर को देख कर वे सभी हतोत्साहित हो, शास्त्र छोड़कर, डरकर चारों ओर भाग खड़े हुए।

ससेनः शिववीरश्च विजय-शङ्खनादै रोदसी सम्पूर्य, रणाङ्गण-शोधनाधिकारं माल्यश्रीकाय समर्प्य, प्रताप-दुर्गं प्रविश्य मातुश्चरणौ प्रणनाम।

इति द्वितीयो निश्वासः।

—❀—

कान्दिशीकाः = भीताः। "कान्दिशीको भयद्रुत" इत्यमरः।
मातुः = जनन्याः। प्रणनाम = नमस्कृतवान्।

इति शिवराजविजयवैजयन्त्यां द्वितीय निश्वासविवरणम्।

वीर शिवाजी ने सेना के साथ विजय-शङ्ख के घोष से अन्तरिक्ष और पृथ्वी के अन्तराल को पूर्ण कर, रणभूमि की सफाई का काम माल्यश्रीक को सौंप कर, प्रतापगढ़ में प्रवेश कर, माता के चरणों में प्रणाम किया।

शिवराजविजय के द्वितीय निश्वास का
हिन्दी अनुवाद समाप्त

"जीवन् नरो भद्रशतानि पश्येत्"

—स्फुटकम्

"संसारेऽपि सतीन्द्रजालमपरं यद्यस्ति तेनापि किम् ?"

—भर्तृहरिः।

तत्र पर्ण-कुटीरे तु कथं कथमपि दाडिमाद्यास्वादन-तत्परां कुसुम-गुच्छैर्मनो विनोदयन्तीं बालिकां गुरोः समीपे परित्यज्य, तदाज्ञया तत्पितरौ समन्वेष्टुम्, अन्तर्गोपित-क्षुरप्र-च्छुरिकां यष्टिकामेकां हस्तेन धृत्वा, तैरेव श्याम-श्यामैः गुच्छ-गुच्छैः

गौरवटुश्यामवटुनाम्ना प्रसिद्धयोरुदयपुरराज्यैकभूभागस्वामिश्रीखड्ग-सिंहतनययोः समागमश्चिराद्विमुक्तया सौवर्णीनामिकया भगिन्या पुरोहितेन च काकतालीयन्यायेन जात इति तृतीयपरिच्छेदकथामुपक्षिपति—"जीवन्नरो भद्रशतानि पश्येदि"ति।

अघटितघटनापटीयस्या मायया प्रपञ्चजातमेवेन्द्रजालन्न तु ततोन्यत्किञ्चिदित्यपि स्मारयति भर्तृहरिपद्यखण्डेन—"संसारेऽपी"ति।

कुसुमगुच्छैः=पुष्पस्तबकैः। श्यामश्यामैः=अतिश्यामैः। एव-

॥ श्रीः ॥

तृतीय निश्वास

'जीवित रहने पर मनुष्य सैकड़ों सुख देख सकता है।'

'संसार के होते हुए भी, यदि कोई दूसरा इन्द्रजाल हो तो उससे क्या, अर्थात् सृष्टि का सबसे बड़ा इन्द्रजाल स्वयं संसार ही है।'

उस पर्णकुटी में किसी प्रकार अनार आदि खाने में लगी हुई और फूलों के गुच्छों से मन बहला रही बालिका को गुरु के समीप छोड़ कर, उनकी आज्ञा से, उसके माता-पिता को खोजने के लिये, एक

लोल-लोलैः कुञ्चितैः कचैः ब्रह्मचारि-बटु-वेष एव श्यामबटु-रासन्न-ग्रामटिका-दिशि-समगात्।

ततो "हन्त ! कथमद्यापि शूली त्रिशूलेन नैतान् शूलाकरोति ? कथं खड्गिनी खड्गेन न खण्डयति ? कथं चक्री चक्रेण न चूर्णयति ? कथं पाशी पाशैर्न पाशयति ? कथं हली हलेन नावहेलयति ? कथं वा जम्भारातिर्दम्भोलिघातैर्दम्भिन एतानम्भोधि-जल-स्तम्भा-

---

मग्रेऽपि। "नित्यवीप्सयोरि"त्याभीक्ष्ण्ये द्वित्वम्। आसन्ना = समीपवर्त्तिनी, ग्रामटिका = लघुग्रामः। "स्वर्गग्रामटिकाविलुण्ठनवृथोच्छूनै" रित्यादिषु महाकविभिः प्रयुक्तोऽयं शब्दः, स्तद्धित इति महासंज्ञास्वारस्य-कल्प्यमान-"ग्रामाट्टिकनि" प्रत्ययनिष्पन्नः। "गंवई" इति हिन्दी।

शूली = शिवः, शूलाकरोति = शूलेन पचति। "शूलात्पाके" इति डाच्। खड्गिनी = दुर्गा। चक्री = विष्णुः। पाशी=वरुणः। "प्रचेता वरुणः पाशी"त्यमरः। पाशैः = बन्धनसाधनैर्वरुणास्त्रैः, हली = बलः, अवहेलयति = तिरस्करोति। जम्भस्य = तन्नाम्नोऽसुरस्य, अरातिः = रिपुः, इन्द्रः दम्भोलीनाम् = वज्राणाम्, "दम्भोलिरशनिर्द्वयोरि"त्यमरः, घातैः =

लकड़ी की गुप्ती—जिसमें तीक्ष्ण छुरी छिपी थी—हाथ में लेकर, काले, सुन्दर घने और घुँघुराले बालों वाला साँवला बालक, ब्रह्मचारी के वेष में ही गाँव की ओर चल दिया।

"हा ! इतना अनर्थ और अधर्म होने पर भी भगवान रुद्र त्रिशूल से इन अधर्मियों को क्यों नहीं बेध देते ? खड्गधारिणी दुर्गा अपनी खड्ग से इनके टुकड़े टुकड़े क्यों नहीं कर देती ? चक्रधारी विष्णु इन्हें चक्र से क्यों नहीं पीस डालते ? वरुण इन्हें पाश से बाँध क्यों नहीं देते ! हलधर बलराम हल से इनकी अवहेलना क्यों नहीं करते ? जम्भ के शत्रु इन्द्र इन अभिमानियों को वज्र मारकर समुद्र के जलस्तम्भों (एक विशेष तूफान के कारण समुद्र के जल का खड़े होकर खम्भों का रूप ले लेना)

रम्भेषु न पातयति ? अहह ! क इतोऽप्यधिकोऽनर्थो भविता यद् भगवानवतरिष्यति । शिव ! शिव !! न शक्यते द्रष्टुमपि यदेतैर्निर्दय-हृदयैः परमपूजनीयानां ब्राह्मणानामपि अत्यल्पवयस्का अपि बालिका अपह्रियन्ते । धिगेतान् ! धर्मादपि निर्भीकान् अभीकान्"-इति चिन्ता-सन्तान-वितानैकताने एव ब्रह्मचारि-गुरौ, सपद्येव न्यविशत श्यामवटुः सह देवशर्म्मणा वर्षीयसा ब्राह्मणेन । स तु बाष्पक्षालितोपनयनः शोकाधिक-कम्पित-गात्रयष्टिः प्रविश्यैव, दृष्ट्वैव तां बालिकां "कुतः कुतः कोशले !" इत्युदीर्य तामङ्के जग्राह ।

सोऽपि प्रक्षिप्य दाडिम-खण्डम्, निरस्य च कोरक-स्तवक-

ताडनैः । अम्भोधेः=क्षीरनिधेः, जलस्तम्भानाम्, आरम्भेषु=उपक्रमेषु । क्वचिज्जलधिमारभ्य मेघपर्यन्तं जलस्तम्भा आविर्भवन्तीति पदार्थ-विद्यावेदिनां नाविदितचरम् । अनुप्रासः । धर्मादपि निर्भीकान्=धार्मिकभयशून्यान् । अभीकान्=कामुकान् । "कम्रः कामयिताऽभीकः" इत्यमरः । चिन्तायाः सन्तानस्य=समूहस्य, वितानं=विस्तारीकरणे, एकतानः=स्थिरचित्तः । न्यविशत=प्रविष्टः । वर्षीयसा=वृद्धेन । बाष्पेण=रोदनजलेन, क्षालितम्=धौतम्, उपनयनम्=उपनेत्रम्, 'चश्मा' इति हिन्दी, यस्य सः । शोकेन, अधिकम्, कम्पिता=वेपमाना, गात्रयष्टिः=शरीरं यस्य सः ।

में क्यों नहीं फेंक देते ? उफ् ! क्या इससे भी बढ़कर अनर्थ हो सकता है जब भगवान अवतार लें । शिव ! शिव !! देखा भी नहीं जाता ये निर्दयहृदय वाले यवन परम पूजनीय ब्राह्मणों की भी कम उम्र की भी बच्चियों का अपहरण करते हैं ।" ब्रह्मचारी गुरु इन्हीं चिन्ताओं से चिन्तित हो रहे थे कि वृद्ध ब्राह्मण देवशर्मा के साथ साँवले ब्रह्मचारी ने प्रवेश किया । उस वृद्ध ब्राह्मण का चश्मा आंसुओं से धुल रहा था । प्रवेश करके और बालिका को देखकर ही उसने "कोशले ! कोशले ! तुम यहाँ कैसे" कहकर उसे गोद में उठा लिया ।

वह भी अनार के टुकड़े और कलियों के गुच्छे—जिससे वह खेल

क्रीडनकम् , तं कराभ्यां कण्ठे गृहीत्वा मुक्तकण्ठं रुरोद ।

वृद्धोऽपि च एकं करं तत्पृष्ठे विन्यस्य, अन्येन च तस्याः शिरः परिमृशन् "कोशले ! कानि पातकानि पूर्वजन्मनि कृतवत्यसि ? यद् बाल्य एव त्वत्पिता सङ्ग्रामे म्लेच्छ–हतकैर्धर्मराज–नगराद्ध्व-न्यद्ध्वन्यः कृतः । माता च तव ततोऽपि पूर्वमेव कथावशेषा संवृत्ता, यमलौ भ्रातरौ च तव द्वादशवर्षदेश्यावेव आखेट–व्यस-निनौ महार्ह–भूषण–भूषितौ तुरगावारुह्य वनं गतौ दस्युभिरपहृता-विति न श्रूयते तयोर्वार्ताऽपि, त्वं तु मम यजमानस्य पुत्रीति स्वपुत्रीव मयैव सह नीता, वर्द्धयसे च । अहह ! कथं वारं वारं

मुक्तः = अप्रतिहतः कण्ठो यस्यां क्रियायां तदिति क्रियाविशेषणमिदम् । क्रियाविशेषणानामेकत्वं कर्मत्वञ्च स्वाभाविकप्रायम् ।

धर्मराजस्य = वैवस्वतस्य, नगरस्य, अध्वनि = मार्गे । अध्वन्यः = पान्थः । मरणं न वाच्यमितीत्थं कथयति । यमलौ = सहजातौ, द्वादश-वर्षदेश्यौ = आसन्नद्वादशवर्षौ । आखेटे = मृगयायाम् , व्यसनं ययोस्तौ । महार्हैः = बहुमूल्यैः, भूषणैः = अलङ्करणैः, भूषितौ ।

रही थी—को फेंक कर, उस वृद्ध के गले में बाहें डाल कर, फूट-फूट कर रोने लगी ।

वृद्ध भी एक हाथ उसकी पीठ पर रखकर दूसरे हाथ से उसका सिर सहलाता हुआ इस प्रकार करुण विलाप करने लगा,

"कोशले तूने पूर्व जन्म में कौन से ऐसे पाप किये थे कि तेरे पिता तेरे बचपन में ही युद्धस्थल में म्लेच्छों द्वारा मार डाले गये, तेरी माँ उससे भी पहले कथाशेष हो गई (मर गई) और तेरे दोनों जुड़वाँ भाई—जो शिकार के शौकीन थे—बहुमूल्य आभूषण पहन कर घोड़ों पर सवार होकर वन में गये और दस्युओं द्वारा हर लिये गये तथा फिर उनकी चर्चा भी नहीं सुनाई दी । तू मेरे यजमान की पुत्री थी, इसलिये अपनी पुत्री के ही समान समझकर मैने तुझे अपने साथ रखा और पाला पोसा । आह !

बालैव सुन्दरकन्या-विक्रय-व्यसनिभिर्यवन-वराकैरपह्रियसे ? भगवदनुग्रहेण च कथं कथमपि मत्कर-मुक्ता पुनः प्राप्यसे। परमात्मन् ! त्वमेव रक्षैनामनाथां दीनां क्षत्रिय-कुमारीम्"-इति सकरुणं विललाप।

तदाकर्ण्य सर्वेऽपि चकिताः स्तब्धाः अश्रुमुखाश्च संवृत्ताः। कुटीराध्यक्षो ब्रह्मचारी च निजमपि किञ्चिद् बन्धु-वियोग-दुःखं स्मारित इव बाष्प-व्रजोद्गम-दुर्दिन-ग्लपित-मुखः कथं कथमपि धैर्यमाधाय वदनं पटेन परिमृज्य पुनरवदधे।

तावत्कुटीराद् बहिः कस्मिंश्चित् कार्ये व्यासक्तो गौरवटुर्विलापेनैतेन कर्णयोराकृष्यमाण इव त्वरितमन्तः प्रविवेश। पौनःपुन्येन

बन्धुवियोगदुःखं स्मारितः=इष्टविरहक्लेशमनुभावितः, बाष्पाणाम्=अश्रूणाम्, व्रजस्य=समूहस्य, उद्गमेन=प्रादुर्भावेण, यद् दुर्दिनम्, तत्तुल्यम्, "मेघच्छन्नेऽह्नि दुर्दिनमि" त्यमरः, तेन ग्लपितम्=ग्लानम्, मुखम्=आननम् यस्य सः। अविच्छिन्नाश्रुधाराम्लानमुख इत्यर्थः। अवदधे=सावधानोऽभूत्।

सुन्दर कन्याओं के व्यापारी यवन दुष्टों के द्वारा कई बार तेरा अपहरण किया गया, पर भगवान के अनुग्रह से किसी न किसी प्रकार उनसे छूटकर मुझे प्राप्त होती रही। भगवन्! तुम्हीं इस अनाथ और दीन क्षत्रिय कुमारी की रक्षा करना।"

यह सुनकर सभी लोग चकित और स्तब्ध रह गए तथा उन्हें आँसू आ गए। कुटी के अध्यक्ष ब्रह्मचारी को भी मानो अपने किसी बन्धु के वियोग के दुःख का स्मरण हो आया और उनका मुख निरन्तर बहने वाली अश्रुधारा से म्लान हो गया। किसी प्रकार धैर्य धारण कर मुँह को उत्तरीय वस्त्र से पोंछकर वह पुनः सावधान हुये।

उस कुटी के बाहर किसी काम में लगा हुआ गौर ब्रह्मचारी इस विलाप के कान में पड़ते ही अन्दर आ गया।

दृष्ट्वा च तां कन्यां देवशर्म्माणं वृद्धं ब्राह्मणञ्च, परिपक्व-ताली-दलीभूत-कपोल-पालीकः, उदञ्चित-रोममाली, त्वरित-कोष्ण-श्वास-प्रश्वास-शाली, शारद-शर्वरी-सार्वभौम-किरण-किरणोद्भूतोद्भूत-कीलालाली-व्यालीढ-चन्द्रकान्त-जालीभूत-लोचनः, बाष्पावरुद्ध-कण्ठः, कमपि वृत्तान्तं स्मारित इव, कमपि चिरविनष्टं प्रेयांसं प्रापित इव, किमपि चिरानुभूतं दुःखं पुनरनुभावित इव च स्मारं स्मारमिव किमपि स्वसमानदशं श्यामवटुं सम्बोध्य कातरेण भव्य-

---

परिपक्वं यत्तालीदलं तत्समतामापादिता या कपोलपाली = गण्डप्रान्तो यस्य सः। शोकेनेषत्पीतगण्डस्थल इति भावः। उदञ्चिता = प्रोद्गता, रोम-माला = लोमावली यस्य सः। इनिः। त्वरिताभ्याम् = शैघ्र्ययुताभ्याम्, कोष्णाभ्याम् = ईषदुष्णाभ्यां श्वासप्रश्वासाभ्यां शालते = शोभते। इनिरत्रापि। शरदि भवा शारदी, सा चासौ शर्वरी = निशीथिनी, तस्याः शर्वरीसार्व-भौमस्य = शशाङ्कस्य, किरणानाम् = दीधितीनाम्, किरणेन = क्षेपणेन, उद्भूतोद्भूतम् = अत्यन्तं निर्यातम्, यत् कीलालम् = पानीयम्, "पयः कीलालममृतमि" त्यमरः, तस्य आली = पंक्तिः, तया व्यालीढः = भूषितः, यः चन्द्रकान्तः = तन्नामा मणिविशेषः, तस्य जालीभूते = समुदायभूते लोचने यस्य सः। स्रवद्बाष्प इत्यर्थः। शर्वरी-शर्वरी, किरण-किरणेत्यत्र यमकम्, अनुप्रासस्तु सर्वत्र। प्रसादो गुणः, गौडी रीतिः। प्रेयांसम् = अतिशय-प्रियम्। प्रापितः = लम्भितः। स्वेन समाना दशा = अवस्था यस्य

उस कन्या और देवशर्मा ब्राह्मण को बार बार देखकर उसके गाल पके हुये तालपत्र के समान पीले हो गये, देह रोमाञ्चित हो गई, वह जल्दी जल्दी साँसे लेने लगा, उसकी आँखे शरत्काल की चन्द्रकिरणों के संस्पर्श से उत्पन्न जलकणों से व्याप्त चन्द्रकान्त मणि जैसी अर्थात् अश्रुपूर्ण हो गई और गला रुँध गया जैसे उसे कोई बात याद आ गई हो, जैसे उसे किसी चिर अनुभूत दुःख की पुनः अनुभूति होने लगी हो, इस प्रकार कुछ स्मरण करता हुआ सा वह अपनी ही मनःस्थिति

मानेन कम्पमानेन च स्वरेणाचकथत्—

"श्याम ! श्याम ! शृणोषि शृणोषि ?" इति ।

अथ श्यामबटुरपि अश्रुभिः स्नातो गौरस्य करं गृहीत्वा "तात ! शृणोमि, सेयं सौवर्णी अस्मद्भगिनी, स चायं पूज्यपादः पुरोहितः" इति कथयन् गौरमपि प्रकटं रोदयन् रुरोद ।

तदाकर्ण्य क्षणं सर्वेऽपि कुटीरस्थाः काष्ठविग्रहा इव चित्रलिखिता इव च संवृत्ताः ।

देवशर्माऽपि च स्तब्धीभूतामिव कन्यकां तस्मिन्नेव कुशविष्टरे उपवेश्य चक्षुषी स्थिरीकृत्य "वत्सौ ! किं वीरस्य खड्गसिंहस्य तनयौ युवाम् ?" इति कथयन् वली-पलितौ वार्द्धक्य-वेपमानौ बाहू प्रससार । तौ चाऽऽत्मनः पित्रोरपि पूजनीयं पुरोहितं साष्टाङ्गं प्रणे-

---

तम् । भज्यमानेन=त्रुट्यता । कम्पमानेन=सवेपथुना । तात !=

वाले साँवले ब्रह्मचारी को संबोधित कर, कातर, लड़खड़ाते और काँपते स्वर में बोला

"श्याम ! श्याम ! सुनते हो ? सुनते हो ? तदनन्तर आँसुओं से नहाया साँवला ब्रह्मचारी गौर ब्रह्मचारी का हाथ पकड़ कर, "हाँ भाई ! सुन रहा हूँ, यही हमारी बहिन सौवर्णी है और यही हमारे पूज्यपाद पुरोहित हैं" यह कहता हुआ गौर ब्रह्मचारी को भी प्रकट रूप में रुलाता हुआ रोने लगा ।

उस रोदन को सुनकर कुटी के सभी लोग थोड़ी देर के लिये कठपुतली के समान अथवा चित्र लिखित से (जडवत्) हो गए ।

देवशर्मा ने भी निश्चल सी हुई उस कन्या को उसीकुशासन पर बिठा कर आँखे स्थिर करके "पुत्रों ! क्या तुम दोनो वीर खड्गसिंह के आत्मज हो ?" यह कहते हुए श्वेत रोमों से भरी और बुढ़ापे के कारण काँपती हुई बाँहें फैला दीं और उन दोनों ने अपने पिता के भी पूज्य पुरोहित को

मतुः। स च कथमप्युत्थाय, उत्थाप्य च तौ, समाश्लिष्य स्वनयन-वारिधाराभिस्तावभ्यषिञ्चत् ॥ ॥

ततो मुहूर्त्तं यावत्तु परितः प्रसर्पिभिः करुणोद्गार-प्रवाहैरेव पर्यपूर्यत सा कुटी।

अथ कथमपि रिङ्गत्तुङ्ग-तिमिङ्गिल-गिल-परिवर्त्त-प्रसङ्ग-सङ्ग-सभङ्ग-तरङ्ग-रङ्गप्राङ्गण-सोदरीभूतं हृदयं वशीकृत्य, अनुजां सुवर्ण-वर्णां सौवर्णीनाम्ना बाल्य एव प्रसिद्धां कोशलामङ्के संस्थाप्य,

भ्रातः, वलीपलितौ=जरसा शौक्ल्ययुतकेशौ। अभ्यषिञ्चत्=आर्द्रीकृतवान्, "प्राक्सितादड्व्यवायेऽपी" ति षत्वम्।

प्रसर्पिभिः=विसारिभिः, करुणोद्गारस्य=करुणरसोद्गमस्य, प्रवाहैः=धाराभिः। उत्प्रेक्षा। पर्यपूर्यत=पूरिताऽभूत्।

अथ कुटीराध्यक्षो गौरश्यामौ समुवाचेति सम्बन्धः। रिङ्गन्=सञ्चलन्, यः तुङ्गः=सुमहान्, तिमिङ्गिलगिलः=तन्नामा मत्स्यविशेषः। "अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तरः। तिमिङ्गिल-गिलोऽप्यस्ति तद्गिलोऽप्यस्ति राघवः" इति हनुमद्वचनम्, तस्य परिवर्तः=पार्श्वपरिवर्तनम्, तस्य प्रसङ्गस्य=अवसरस्य, सङ्गेन=संसर्गेण, सभङ्गानाम्=समुच्छलितानाम्, तरङ्गाणाम्=वीचीनाम्, रङ्गप्राङ्गणस्य=नर्त्तनचत्वरस्य,सोदरीभूतम्=तादृशम्। भृशं व्याकुलं क्षुभितमिति यावत्। हृदयम्="हृदयं स्वान्तं हृन्मानसं मन" इत्यमरः। अनुप्रासः।

साष्टांग प्रणाम किया। देवशर्मा ने किसी तरह उठकर और उन दोनों को उठा कर उनका आलिंगन कर उन्हें अपनी अश्रुधारा से नहला दिया।

उसके बाद थोड़ी देर के लिये वह कुटी चारों ओर फैल रही करुणा की धारा से आप्लावित हो गई।

तदनन्तर तिमिङ्गिल–गिल के चतुर्दिक घूमने से छिन्न हो जाने वाली तरङ्गों के नर्तन स्थल के समान अपने हृदय को किसी प्रकार संभाल-कर अपनी सोने के से रगं वाली बचपन से ही सौवर्णी नाम से प्रसिद्ध

समुपविष्टे गौरे; श्यामेऽपि च तस्या एव समीपे समुपविश्य तस्या एव पृष्ठं परिमृजति; पूज्यपादे पुरोहिते च क्रियासमभिहारेणोद्गच्छतो वाष्पान् पटान्तेन परिहरति; कुटीराध्यक्षः कुतुक-परवशः सम्वोध्य गौर-श्यामौ समुवाच—

"वत्सौ गौर-श्यामौ ! जानेऽहं वां क्षत्रियोचिताचारेषु चातन्द्रितौ सनातनधर्म-विप्लवासहनौ नीतिकुशलौ परोपकार-व्यसनिनौ दुर्बलात्कार-परायण-तुच्छ-यवन-च्छेदेच्छोच्छलच्छटाच्छन्नौ, बालावप्यबालपराक्रमौ, सकल-कला-कलाप-कोविदौ गुणि-गण-गण-

---

प्रौढिरर्थगुणः। परिमृजति=हस्तस्पर्शं कुर्वति। क्रियासमभिहारेण= भृशं पौनःपुन्येन च। कुतुकपरवशः=सकौतूहलः। सनातनधर्मस्य विप्लवासहनौ=विनाशं प्रलयं वा असहमानौ। दुर्बलात्कारे= दुष्टसाहसे, परायणानाम्=निरतानाम्, तुच्छानाम् = नीचानाम्, छेदस्य=खण्डनस्य, इच्छया=अभिलाषेण, उच्छलन्त्या=उद्गच्छन्त्या, छटया = हार्दावस्थाविशेषेण, आच्छन्नौ=व्याप्तौ। अनुप्रासः। अबालपराक्रमौ=महाबलौ। बालौ कथमबालपराक्रमाविति विरोधाभासः। सकलस्य=भेदोपभेदसहितस्य, कलाकलापस्य=कलासमूहस्य,

---

कोशला नाम की वहिन को गोद में विठाकर गौर ब्रह्मचारी के बैठ जाने पर, श्याम ब्रह्मचारी के भी उस कन्या के ही समीप बैठकर उसकी पीठ सहलाने लगने पर, तथा पूज्यपाद पुरोहित के बार बार निकलने वाले आँसुओं को उत्तरीय के छोर से पोंछने लगने पर कुतूहलाक्रान्त कुटीराध्यक्ष ने गोरे और साँवले दोनों ब्रह्मचारी को सम्बोधित कर कहा "वत्स गौर और श्याम ! मैं जानता हूँ कि तुम दोनों आलस्य रहित होकर क्षत्रियों का सा आचरण करने वाले, सनातन धर्म के ह्रास या विनाश को न सहन कर सकने वाले, नीतिकुशल, परोपकारी, अत्याचारी दुष्ट यवनों के काटने की अभिलाषा से उत्पन्न कान्ति से व्याप्त बालक होते हुये भी महापराक्रमी सभी कलाओं में निष्णात और गुणियों में गिने जाने

नीयौ च, किन्तु नाद्यावधि कदाऽपि भवतोर्जन्मस्थानादि-प्रश्न-प्रसङ्गोऽभूत्, आकर्ण्य च भवतोर्दुःखमयमपि विलापमयमपि चाऽऽलापं महत् कुतूहलमस्माकं वर्वर्ति। तत्समाश्वस्य धैर्यमाधाय संक्षेपेण कथ्यतां का भवतोर्जन्मभूः ? कथमत्राऽऽगतौ ? किमेषा सहोदरा स्वसा ? सत्यमेव किं भुवं विरहय्य लोकान्तरं सनाथितवन्तौ युष्मत्पितरौ ? क्व यौष्माकीण-पैतृपितामहिक-सम्पत्तिः ? किं भवतोरुद्देश्यम् ?" इत्यादि।

तदाकर्ण्य चक्षुषी विमृज्य मुखं प्रोञ्छ्य कण्ठं रुन्धतो बाष्पान् कथमपि संरुध्य इन्दीवरयोरुपरि भ्रमतो भ्रमरानिव लोचनयो-

---

कोविदौ=विज्ञातारौ। गुणिनाम्=कलाविदां, गणे=समुदाये, गणनीयौ=गण्यौ। समाश्वस्य=समाधाय। धैर्यमाधाय=धीरतामानीय। यौष्माकीणा=युष्मत्स्वामिका। पैतृपितामहिकी=वंशपरम्पराप्राप्ता, सम्पत्तिः।

लोचनयोरञ्चितान् केशानपसार्येति सम्बन्धः। उपमिनोति इन्दीवरयोः=कमलयोः, उपरि भ्रमतः=उर्ध्वं चलतः। भ्रमरानिवेति कचोपमानम्।

योग्य हो, लेकिन आज तक कभी भी तुम दोनों का जन्म स्थान आदि पूछने का प्रसंग नहीं आया, आज तुम्हारे दुःखपूर्ण और विलापपूर्ण वार्तालाप को सुनकर मुझे बहुत कौतूहल हो रहा है। इसलिये आश्वस्त होकर, धैर्य धारण कर संक्षेप में बताओ कि तुम्हारा जन्म स्थान कहाँ है ? तुम यहाँ कैसे आये ? क्या यह तुम्हारी सगी बहन है ? क्या तुम्हारे माता-पिता सचमुच ही संसार को छोड़कर दूसरे लोक को सुशोभित कर चुके हैं ? तुम्हारे पिता, पितामह आदि पूर्वपुरुषों की संपत्ति कहाँ है ? तुम्हारा उद्देश्य क्या है ?" इत्यादि।

यह सुनकर आँखों और मुँह को पोंछकर गला रूँधने वाले आँसुओं को किसी तरह रोक कर, नील कमल पर मँड़राते भौंरों के समान घुँघराले

रञ्जितान् कुञ्चित-कुञ्चितान् मेचकान् कचानपसार्य निस्तन्द्रेण मन्द्रेण स्वरेण गौरसिंहो वक्तुमारभत—

"अस्ति कश्चन धैर्य-धारि-धुरन्धरैः, धर्मोद्धार-धौरेयैः, सोत्साह-साहस-चञ्चच्चन्द्रहासैः, सुशक्ति-सुशक्तिभिः, सद्यश्छिन्न-परिपन्थि-गल-गलच्छोणित-च्छुरित-च्छन्न-च्छुरिकैः, भयोद्भेदनभिन्दिपालैः, स्व-प्रतिकूल-कुलोन्मूलनानुकूल-व्यापार-व्यासक्त-शूलैः, घन-विघ्न-

अपसार्य=अपवार्य। निस्तन्द्रेण=तन्द्राशून्येन, मन्द्रेण=गम्भीरेण।

अस्ति कश्चन राजपुत्रदेश इति सम्बन्धः। देशं विशिनष्टि-धैर्यधारिधुरन्धरैः=विशालधीरताशालिभिः। धर्मोद्धारे धौरेयैः=अग्रेसरैः। सोत्साहेन=साध्यवसायेन, साहसेन चञ्चन्तः=चलन्तः, चन्द्रहासाः=असयो येषां तैः। सुशोभनायाः, अकुण्ठितायाः, शक्तेः=कृपाण्याः, सुशक्तिः=शोभनसामर्थ्यं येषां तैः। सद्यश्छिन्नेभ्यः=तत्कालकृत्तेभ्यः, परिपन्थिनाम्=शत्रूणाम्, गलेभ्यः=कण्ठेभ्यः, गलताम्=स्रवताम्, शोणितानाम्, छुरितैः=बिन्दुभिः, छन्नाः=लिप्ताः, छुरिकाः=असिधेनवो येषां तैः। भयोद्भेदना भिन्दिपाला येषां तैः। भिन्दिपालाः=नालिकास्त्राणि, "पिस्तौल" इति हिन्दी। स्वप्रतिकूलानाम्=शत्रूणाम्, कुलानाम्=अन्वयानाम्, उन्मूलनानुकूलव्यापारेषु=विध्वंसनोचितकर्त्तव्येषु,व्यासक्तानि=संलग्नानि, शूलानि=कुन्ता येषां तैः। घनानाम्=विपुलानाम्, विघ्नानाम्=प्रत्यू-

काले बालों को हटा कर आलस्यहीन गम्भीर स्वर में गौरसिंह ने कहना प्रारम्भ किया।

"धैर्य धारण करने वालों में अग्रगण्य, धर्म के उद्धार में अग्रसर, उत्साहपूर्ण साहस से चमकती तलवारों वाले, सामर्थ्यशाली कृपाणों वाले, शत्रुओं के ताजे कटे गले से बहने वाली रुधिर बिन्दुओं से लिप्त छुरों वाले, भय दूर करने वाली पिस्तौलों वाले, विपक्षियों के संहार में लगे शूलों वाले, भयंकर घर्घर ध्वनि से विघ्न समूह को दूर करने वाली

विघट्टक-घर्घराघोष-घोर-शतघ्नीकैः, प्रत्यर्थि-शुण्डि-शुण्डा-खण्ड-नोद्दण्ड-भुशुण्डीकैः, प्रचण्ड-दोर्दण्ड-वैदग्ध्य-भाण्ड-काण्ड-प्रकाण्डैः, क्षत्रियवर्यैरार्यवर्यैरर्यवर्यैश्च व्याप्तो राजपुत्र-देशः।

यत्र कोष-पूरिताः काञ्चनमया इव सानुमन्तः, महार्ह-मणि-गण-जटिल-जाम्बूनद-भूषण-भूषिता गन्धर्वा इव जनाः, विचित्र-

---

ष्ठानाम्, शत्रुकृतोपद्रवाणां, विघट्टिकाः = विमर्दिकाः। सामानाधिकरण्यात् पुंवत्त्वम्, घर्घराघोषेण = घर्घरध्वनिना, अथवा घर्घर इति आघोषो यासां ताः, घोराः = भयावहाः, शतघ्न्यः = शतमारिकाः, येषां तैः, शतघ्नी लोके "तोप" इति कथ्यते। णभंतुभ-हिंसायामित्यस्मान्निष्पन्न—"तोभ" शब्दाप-भ्रंशोऽसौ "तोप" शब्द इति "सप्तद्वीपा वसुमती" त्यादिभाष्यतत्त्ववेदिनः। प्रत्यर्थि-शुण्डिनाम्=शत्रुकरिणाम्, शुण्डानाम्=कराणाम्, आखण्डने= कर्तने, उद्दण्डा भुशुण्ड्यो येषां तैः। प्रचण्डदोर्दण्डवैदग्ध्य-भाण्डानि= प्रबलबाहुदण्डपाण्डित्यसदनानि, यानि काण्डप्रकाण्डानि=प्रशस्तबाणा येषां तैः। "प्रशंसावचनैश्च" इति प्रकाण्डपदस्य परनिपातः। प्रकाण्डं क्लीब-मजहल्लिङ्गम्। आर्येषु वर्यैः=ब्राह्मणैः। क्षत्रियाणां प्रथमोच्चारणं तु तेषामेव तत्राधिक्यप्रदर्शनार्थम्, संग्रामे तेषामेव प्राबल्यबोधनार्थञ्च। ब्राह्मणा अपि देशरक्षणार्थं सन्नद्धा एवासन्निति तत्त्वम्। अर्याः=वैश्याः। "अर्यः स्वामिवैश्ययोः" विश्वः। कोषपूरिताः=निधानपूर्णाः। काञ्चनमया इव=हिरण्मया इव। सानुमन्तः=शिखरिणः। महार्हाणाम्=बहुमूल्या-नाम्, मणीनाम्=हीरकादीनाम्, गणेन=समूहेन, जटितैः=मिलितैः, जाम्बूनदभूषणैः=सुवर्णालंकरणैः, भूषिताः=शोभिताः। गन्धर्वा इव=

तोपों वाले, शत्रुओं के हाथियों की सूँड काटने में दक्ष बन्दूकों वाले, तथा प्रबल भुजदण्डों की कुशलता के पात्र और प्रशस्त बाणों वाले क्षत्रिय-वीरों, ब्राह्मणश्रेष्ठों और वैश्यवरों से व्याप्त, एक राजपूताना नाम का देश है। जहाँ के सोने की खानों से पूर्ण पर्वत सुमेरु के समान और बहुमूल्य मणि माणिक्य जटित स्वर्णाभूषण पहनने वाले मनुष्य गन्धर्वों

गवाक्ष-जालाट्टालिकाङ्गण-कपोतपालिका - चत्वर - गोष्ठ - भित्तिकाः, विश्वकर्मरचिता इव गृहाः, सादि-करस्थ-कशाग्र-चालन-सङ्केत-सञ्चलितसप्ति-समूह-शफ-सम्मर्द-समुद्धूत-धूलि-धूसरिताश्च मार्गाः। अस्ति तस्मिन्नेव राजपुत्रदेशे उदयपुरनाम्नी काचन राजधानी, यत्रत्याः क्षत्रियकुलतिलका यवनराज-वशंवदता-कर्दम-सम्मर्दनं कदाऽप्या-

---

देवयोनिविशेषा इव। विचित्राः=विविधाः गवाक्षाद्या येषु तादृशाः। गवाक्षः=वातायनम्, "खिड़की" "झरोखा" इति हिन्दी। जालम्=वायुप्रवेशार्थमार्गः, "जाली" इति हिन्दी। अट्टालिका=प्रस्तरादिनिर्मितं महासदनम्। अङ्गणम्=अजिरम्। कपोतपालिका=काष्ठरचितं पक्षिवासस्थानं विटङ्कम्। चत्वरम्=लक्षणया चतुष्पथबोधकम्। अङ्गणस्य पृथगुच्चारणेन नात्र तद्वाचकतेति वेदितव्यम्। गोष्ठम्=गोशाला। भित्तिः=कुड्यं येषां ते। विश्वकर्मणा=देवशिल्पिना, रचिता इव=निर्मिता इव। सादिकरस्थानाम्=अश्ववारहस्तस्थितानाम्, कशानाम्=अश्वताडनीनाम्, अग्रस्य=प्रान्तस्य, चालनसङ्केतेन=धावनप्रेरणेन, सञ्चलितस्य=गच्छतः, सप्तिसमूहस्य=वाजिनिवहस्य, शफसम्मर्दैः=खुरकुट्टनैः, समुद्धूताभिः=उच्छलिताभिः, धूलिभिः=रजोभिः, धूसरिताः=ईषच्छुभ्राः। 'ईषत्पाण्डुस्तु धूसरः' इत्यमरः। यवनराजवशंवदतैव कर्दमः;

के समान हैं। जहाँ के, नाना प्रकार की खिड़कियों, झरोखों, रोशनदानों, अटारियों, आँगनों, कबूतर पालने के दरबों, चबूतरों, गोशालाओं और दिवारों वाले महल, विश्वकर्मा द्वारा बनाये गये से लगते हैं, और जहाँ की सड़कें घुड़सवारों के हाथ को चाबुक के अग्रभाग के हिलने से चलने का संकेत पाकर द्रुतगति से दौड़ने वाले घोड़ों के खुरों से खुद कर उडने वाली धूल से व्याप्त हैं। उसी राजपूताना देश में उदयपुर नाम की एक राजधानी है, जहाँ के क्षत्रियकुलतिलक राजाओं ने, मुसलमान राजाओं की अधीनता रूप कीचड़ से अपने को कभी भी

त्मानं कलङ्कयामासुः” इति कथयत्येव गौरसिंहे; ब्रह्मचारिगुरुरपि कोष्णं निःश्वस्य—

“को न जानीते उदयपुर-राज्यम्? यदीय-चित्रपूर-दुर्गे परस्सहस्राः क्षत्रिय-कुलाङ्गनाः, कमला इव विमलाः, शारदा इव विशारदाः, अनसूया इवानसूयाः, यशोदा इव यशोदाः, सत्या इव सत्याः,

---

तत्सम्मर्दैः=तल्लेपैः। न कलङ्कयामासुः=न सदूषणं चक्रुः।

चित्रपूरदुर्गे=“चित्तौड़ गढ़” इति नितरां प्रसिद्धे। केचित् ‘चित्रकूट’ शब्दापभ्रंशं मन्यन्ते “चित्तौड़” शब्दम्। भगवद्रामभद्रतनयलववंशीया हि भूमिपाला उदयपुरीया इति रामविपिनचित्रकूटनाम्ना तत्प्रसिद्धतायामनुकूलस्तर्कः। अमरमङ्गले तर्करत्नभट्टाचार्यास्तु चितम् व्यूढम्, उरो यस्येति व्याख्याय “चितोरः” शब्दमवागृह्णन्निति वेदितव्यम्। कमला इव=श्रिय इव। “कमला श्रीर्हरिप्रिये” त्यमरः। शारदा=सरस्वती। विशारदाः=पण्डिताः। शारदा कथं विगतशारदेति विरोधाभासः। अनसूया=अत्रिपत्नी। अनसूयाः=असूयारहिताः। असूया=गुणेषु दोषाविष्करणम्। यशोदा=कृष्णमाता। यशोदाः=यशोदायिन्यः। न केवलं पतिव्रताभिस्तासामेव कीर्तिरेधते अपि तु तत्पतीनामपि। “व्यालग्राही यथा व्यालं बिलादुद्धरते बलादि”ति मानवश्च शासनमत्र भवति। सत्या=सत्यभामाभिधाना श्रीकृष्णपत्नी, नामैकदेशग्रहणन्यायात्। सत्याः=सत्यभाषिण्यः। अर्श आद्यजन्तम्।

कलंकित नहीं होने दिया। गौरसिंह ने इतना ही कहा था कि ब्रह्मचारी गुरु उष्ण निःश्वास लेकर, धीरे से बोले,

“उदयपुर राज्य को कौन नहीं जानता? जिसके चित्तौड़दुर्ग में हजारों क्षत्राणियाँ जो लक्ष्मी के समान विमल, सरस्वती के समान बुद्धिमती, अनसूया के समान असूयारहित, यशोदा के समान यश देने वाली, सत्यभामा के समान सत्य बोलने वाली, रुक्मिणी के समान स्वर्णाभूषणों से

रुक्मिण्य इव रुक्मिण्यः, सुवर्णा इव च सुवर्णाः, सत्य इव सत्यः, सम्भाव्यमान-यवन-बलात्कार-धिक्कारोर्जस्वल-तेजस्काः, योगाग्निनेव पतिविरहाग्निनेव स्वक्रोधाग्निनेव च सन्दीपितासु ज्वाला-जालाञ्चितासु चितासु, स्मारं स्मारं स्वपतीन्, पश्यतामेव स्वकीयानां परकीयाणां च क्षणात् पतङ्गतामङ्गीकृत्य, गङ्गाधरस्याङ्गभूषणतामगमन्"—इति मन्दं व्याजहार।

तदाकर्ण्य करुणया दुःखेन कोपेन आश्चर्येण वैमनस्येन

रुक्मिणी=कृष्णपत्नी। रुक्मिण्यः=सुवर्णवत्यः। सुवर्णा इव=कनकपदार्था इव। सुवर्णाः=शोभनवर्णवत्यः। सुन्दर्य इति यावत्। सती=शङ्करगेहिनी। सत्यः=पतिव्रताः। "सती साध्वी पतिव्रता" इत्यमरः। यशोदादिषु व्यक्तिमात्रवाचकेषु बहुत्वं गौरवप्रदर्शनाय, तन्मुखेनोपमानोपमेयभावनिर्वाहाय च। सम्भाव्यमानस्य=अनुमीयमानस्य, यवनबलात्कारस्य, धिक्कारे=तिरस्करणे, ऊर्जस्वलम्=बलवत्, तेजो यासां ताः। सन्दीपितासु=सुप्रज्वलितासु। कीदृशाग्निहेतुकं प्रज्वलनमित्युत्प्रेक्षते—योगाग्निनेव=योगसामर्थ्यात्समुत्पन्नेनाग्निनेव। पत्युर्विरहाज्जायमानेन वह्निनेव। स्वक्रोधादुद्भूतदहनेनेव। ज्वालाजालाञ्चितासु=कीलसमूहसमवेतासु। "वह्नेर्द्वयोर्ज्वालकीलावि" त्यमरः। पतङ्गताम्=शलभताम्। गङ्गाधरस्याङ्गभूषणम्=भस्म, तद्भावम्, भस्मताम्।

"पतिलोकमभीप्सन्ती" त्यादिभिः पतिलोकप्राप्तेः फलस्य प्रदर्शितत्वेऽपि शिवधामप्राप्त्याद्यर्थोऽपि उपलक्षणविधया घटत एवेति मन्तव्यम्।

अलंकृत, सोने के समान रंगवाली, पार्वती के समान पतिव्रता थीं तथा जिनका तेज यवनों के सम्भावित बलात्कार को धिक्कारने में समर्थ था, मानो योगाग्नि, पतिविरहाग्नि या क्रोधाग्नि से प्रदीप्त की गई ज्वालाओं वाली चिता में अपने और परायों के देखते ही देखते, अपने पतियों का बार बार स्मरण करती हुई, पतंग की तरह जलकर (शंकर के शरीर का भूषण बन गईं अर्थात्) भस्म हो गईं।"

यह सुनकर करुणा, दुःख, क्रोध, आश्चर्य, वैमनस्य और ग्लानि से,

ग्लान्या च क्षालित-हृदयेषु निखिलेषु गौरसिंहः पुनः स्व-वृत्तान्तं वक्तुमुपचक्रमे यत्—

तद्राज्यस्यैवान्यतमो भू-स्वामी खड्गसिंहो नामास्मत्तात-चरण आसीत्।

खड्गसिंहनाम्ना परिचित इव ब्रह्मचारी समधिकमबाधित। स च पूर्ववदेव वक्तुं प्रावृतत्।

अस्मज्जननी तु बालावेवाऽऽवां स्तनन्धयामेव चास्मत्सहोदरीं सौवर्णीं परित्यज्य, भुवं विरहयाम्बभूव। अस्मत्तातचरणाश्च कैश्चित्तुरुष्कैर्लुण्ठकप्रायैर्युद्ध-क्रीडां कुर्वन् पृष्ठतः केनापि विशालभल्लेनाऽऽहतो

करुणाया क्षालितहृदयेष्वित्यादिरूपेण तृतीयान्तषट्कस्य क्षालनेऽन्वयः, क्षालनञ्चात्रोपचारेण व्यापनार्थकम्, करुणाद्यतिशयव्यञ्जनाय च तदाश्रयणम्, दीपकालङ्कारः।

समधिकम्=अत्यन्तम्, अबाधित=पीडामन्वभूत्। प्रावृतत्=प्रवृत्तः। स्तनन्धयाम्=पयःपानरताम्। शिशुमित्यर्थः। विरहयाम्बभूव=परितत्याज। तुरुष्कैः="तुर्क" इति हिन्दी। वीराणां गतिम्=उत्तमं लोकम्।

"द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः॥" इति स्मृतिः।

सभी लोगों के हृदयों के धुल (व्याप्त हो) जाने पर, गौरसिंह ने पुनः अपना वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया कि, 'उसी राज्य के अन्यतम जमींदार खड्गसिंह हमारे पिता थे।'

खड्गसिंह के नाम से परिचित से ब्रह्मचारी ने अत्यधिक पीडा का अनुभव किया। वह पहले की ही भाँति कहता गया—

हम दोनों अभी बालक ही थे, और हमारी बहन सौवर्णी अभी दूध पीती बच्ची ही थी, कि हमारी माँ ने हमें छोड़कर, भूलोक को विरहित कर दिया (मर गई), हमारे पिता जी ने, कुछ लुटेरे तुर्कों से लड़ते हुए, पीछे

वीरगतिमगमत् । ततः पुरोहितेनैव पाल्यामानावावामपि यमलौ भ्रातरौ गौर-श्यामौ एकदा मित्रैः सहाऽऽखेटार्थं निःसृतौ तुरगौ चालयन्तौ मार्ग-भ्रष्टौ अकस्मात् काम्बोजीय-दस्यु-वारेणाऽऽवृतौ तेनैवापहृत-महार्ह-भूषणौ गृहीताश्वौ बद्धौ च सहैव वनाद्वनमनायिष्वहि । "यद्यपि शत्रुसन्ताना निर्दयं हन्तव्या एव; तथाऽपि नासा-भूषण-मौक्तिके इव वीणा-तुम्बाविव श्यामकर्ण-हयाविव च मनोहर-रूपौ समानाकारौ समानवयस्कौ समान-परिणाहौ समान-स्वभावौ समान-स्वरौ समान-गुणौ केवलं वर्णमात्रतो भिन्नौ राम-कृष्णाविवामू गौर-श्यामौ बालकौ । तदवश्यं बहुमूल्याविति कुत्रापि

यमलौ=सहजौ । "जुड़वाँ" इति हिन्दी । मार्गभ्रष्टौ=विस्मृतमार्गौ । काम्बोजीयदस्युवारेण=कम्बोजदेशीयतस्करसमूहेन । अपहृतमहार्हभूषणौ=लुण्ठितबहुमूल्यालंकरणौ । बहुव्रीहिः । अनायिष्वहि=नीतौ । शत्रुसन्तानाः=रिपुवंशाः । "वंशोऽन्ववायः सन्तान" इत्यमरः । समानपरिणाहौ=समविशालतौ । वर्णमात्रतो भिन्नौ, ज्येष्ठस्य शुभ्रत्वात् कनिष्ठस्य च श्यामलत्वात् ।

से, किसी के द्वारा भीषण भाले का आघात कर देने के कारण, वीरगति प्राप्त की । तदनन्तर पुरोहित के ही द्वारा पाले जाते हुए हम दोनों जुड़वाँ भाई गौर और श्याम, एक दिन मित्रों के साथ शिकार खेलने निकले और घोड़े पर चलते चलते रास्ता भूल गए । अकस्मात् कम्बोज देश के लुटेरों ने घेर लिया, हमारे बहुमूल्य आभूषण और घोड़े छीन लिये, और हमें बाँध कर अपने साथ वे एक जंगल से दूसरे जंगल ले गए । वे आपस में बातचीत करते थे कि, 'यद्यपि शत्रुओं की सन्तान की निर्दयतापूर्वक हत्या कर देनी चाहिये, तथापि ये दोनों बालक नथ के दो मोतियों की भाँति वीणा की दो तुम्बियों की भाँति और दो श्यामकर्ण घोड़ों की भाँति सुन्दर रूप वाले हैं । समान आकार, वय, विशालता, स्वभाव, स्वर और गुणवाले केवल वर्ण मात्र से भिन्न ये दोनों गौर और श्याम बालक बलराम और

कस्यचिदपि महाधनस्य हस्ते विक्रयणीयौ" इति तेषां घोरतरान् सँल्लापान् शृण्वन्तौ "कथं पलायावहे? कथं वा मुच्यावहे?" इत्यनवरतं चिन्तयन्तौ कथं कथञ्चित् कञ्चित् समयमयापयाव।

अथैकदा कञ्चित्पान्थ-सार्थमवलोक्य तल्लुलुण्ठयिषया सर्वेष्वपि तस्य पन्थानमेवानुसृतेषु आवाभ्यामपि पलायनावसरो लब्धः। यावच्चाऽऽवां वस्त्राणि परिधाय, परिकरे असिधेनुकां बद्ध्वा, बाहुमूले निस्त्रिंशं चर्म्म च लम्बयित्वा, तद्भुशुण्डिकानामेवैकामेकामल्पीयसीमात्मोत्तोलन-योग्यां सज्जां करे धृत्वा, उपकारिकाया बहिर्निर्गतौ; तावद् दृष्टम्-यदेको रक्षकः खड्गहस्तो नौ बहिर्गमनाद् वारयतीति।

पान्थसार्थम्=पथिकव्रजम्। तल्लुलुण्ठयिषया=तस्य पान्थसार्थस्य धनापजिहीर्षया, परिकरे=गात्रबन्धे। "भवेत्परिकरो व्राते पर्यङ्कपरिवारयोः। प्रगाढगात्रिकाबन्धे विवेकारम्भयोरपी" ति विश्वः। असिधेनुकाम्=छुरिकाम्, "छुरिका चासिधेनुके" त्यमरः। बाहुमूले=कक्षे, निस्त्रिंशम्=खड्गम्। आत्मोत्तोलनयोग्याम्=स्वोत्थापनार्हाम्। सज्जाम्=गोलिकापूर्णाम्। सिद्धामिति यावत्। उपकारिकायाः=पटभवनात्। "उपकार्योपकारिके" त्यमरः। "तम्बू" इति हिन्दी।

कृष्ण के समान हैं। ये अवश्य ही बहुमूल्य हैं, अतः किसी बड़े सेठ के हाथ इन्हें बेच देना चाहिये, उनकी इस भीषण बातचीत को सुनते हुए, तथा 'किस प्रकार भगें? किस प्रकार छूटें?' इसी की निरन्तर चिन्ता करते हुए, हमने जैसे तैसे कुछ समय बिताया।

एक दिन किसी पथिक समूह को आता देख, उसे लूटने की इच्छा से सभी के उसी ओर चले जाने पर हम लोगों को भागने का मौका मिल गया। कपड़े पहन कर, कमर में छुरा बाँधकर, बगल में ढाल तलवार लटका कर, उन्हीं की बन्दूकों में से अपने योग्य एक एक छोटी (भरी) बन्दूक हाथ में लेकर, हम दोनों ज्यों ही खेमे के बाहर आये कि हमने देखा कि एक पहरेदार जिसके हाथ में तलवार है, हमें बाहर निकलने से रोक रहा है।

अथाऽऽवाभ्यां भुशुण्डिकां सन्धायोक्तम्—"अलमलं कदर्य ! किमप्यधिकं वक्ष्यसि तत्स्थानात्पादमेकमपि च प्रचलिष्यसि चेत्; क्षणेन परेतपति-पालित-पुरी-पान्थं विधास्याव:" इत्याकलय्य भयेन काष्ठभूते तस्मिन् मूढ-रक्षके; मयि च तथैव बद्ध-लक्ष्ये स्थिते; मदिङ्गितानुसारेण श्यामसिंहस्तस्या एवोपकार्य्यायाः प्रान्ते बद्धानां फेनवर्षिणामश्वानां कौचिच्चण्डवेगौ श्यामकर्णावाजानेयौ उन्मुच्य, वल्गामायोज्य सर्वतः सज्जीकृत्य चैकमारुह्य रक्षकोपरि भुशुण्डिकां तथैव सज्जीकृतवान्। ततश्चाहमप्यपरं हयमारुह्य तस्य ग्रीवामास्फोट्य नर्तयन् रक्षकं साम्रेडं तर्ज्जनैर्हतोत्साहं मृतप्रायं च विधाय, श्यामसिंहमिङ्गितवान्।

परेतपतिना=यमेन, पालितायाः=रक्षितायाः, पुर्याः पान्थम्। मूढश्चासौ रक्षकः, तस्मिन्। भयेन काष्ठभूते "डर से काठ हुए" इति भाषायाम्। किञ्चिदकुर्वाणः कोलाहलमपि न कार्षीदिति मूढत्वम्। फेनवर्षिणाम्, भोजनकालोपरिष्टात् सुखोपविष्टाः फेनं वमन्त्यश्वा इति स्वभावः, आजानेयौ=कुलीनौ। "शक्तिभिर्भिन्नहृदयाः स्खलन्तश्च पदे पदे। आजानन्ति यतः संस्थामाजानेयास्ततः स्मृताः ॥" इत्यश्वशास्त्रम्। तर्जनैः=भर्त्सनैः। इङ्गितवान्=चेष्टया बोधितवान्, गन्तुमिति शेषः।

हम दोनों ने बन्दूक तान कर कहा, 'बस, बस, नीच ! यदि कुछ भी अधिक बोला, या उस जगह से एक कदम भी चला तो यमपुरी का अतिथि बना देंगे।' यह सुनकर वह पहरेदार डर से काठ हो गया, मैं वैसे ही निशाना साधे खड़ा रहा, मेरे इशारे के अनुसार श्यामसिंह ने उसी खेमे के पास बँधे, फेन उगल रहे घोड़ों में से दो शीघ्र गामी, अच्छी जाति के श्यामकर्ण घोड़ों को खोलकर, लगाम लगा कर, उन्हें सब तरह से सुसज्जित कर, एक पर चढ़कर, उस पहरेदार पर उसी तरह बन्दूक तान ली। उसके बाद मैंने भी दूसरे घोड़े पर बैठकर उसको गर्दन थपथपा कर, उसे नचाते हुए, धमकियों से पहरेदार को निरुत्साहित और अधमरा सा कर के, श्यामसिंह को चलने का इशारा किया।

अथाऽऽवां द्वावपि वायुवेगाभ्यामश्वाभ्यामज्ञातेनैवापथा, उपत्यकात उपत्यकाम्, वनाद् वनम्, प्रान्तराच्च प्रान्तरमुल्लङ्घमानौ तेनैव दिनेन गव्यूति-पञ्चकं प्रयातौ। सायं समये च कामपि ग्रामटिकामासाद्य अन्यतमस्य गृहस्य द्वारं गतौ। तच्च हनुमन्मन्दिरमवगत्य तस्मिन् प्रविष्टौ तदध्यक्षेण केनचित् साधुना च सस्वागतमाग्रहेण वासितौ, तत्रैव निवासमकुर्ष्वहि।

अथ तत्प्रदत्तमेव हनूमत्प्रसादीभूतं मोदकादि समास्वाद्य, तस्यैव भृत्येनाऽऽनीतं यवस-भारं वाजिनोरग्रे पातयित्वा, मन्दिरस्यैव बहिर्वेदिकायामितस्ततः पर्यटन्तौ मुहूर्त्तमावामवास्थिष्वहि।

ततश्च दुग्धधाराभिरिव प्रथमं प्राचीं संक्षाल्य, भसितच्छुरि-

अपथा = कुमार्गेण, प्रान्तरम् = दूरशून्यो मार्गः। "प्रान्तरं दूरशून्योऽध्वे" त्यमरः। "पांतर" इति हिन्दी। वासितौ = स्थापितौ।

यवसभारम् = घासभारम्। अवास्थिष्वहि = स्थितौ, "समवप्रविभ्यः स्थ" इत्यात्मनेपदम्।

ततश्च समुदिते चैत्रचन्द्रखण्डे परितो दृक्पातमकार्षमिति सम्बन्धः।

हम दोनों हवा के समान तेज उन घोड़ों से, अनजाने रास्ते से ही, उपत्यका से उपत्यका, एक जंगल से दूसरे जंगल और एक उजाड़ मार्ग से दूसरे उजाड़ मार्ग होते हुए, उसी दिन दस कोस निकल गए। शाम को एक छोटे से गाँव में पहुँचकर वहाँ के एक अच्छे घर के दरवाजे पर गये। उसे हनुमान का मन्दिर जानकर, उसमें घुस गए। उसके अध्यक्ष साधु ने स्वागतपूर्वक साग्रह हमें वहाँ रखा और हम वहीं रह गए।

मन्दिराध्यक्ष के द्वारा दिये गये हनुमान जी के प्रसाद के लड्डू आदि खाकर, और उन्हीं के नौकर द्वारा लाई गई घास को घोड़ों के आगे डाल कर, मन्दिर के बाहर के चबूतरे पर इधर-उधर घूमते हुए, हम कुछ क्षण रुके।

तदनन्तर, पहले प्राची दिशा को मानो दुग्धधाराओं से धोकर,

तामिव विधाय, चन्दनैरिव संचर्च्य, कुन्द-कुसुमैरिवाऽऽकीर्य, गगन-सागर-मीने इव, मनोज-मनोज्ञ-हंसे इव, विरहि-निकृन्तन-रौप्य-कुन्त-प्रांते इव, पुण्डरीकाक्ष-पत्नी-कर-पुण्डरीकपत्रे इव शारदाभ्र-सारे इव, सप्तसप्ति-सप्ति-पाद-च्युते राजत-खुरत्रे इव, मनोहरता-महिला-ललाटे इव, कन्दर्प-कीर्तिलताङ्कुरे इव, प्रजा-जन-नयन-कर्पूरखण्डे

सुधार्दीधितिदीधितिभिर्भासितत्वमुत्प्रेक्षते--दुग्धधाराभिरिवेति। भसितम् =भस्म, "भूतिर्भसितभस्मनी" इत्यमरः। तच्छुरितामिव=तद्भूषितामिवे-त्युत्प्रेक्षा, संचर्च्य=अनुलिप्य। देवीं विधिवत्संपूज्य जना उदयं प्राप्नुवन्ति यथा तथा सुधादीधितिः प्राचीं संपूज्योदयं लेभ इति ध्वनयति। चन्द्रखण्डं विशिनष्टि--गगनम्=नभः तदेव सागरः=समुद्रः तस्य मीने=मत्स्य इवेति रूपकानुविद्धोत्प्रेक्षा। मनोजस्य=मनसिजस्य, मनोज्ञे=चेतोहरे, हंस इव। विरहिणाम्=वियोगिनाम्, निकृन्तनाय= कर्त्तनाय, रौप्यस्य=रजतवदवभासमानस्य, कुन्तस्य=भल्लस्य, प्रान्त इव पुण्डरीकाक्षपत्न्याः=विष्णुस्त्रियाः लक्ष्म्याः, करपुण्डरीकपत्रे= हस्तस्थकमलदले। शरदि भवं शारदम्, अभ्रम्=मेघः, तत्सारे= तत्तत्त्वांशे। सप्तसप्तिः=सूर्यः, तस्य सप्तिः=अश्वः। तत्पादच्युते= तत्पादपतिते। राजते=रौप्ये च तस्मिन्, खुरत्रे="नाल" इति लोके ख्याते। मनोहरस्य भावो मनोहरता=सुन्दरता, सैव महिला= वनितेति रूपकम्, तल्ललाटे। सुन्दर्याःस्त्रिया ललाटं चन्द्रार्धखण्डसदृशमिति सुप्रसिद्धमुपमानोपमेयविदाम्। कन्दर्पकीर्त्तिरेव लता=व्रततिः, तदङ्कुर-तुल्ये। शशाङ्केन हि। कन्दर्पकीर्तिर्वर्ध्यते प्रजाजननयनानाम्, कर्पूर-

भस्म से लिप्त कर, चन्दन-चर्चित-सा कर, कुन्दकुसुमों से व्याप्त-सा कर, आकाश-समुद्र के मत्स्य के समान, कामदेव के सुन्दर हंस के समान, विरहियों को वेधने वाले चाँदी के भाले के अग्रभाग के समान, लक्ष्मी के हाथ के कमल की पंखुरी के समान, शरत्कालीन मेघों के सारभूत तत्त्व के समान, सूर्य के घोड़े के पैर से गिरी चाँदी के नाल के समान, सुन्दरता रूपी महिला के ललाट के समान, कामदेव की कीर्तिलता के

इव, तमी-तिमिर-कर्त्तन-शाणोल्लीढ-निस्त्रिंशे इव च समुदिते चैत्र-चन्द्र-खण्डे; तत्प्रकाशेन स्फुटं प्रतीयमानासु सर्वासु दिक्षु, अहं परितो दृक्पातमकार्षम्, अद्राक्षञ्च यदुत्तराभिमुखम्; तद् विशालं मन्दिर-मस्ति, तद्द्वारस्योभयतः सुधालिप्त-भित्तिकायां विशालैः सिन्दूराक्षरैः 'जयति हनुमान्' 'रामदूतो विजयतेतराम्' 'विजयतामक्षक्षयकारी'-इति बहूनि वाक्यानि गदादि-चिह्नानि च लिखितानि सन्ति। तत उत्तरस्यामेकः स्वल्पः शैलखण्डः, पूर्वस्यां गहनं वनम्, पश्चिमायां च स्वल्पमेकं पल्वलमासीत्। यद्यप्यसौ पर्वत-खण्डो नात्यन्तं भयानक इव, तथाऽपि विविधगण्डशैलावृतः, झर-झर्झर-ध्वनि-पूरित-

---

खण्डे = हिमवालुकाखण्डे। तमीतिमिरकर्त्तनाय = राज्यन्धकारनाशाय। शाणेन = कषेण, उल्लीढे = तेजिते, निस्त्रिंशे = खड्गे। यद्यपि खड्गधारा-श्यामतावर्णनमेव कविसमयख्यात्यनुकूलम्, तथापि शाणोल्लीढत्वस्य चमत्कृतिविशेषाधायकत्वेनेह इत्थमभिहितमिति वेदितव्यम्। प्रतीया-मानासु = दृश्यमानासु। सुधया = चूर्णेन, "चूना" इति हिन्दी, लिप्तायां भित्तिकायाम्। अतिशयेन, विजयते विजयतेतराम्, "तिङश्चेति" तरपि "किमेत्तिङव्यये" त्याम्। पल्वलम् = अल्पोदकं

अंकुर के समान और लोगों की आँखों के लिए कपूर के समान चैत्रमास के बालचन्द्र के उदित हो जाने तथा उसके प्रकाश से सभी दिग्भागों के स्पष्ट दृष्टिगोचर होने पर मैंने चारों ओर दृष्टिपात किया और देखा कि उत्तराभिमुख जो विशाल मन्दिर है, उसके मुख्य द्वार के दोनों ओर, चूने से पुती हुई दीवारों पर, बड़े-बड़े अक्षरों में, सिन्दूर से 'जयति हनुमान्' 'रामदूतो विजयतेतराम्' 'विजयतामक्षक्षयकारी' इत्यादि अनेक वाक्य और गदा आदि चिह्न अंकित हैं। उस मन्दिर के उत्तर एक छोटी-सी पहाड़ी, पूर्व में, घना जंगल और पश्चिम की ओर एक छोटा-सा तालाब था। वह पहाड़ी यद्यपि बहुत भयानक-सी नहीं थी, फिर भी चट्टानों से घिरी, झरनों की झर-झर ध्वनि से दिशाओं को पूरित करने

दिगन्तरालः, महीरुह-समूह-समावृतः, उच्चावच-सानु-प्रचय-सूचित-विविधकन्दरश्चाऽऽसीत्। चन्द्र-चन्द्रिका-चाकचक्यात् स्फुटमवालोक्यन्तैतस्योपत्यकाः।

ततश्च झिल्ली-झङ्कारेणेव केनचित् विलक्षणेन अनाहतध्वनिनेव पर्य्यपूर्यत वसुधा, विचित्र एष कश्चन परस्सहस्र-तानपूर-षड्जस्वर-सोदरो वन-रात्रि-ध्वनिः,तमेव स्वरं गम्भीरं विशकलय्य आकर्णयता समश्रावि कीचकध्वनिरपि, तत्राप्यवदधता साक्षादकारि मधुकर-

---

सरः। झरस्य=वारिप्रवाहस्य, "वारिप्रवाहो निर्झरो झर" इत्यमरः, झर्झरध्वनिना पूरितानि दिगन्तरालानि यस्य सः महीरुहाणाम्=वृक्षाणाम्, समूहेन समावृतः= आच्छन्नः, अतिघनीभूतवृक्षक इति भावः। उच्चावचानाम्=निम्नोन्नतानाम्, सानूनाम्=अद्रिनितम्बानाम्, प्रचयेन=समूहेन, सूचिताः=प्रकटीकृताः, विविधाः=अनेकाः, कन्दरा यस्य सः। चन्द्रचन्द्रिकाचाकचक्यात्=ज्योत्स्नादीप्तेः।

झिल्ली=भृङ्गारी, तस्या झङ्कारेण। रात्रावदृश्या स्वनति झिल्ली प्रावृट्काले। विलक्षणेन=विजातीयेन। अनाहतध्वनिना=अव्यक्तशब्देन, इवेन तुल्यत्वम्। वास्तविकोऽनाहतध्वनिस्तु योगिगम्य एव। परस्सहस्राणाम्, तानपूराणां यः षड्जस्वरः, तत्सोदरः=तत्तुल्यः। विशकलय्य=विविच्य। कीचकध्वनिः=वेणुविशेषशब्दः। "वेणवः कीचकास्ते स्युर्ये स्वनन्त्यनिलोद्धता" इत्यमरः। समश्रावि=श्रुतः। अवदधता=ध्यानं ददता

वाली और वृक्षों के समूहों से व्याप्त थी तथा उसकी ऊँची-नीची चोटियाँ उसमें अनेक कन्दराओं के होने की सूचना देती थीं। चाँदनी की चमक में इसकी तलहटी के ऊँचे-नीचे भाग स्पष्ट दिखाई पड़ रहे थे।

उसके बाद, झिल्लियों की झंकार के समान किसी अनाहतनाद की-सी विलक्षण ध्वनि से पृथ्वी पूर्ण हो उठी। हजारों तानपूरों के षड्ज-स्वर के समान, वनरात्रि की वह ध्वनि विचित्र थी। उसी स्वर की गम्भीरतापूर्वक विवेचना करके सुनने पर कीचक की ध्वनि भी सुनाई दी।

निकर-झंकारः, पुनरेकाग्रतामङ्गीकुर्वता समाकर्णि स्रोतस्संसरण-सरत्कारः, तस्मिन्नपि च लयमिवाऽऽकलयता समन्वभावि समीरण-समीरित-किशलय-परिप्लवता-प्रभूत-स्वनः, तत्रापि च स्थिरतां बिभ्रता प्रत्यक्षीकृतं सुधा-धारामप्यधरीकुर्वत्, वीणा-रणनमपि विगणयत्, मधु विधुरयत्, मरन्दं मन्दयत्, कल-काकली-कलन-पूजितं कोकिल-कुल-कूजितम्। ततश्च बहूनामेव मधुर-कण्ठानां

साक्षात्कारि=प्रत्यक्षीकृतः। मधुकरनिकरझङ्कारः=द्विरेफव्रातगुञ्जनम्, एकाग्रताम्=एकचित्तताम्। अङ्गीकुर्वता=स्वीकुर्वाणेन। स्रोतसाम्, संसरणस्य=वहनस्य। सवेगचलनस्येति भावः। सरत्कारः=सरदित्यनुक्रियमाणः शब्दः। आकलयता=सम्मेलयता। समीरणेन=पवनेन, समीरितानाम्=सञ्चालितानाम्, किशलयानाम्=पल्लवानाम्, पारिप्लवतया=स्फुरमाणतया, प्रभूतः=प्रचुरः, स्वनः। तत्रापि स्थिरतां बिभ्रता प्रत्यक्षीकृतं कोकिलकुल-कूजितमिति सम्बन्धः। कूजितं विशिनष्टि-सुधाधारामिति। अधरीकुर्वत्=निम्नांशे स्थापयत्, ततोऽपि मधुरतरमिति भावः। विगणयत्=अभिभवत्। मधु= क्षौद्रम्। विधुरयत्=तिरस्कुर्वत्। कला=मधुरा, या काकली=सूक्ष्मोऽव्यक्तध्वनिः, "काकली तु कले सूक्ष्मे ध्वनौ तु मधुरास्फुटे" इत्यमरः, तस्याः कलनेन=अनुरणनेन,

---

उस पर भी ध्यान देने पर भौरों की झंकार सुन पड़ी, पुनः एकाग्र होकर सुनने पर पानी के सोते के बहने की 'सर-सर' आवाज, और उसमें भी लीन हो जाने पर हवा से हिलने वाले कोमल पत्तों की मर्मर-ध्वनि सुनाई पड़ी। और अधिक स्थिर होकर ध्यान देने पर अमृत की धारा को भी नीचा दिखाने वाली, वीणा की ध्वनि का भी तिरस्कार करने वाली मधु की मिठास को लज्जित करने वाली, पुष्परस को भी अपमानित करने वाली, सुन्दर काकली से पूजित, कोयलों की कूक सुन पड़ी। उसके बाद मधुर कण्ठ वाले अनेक जंगली पक्षियों के जोर-जोर से और जल्दी-जल्दी

वन्य-पतत्रिणां स्थगित-मन्थराऽऽरावाः समाकर्णिषत। अथानुभवन् धीर-समीर-स्पर्श-सुखम्, साम्रेडनवलोकयंश्च तारकितं नभः, स्मारं स्मारं स्वगृहस्य, महाचिन्ता-पारावारे इवाहं न्यमाङ्क्षम्। ततः पृष्ठतो भित्तिकामाश्रित्य, करौ कटि-प्रदेशे संस्थाप्य, साम्मुखीन-शिखरि-शिखरे चक्षुषी स्थिरयित्वा, आत्मानमपि विस्मृत्य व्यचारयं यत्—

अहह ! दुरदृष्टोऽस्मि !! धन्यावावयोः पितरौ; यौ सुखिनावेवाऽऽवां परित्यज्य दिवं सनाथितवन्तौ, न तयोरदृष्टे पुत्र-विश्लेष-दुःखं व्यलेखि धात्रा। नितान्तं पापिनौ चाऽऽवाम्; यौ बाल्य एवेदृशीषु दुरवस्थासु पतितौ। का दशा भवेत् साम्प्रतमावयोरनुजायाः

पूजितम्=सत्कृतम्। स्थगितमन्थराः=मान्थर्यशून्याः। ताराः शीघ्रा-श्चेत्यर्थः। आरावाः=शब्दाः। समाकर्णिषत=श्रुताः। कर्मणि के। तारकाः संजाता अस्मिन्निति तारकितम्=उडुगणसमेतम्। "तदस्य संजातं तारकादिभ्य इतच्"। स्वगृहस्य, "अधीगर्थदयेशां कर्मणी" ति षष्ठी। महतीनां चिन्तानां पारावारे=समुद्रे। न्यमाङ्क्षम्=निमग्नोऽभवम्। करयोः कटिप्रदेशे संस्थापनं चिन्तामुद्रा। साम्मुखीनशिखरिशिखरे= पुरोवर्तिपर्वतशृङ्गे। आत्मानमपि विस्मृत्य, विचारैकतानताध्वननायेदम्। लोकोक्तिरेषा।

होने वाले स्वर सुनाई दिये। तत्पश्चात् धीरे-धीरे बह रही हवा के स्पर्श के सुख का अनुभव करता हुआ, तारों भरे आकाश को बार-बार देखता हुआ और अपने घर की याद करता हुआ मैं चिन्ता सागर में डूब गया। फिर दीवार से पीठ टिका कर हाथों को कमर पर रखकर, सामने वाले पर्वत की चोटी पर आँखें टिकाकर, अपने को भी भूल कर, मैं सोचने लगा,—'हाय, मैं बड़ा ही अभागा हूँ। हमारे माँ-बाप धन्य थे, जिन्होंने हम दोनों को सुखी छोड़कर स्वर्गलोक को अलंकृत किया। उनके भाग्य में विधाता ने पुत्र वियोग का दुःख नहीं लिखा था। हम दोनों महापापी हैं जो बचपन में ही ऐसी दुर्दशा में पड़े हैं। इस समय हमारी बहिन

सौवर्ण्याः ? हन्त !! हतभाग्या स बालिका; या अस्मिन्नेव वयसि पितृभ्यां परित्यक्ता, आवयोरप्यदर्शनेन क्रन्दनैः कण्ठं कदर्थयति ! अहह ! सततमस्मत्क्रोडैक-क्रीडनिकाम्, सततमस्मन्मुखचन्द्र-चकोरीम्, सततमस्मत्कण्ठ-रत्नमालाम्, सततमस्मत्सह-भोजिनीम्, बाल्य-लुलितैः, मधुर-मधुरैः, सुधा-स्यन्दनैः, दाद-दादेति-भाषणैः आवयोर्हृदयं हरन्तीम्, क्षणमात्रमस्मदनवलोकनेनापि बाष्प-प्रवाहैः कपोलौ मलिनयन्तीम्, कथमेनां वृद्धः पुरोहितः सान्त्वयिष्यति ? अस्मज्जनकाविशेषः पुरोहित एव वा कथं नौ विना जीविष्यति ? परमेश्वर ! तथा विधेहि; यथा जीवन्तं वृद्धं पुरोहितं सौवर्णीं साक्षात्कुर्वः—

क्रन्दनैः=रोदनैः। "क्रन्दने रोदनाह्वाने" इत्यमरः। कदर्थयति=दूषयति, अस्मत्क्रोडमेवैकं क्रीडनकम्=खेलसाधनम्, "खिलौना" इति हिन्दी, यस्यास्ताम्। अस्मन्मुखचन्द्रस्य चकोरीम्, चकोरी यथा चन्द्रमसं निभालयति तथैव साऽस्मन्मुखम्। सुधास्यन्दनैः=अमृतप्रस्रवणैः, दाद-दादेति="तात तात" इति संस्कृतम्, तदपभ्रंशः। प्राकृते ताद-तादेति। अस्माकम्, जनकाविशेषः=पितृतुल्यः, नौ=आवाम्। "षष्ठी-

---

सौवर्णी की क्या हालत होगी। हाय, वह लड़की बड़ी अभागी है। इसी उम्र में उसे माँ-बाप ने छोड़ दिया और हम दोनों को भी न पाकर, रो-रोकर वह गला फाड़ रही होगी। हाय, हमारी गोद ही जिसका खिलौना थी, जो चकोरी की भाँति सदा हमारे मुँह की ओर ही देखा करती थी, जो हमारे गले की रत्नमाला है जो सदैव हमारे साथ ही खाती थी, बचपन की सुधावर्षिणी तोतली और मधुर बोली में 'दाद ! दाद (तात ! तात !)' कह कर हमारा मन हरने वाली, क्षण भर भी हमें न देख पाने पर आँसुओं से गाल को गीला कर देने वाली उस सौवर्णी को वृद्ध पुरोहित सान्त्वना कैसे देंगे ? अथवा हमारे पिता के समान पुरोहित ही हम लोगों के अभाव में कैसे जी सकेंगे ? परमेश्वर ! ऐसा करो कि हम जीवित वृद्ध पुरोहित और सौवर्णी से मिल सकें।'

इति चिन्ता-चक्रमारूढ एव आत्मनं विस्मृत्य भित्तिकासंसक्त एव शनैरस्खलम्। प्राप्तसंज्ञश्च समपश्यं यत् श्यामसिंहो मन्दिर-पूजकाश्च मामुत्थापयन्ति—इति।

अथाऽऽवां तेन साधुना मन्दिरस्यान्तर्नीतौ महावीर-मूर्ति-समीपे चोपवेशितौ।

ततोऽवलोक्य तां वज्रेणेव निर्मिताम्, साकारामिव वीरताम्, गदामुद्यम्य दुष्ट-दल-दलनार्थमुच्छलन्तीमिव केशरि-किशोर-मूर्तिम्, न जाने कथं वा कुतो वा किमिति वा प्रातरन्धकार इव वसन्ते हिम इव बोधोदयेऽबोध इव ब्रह्मसाक्षात्कारे भ्रम इव च झटित्यपससार आवयोः शोकः। प्राकाशि च हृदये यद्—

चतुर्थीद्वितीयास्थयोर्वांनावौ" इत्यनेन नावादेशः, "पृथग्विनानानाभिस्तृतीयान्यतरस्यामि" ति समुच्चयाद् द्वितीया। सौवर्णीम्, चं विनाऽपि समुच्चयः, "गौरश्वः, पुरुषो हस्ती शकुनिर्मृगो ब्राह्मण इति" ति भाष्यादनुमीयते।

भित्तिकासंसक्त एव=कुड्यसंलग्न एव। शनैः=मन्दं, अस्खलम्= अपतम्। प्राप्तसंज्ञः=प्राप्तचेतनः।

वज्रेण=इन्द्रायुधेन। साकाराम्=शरीरधारिणीम्। केशरि-किशो-

इस प्रकार चिन्ताग्रस्त होकर मैं अपने को भी भूल गया और दीवार से टिका हुआ लुढ़क गया। होश में आने पर मैंने देखा कि श्यामसिंह और मन्दिर के पुजारी मुझे उठा रहे हैं।

उसके बाद वह साधु हम दोनों को मन्दिर के अन्दर ले गया और हमें महावीर की मूर्ति के पास ही बिठा दिया।

तदनन्तर, वज्र से बनी हुई-सी, साकार वीरता-सी, गदा उठा कर दुष्टों के संहार के लिए उछल-सी रही उस हनुमान की मूर्ति को देखकर, न जाने कैसे, प्रातःकाल के समय अन्धकार की तरह, वसन्त ऋतु में हिम की तरह, ज्ञान हो जाने पर अज्ञान की तरह और ब्रह्मसाक्षात्कार हो जाने पर भ्रम की तरह, हमारा शोक दूर हो गया, और हमारे हृदय में इस प्रकार के भाव उठे कि—

"अलं बहुना चिन्ताभिः ! कश्चन पुरुषार्थः स्वीक्रियताम्, न खलु बुद्ध्यतां यदावामेव दुरदृष्टवशात् त्यक्त-कुटुम्बौ वने पर्य्यटावः—इति, किन्तु कोशलेश्वरतनयौ राम-लक्ष्मणावपि चतुर्दश-वर्षाणि यावद् दण्डकारण्ये भ्रान्तवन्तौ।"

ततः साधोश्चरणयोः प्रणम्य मयोक्तम्—भगवन् ! नास्त्यविदितं किमपि भवादृशानां सदाचार-दृढव्रतिनाम्। तत्कथ्यतां किमावां करवाव ? कुतो गच्छाव ? कथमावयोः श्रेयः-सम्पत्तिः स्याद् ? इति।

ततो हनुमत्पूजकेन सर्वमस्मद्वृत्तान्तं पृष्ट्वा ज्ञात्वा च काष्ठ-पट्टिकायां घृतोन्मथित-सिन्दूरेण किमपि यन्त्रमिवोल्लिख्य, चन्दनैः

रस्य = केशरितनयस्य, मूर्तिम्, हनूमत्प्रतिमाम्। झटित्यपससार शोकः, इदमेव मूर्तिपूजारहस्यम्। हनुमद्दर्शनेन रामलक्ष्मणस्मरणं तयोश्च स्मरणेन तद्वनवासादीनाम्। प्राकाशि = स्फुरितम्।

श्रेयःसम्पत्तिः = कल्याणावाप्तिः। काष्ठपट्टिकायाम् = दारु-फलके। "काठ की पटरी" इति हिन्दी।

घृतेन = सर्पिषा, उन्मथितम् = मेलितम्, सिन्दूरं तेन। "महावीरी"

'अब अधिक चिन्ता न करके कोई पुरुषार्थ स्वीकार करो। यह मत सोचो कि हम ही दुर्भाग्य वश घर-बार छोड़ कर जंगलों में भटक रहे हैं, दशरथ के पुत्र रामलक्ष्मण भी चौदह वर्ष तक दण्डक वन में भटकते फिरे थे।'

उसके बाद उस साधु के चरणों में प्रणाम कर मैंने कहा 'भगवन् ! सदाचार व्रत का दृढ़ता से पालन करने वाले आप के-से महापुरुषों से कुछ भी छिपा नहीं है, अतः बताइये कि हम दोनों अब क्या करें ? कहाँ जायँ ? हमारा कल्याण कैसे होगा ?'

इसके बाद उस पुजारी ने हमारा सारा वृत्तान्त पूछ कर तथा जान कर, लकड़ी की पटरी पर घृतमिश्रित सिन्दूर (महावीरी) से एक यन्त्र-

संचर्च्य, कुसुमैराकीर्य, धूपेन धूपयित्वा, किमपि क्षणं ध्यात्वेव च मम हस्ते पूगीफलमेकं दत्त्वा, "वत्स ! अस्मिन् यन्त्रे कस्मिन्नपि कोष्ठे यथारुचि क्रमुकफलमिदं स्थापय" इत्यवाचि । तत एकतमे कोष्ठे निहित-क्रमुके मयि मुहूर्तम् अङ्गुलिपर्वसु किमपि गणयित्वेव स मामवादीत्—

वत्स ! कदाऽपि मा स्म गमो गृहं प्रति, यतो मार्गे पर्वतत्तटीषु अरण्यानीषु च बह्वः काम्बोजीया यवन-दस्यवो भवतोर्ग्रहणाय विचरन्ति । दस्युभिः क्रियासमभिहारेण चङ्क्रम्यमाणं देशमवलोक्य भवद्ग्रामवासिनः सर्वेऽपि स्वं स्वमालयं परित्यज्य इतस्ततो गताः ।

ततः 'सौवर्णि ! सौवर्णि ! पुरोहित ! पुरोहित !' इति सक्षोभं व्याहृतवतोरावयोः पुनः स साधुरवोचत् , यत्—

इति हिन्दी । प्रश्नप्रथेयम् । अङ्गुलिपर्वसु = हस्ताङ्गुलिग्रन्थिषु ।
मास्म गमः = मा याहि । अरण्यानीषु = महारण्येषु ।

सा बना कर, चन्दन, पुष्प और धूप से उसकी पूजा कर, क्षण भर कुछ ध्यान-सा करके मेरे हाथ में एक सुपारी देकर कहा, 'वत्स ! इस सुपारी को अपनी इच्छानुसार इस यन्त्र के किसी कोष्ठ में रख दो ।' इसके बाद मेरे एक कोष्ठ में सुपारी रख देने पर, क्षण भर उँगुलियों के पोरों पर कुछ गिनता हुआ-सा वह मुझसे बोला—

'वत्स ! घर की ओर कदापि न जाना, क्योंकि रास्ते में पर्वतों की घाटियों और जङ्गलों में बहुत से कम्बोज देश के यवन लुटेरे तुम्हें पकड़ने के लिए घूम रहे हैं । दस्युओं द्वारा स्वदेश पर निरन्तर आक्रमण होता देख तुम्हारे गाँव के सभी निवासी अपना-अपना घर छोड़कर इधर-उधर चले गये हैं ।

इसके बाद हम दोनों के क्षुब्ध होकर, 'सौवर्णी ! सौवर्णी ! पुरोहित ! पुरोहित' यह कह उठने पर वह साधु फिर बोला—

पुरोहितोऽपि युष्मद्रत्नादिनिधिं कचन संकेतित-भूमि-कुहरे स्थापयित्वा, एकां धात्रीं दास-चतुष्टयमेकं चाश्वं सह नीत्वा महाराष्ट्र-पञ्चानन-परिपूरितां कोङ्कणभूमिं प्रति प्रस्थितः।

तदाकलय्य, "सत्यं सत्यमेवमेवम्" इति समस्तकान्दोलनं स्वीकृतवति पुरोहिते; 'ततस्ततः' इति मुखरीभूतेषु च कुटीरस्थ-सकल-जनेषु, भूयस्तदुक्तिं व्याजहार गौरसिंहो यद्—

न शोचनीयं भवद्भ्यां किमपि तयोर्विषये, गन्तव्यं च तस्मिन्नेव शिववीराधिष्ठिते गिरि-गरिष्ठे कोङ्कणदेशे। कियत्समयानन्तरं तत्रैव भगिन्या पुरोहितेन च सह साक्षात्कारोऽपि भविष्यतीति प्रावोचत्।

सङ्केतितभूमेः कुहरे= विवरे। "कुहरं गह्वरं छिद्रे क्लीबं नागान्तरे पुमानि" ति कोषः। धात्रीम्=उपमातरम्। "धात्री स्यादुपमाताऽपि क्षितिरप्यामलक्यपी" त्यमरः। महाराष्ट्रा एव पञ्चाननाः=सिंहाः, तैः परिपूरिताम्=भरिताम्।

तदुक्तिम्=हनूमत्पूजकोक्तिम्। अतिशयेन गुरुर्गरिष्ठः, गिरिभिर्गरिष्ठस्तस्मिन्।

पुरोहित भी तुम्हारी रत्नादिक निधि को किसी संकेतित स्थान पर गाड़ कर, एक धाय, चार दास और एक घोड़ा साथ लेकर महाराष्ट्र-केसरी शिवाजी के कोंकण-प्रदेश की ओर चले गये हैं।'

यह सुनकर, पुरोहित के सिर हिलाकर 'सच है, ऐसा ही है' कह कर स्वीकार करने और कुटी के सभी लोगों के 'फिर क्या हुआ' यह पूछने पर गौरसिंह उस पुजारी के कथन को पुनः कहने लगे—

"आप दोनों को उन दोनों के विषय में कोई चिन्ता नहीं करनी चाहिये और शिवाजी से रक्षित पर्वतबहुल कोंकणप्रदेश को चला जाना चाहिये। कुछ समय बाद अपनी बहिन और पुरोहित से तुम्हारा साक्षात्कार होगा, ऐसा उस पुजारी ने कहा।"

ततस्तु भ्रमर-झङ्कारेणेव "अहो ! अहो ! आश्चर्यमाश्चर्यम्, धन्यो मन्त्राणां प्रभावः, धन्यमिष्टबलम्, चित्रा धर्मनिष्ठा, अवितर्क्यस्तपःप्रतापः, विलक्षणा नैष्ठिकी वृत्तिः" इति मन्द्र-स्वर-मेदुरेण श्रोतृजन-वचन-कलापेन झंकृते तस्मिन् निकुञ्जे; "ततः कथं प्रचलितौ ? कथमत्राऽऽयातौ ? का घटना घटिता ? क उपायः कृतः ? किमाचरितम् ?" इति कुतूहल-परवशे विस्फारितनयने उद्ग्रीवे समनुकूलितकर्णे विस्मृतान्यकथे कृतावधाने च परिकरवर्गे श्यामसिंहस्यांके दत्तदृष्टिं सौवर्णीं तदङ्के संस्थाप्य, पातितोभयजानु समुपविश्य, राजत-राजिका इव कपोलयोरुत्तरोष्ठे च समुद्भूताः

अहो ! अहो, "ओत्" इति प्रगृह्यसंज्ञा ततश्च प्रकृतिभावः। कुतूहलपरवशे=कौतुकाधीने, विस्फारितनयने=विकासितनेत्रे। शुश्रूषातिरेकादिदं सर्वम्। उद्ग्रीवे=उत्थितकण्ठे। समनुकूलितकर्णे=अभिमुखीकृतश्रोत्रे, विस्मृतान्यकथे=त्यक्तान्यप्रसङ्गे। पातितोभयजानु, क्रियाविशेषणम्। राजतराजिका इव=दौर्वर्णकणिका इव।

तदनन्तर, भौंरों की गूँज के समान, 'अहो ! अहो ! आश्चर्य ! महान आश्चर्य ! धन्य है मन्त्रों का प्रभाव और धन्य है इष्टदेव की शक्ति। धर्मनिष्ठा कितना आश्चर्य जनक है ! तप का प्रताप कितना अवितर्क्य है ! ब्रह्मचर्य वृत्ति कितनी विलक्षण है।' श्रोताओं द्वारा मन्द्र स्वर में कहे गये इन वाक्यों से उस निकुञ्ज के गूँज उठने और फिर 'आप दोनों कैसे चले ? यहां कैसे आये ? कौन-सी घटना घटी ? क्या उपाय किया ? क्या किया ?' यह जानने को उत्सुक होकर पास में बैठे सभी लोगों के आंखें फाड़ कर, गर्दन ऊँची करके, कान लगा कर, अन्य सारी बातें भूल कर सावधान हो जाने पर, श्यामसिंह की गोद की ओर देख रही सौवर्णी को उसकी गोद में बिठाकर, घुटनों के बल बैठकर, दोनों गालों और ओष्ठ के ऊपर की चांदी के कणों के समान पसीने की बूँदों

स्वेदकणिका उत्तरीय-प्रान्तेन परिमृज्य पुनरात्म-वृत्तान्तं वक्तुं प्रारभत गौरसिंहो यद्—

अथ "भगवन्! श्रूयते सुदूरमस्मात्स्थानात् कोङ्कणदेशः, मध्ये च विकटा अटव्यः, शतशः शैल-श्रेणयः, त्वरितधारा धुन्यः, पदे पदे च भयानक-भल्लूकानामम्बूकृत-सङ्कुलानाम्, मुस्ता-मूलोत्खनन-घुर्घुरायित-घोर-घोणानां घोणिनाम्, पङ्क-परीवर्त्तोन्मथित-कासाराणां कासराणाम्, नरमांसं बुभुक्षूणां तरक्षूणाम्, विकट-करटि-

---

त्वरिता=द्रुतगामिनी, धारा=प्रवाहो यासां ताः। धुन्यः=नद्यः। भयानकानाम्=भीतिजनकानाम्, भल्लूकानाम्=ऋक्षाणाम्। अम्बूकृतैः=निष्ठीवसहितशब्दैः, "अम्बूकृतं सनिष्ठीवमि" त्यमरः, सङ्कुलानाम्=व्याप्तानाम्। सर्वथा साक्षात्कारसम्भव इत्यनेनान्वयः। एवमितरषष्ठ्यन्तानामपि। मुस्तामूलोत्खनने=कुरुविन्दमूलोत्पाटने, घुर्घुरायिता घोणा=नासा, येषां तेषाम्। "कुरुविन्दो मेघनामा मुस्ता मुस्तकमस्त्रियामि" त्यमरः, घोणिनाम्=शूकराणाम्। पङ्कपरीवर्त्तेन=कीचोल्ललनेन, उन्मथिताः=विलोडिताः, कासाराः=सरांसि, "कासारः सरसी सर" इत्यमरः, यैस्तेषाम्। कासराणाम्=महिषाणाम्। "लुलायो महिषो वाहद्विषत्कासरसैरिभा" इत्यमरः। नरमांसम्, बुभुक्षूणाम्=खादितुमिच्छूनाम्। "न लोकाव्ययनिष्ठाखलर्थतृनामि" ति षष्ठीनिषेधः।

को उत्तरीय के छोर से पोंछ कर, गौरसिंह ने पुनः अपना वृत्तान्त कहना प्रारम्भ किया कि—

"भगवन्! सुनते हैं कोंकण देश यहाँ से बहुत दूर है, बीच-बीच में भयानक जंगल हैं सैकड़ों पहाड़ियाँ हैं, तीव्र वेग से बहने वाली नदियाँ हैं और पद-पद पर थूकने के साथ शब्द करने वाले भयंकर भालुओं, मोथे की जड़ खोदने में अपनी भयंकर नाक से घुर्र-घुर्र शब्द करने वाले जंगली सूअरों, कीचड़ में लोट-पोट कर तालाब को गन्दा करने वाले बनैले भैंसों, नरमांस खाने के इच्छुक चीता, भयंकर हाथियों

कट-विपाटन-पाटव-पूरित-संहननानां सिंहानाम्, नासाग्र-विषाण-शाणन-च्छल-विहित-गण्डशैल-खण्डानां खड्गिनाम्, दोदुल्यमान-द्विरेफ-दल-पेपीयमान-दानधारा-धुरन्धराणां सिन्धुराणाम्, कृपा-कृपण-कृपाण-च्छिन्न-दीनाध्वनीन-गल-तल-गलत्पीन-धार-शोणित-बिन्दु-वृन्द-रञ्जित-वारबाण-सारसनोष्णीष-धारण-कलिताखर्व-गर्व-वर्बराणां लुण्ठक-निकराणां च सर्वथा साद्या-

तरक्षूणाम्, "स्यात्तरक्षुस्तु मृगादन" इत्यमरः। "चीता" इति हिन्दी। विकटाः=उद्दामानः, करटिनः=हस्तिनः, तेषां कटः=गण्डः तस्य यत्. विपाटनम्=विदारणम् तत्र यत् पाटवम्=कौशलम्, तेन पूरितं संहननम्=अङ्गं येषां तेषाम्। नासाग्रे=घोणाग्रे, विद्यमानस्य विषाणस्य=शृङ्गस्य, शाणनच्छलेन=तेजनव्याजेन, विहिता गण्ड-शैलखण्डा यैस्तेषाम्। खड्गिनाम्=गण्डकानाम्। "गैंडा" इति हिन्दी। दोदुल्यमानानाम्=अतिशयेन पुनः पुनर्वा समुत्पतताम्, "दुल उत्क्षेप" इत्यस्य रूपम्, द्विरेफाणां दलेन पेपीयमानया=पुनः पुनरास्वाद्यमानया, दानधारया=मदपंक्त्या, धुरन्धराणाम्=अग्रेसराणाम्। सिन्धुराणाम्=गजानाम्। "इभो मतङ्गजो हस्ती सामजः सिन्धुरः कपिरि"ति वैजयन्ती। कृपाकृपणैः=दयादरिद्रैः, कृपाणैः=असिभिः, छिन्नेभ्यः=कृत्तेभ्यः, गलतलविशेषणम्। दीनानाम् अध्वनीनानाम्=पथिकानाम्, गलतलेभ्यः=कण्ठस्थानेभ्यः गलत्पीनधारस्य=निपतत्स्थूलप्रवाहस्य शोणितस्य, बिन्दुवृन्देन=पृषत्समूहेन, रञ्जितानाम्, वारबाण-सारसनो-

के गण्डस्थलों को विदीर्ण करने की कुशलता से पूर्ण शरीर वाले सिंहों, अपनी नाक पर की सींग को तीखी करने के बहाने पर्वतों के टुकड़े-टुकड़े कर डालने वाले गैंड़ों, बार-बार उड़ने वाले भ्रमर-समूह द्वारा पान की जाने वाली मदधारा वाले हाथियों और निर्दय तलवार से कटे दीन-हीन पथिकों के गले से बहने वाली मोटी धारा के रक्तबिन्दुओं से रंगे कञ्चुक, मेखला और शिरस्त्राण धारण कर अत्यधिक अभिमान करने वाले

त्कार-सम्भवः । बालावावाम् , अविज्ञातोऽद्ध्वा, भोग-समयो दुर्ग्रहाणाम् , अश्वावेव सहायौ, जन-पद-शून्यमेतत् प्रान्तरम् , तत्कथं गच्छेव ? कथं धैर्यं धारयेव ? कथं वा कोङ्कणदेशं प्राप्स्याव इति विश्वसेव ?" इति सचिन्तं विनिवेदितवति मयि; स साधुरावयोः पृष्ठे हस्तं विन्यस्य—

"हनूमान् सर्वं साधयिष्यति, मास्म चिन्ता-सन्तान-वितानैरात्मानं दुःखाकुरुतम् । यथा सरलेनोपायेन कोङ्कणदेशं प्राप्स्यथस्तथा प्रभाते निर्देक्ष्यामि । साम्प्रतमित आगम्यताम् , पीयतामिदमेला-गोस्तनी-केसर-शर्करा-सम्पर्क-सुधा-विस्पर्द्धि महिषी-दुग्धम्, दासा इमे पाद-संवाहनैस्तैल-सम्मर्दैर्व्यजन-चालनैश्च भवन्तौ

ष्णीषाणाम् = कञ्चुक-मेखला-शिरस्त्राणानाम् धारणेन, आकलितः = आहितः, अखर्वः = विपुलः, गर्वः = अहङ्कारः, यैस्ते च ते बर्बराः = मूर्खाः, तेषाम् , दुर्ग्रहाणाम् = दुष्टखेचराणाम् ।

मास्मेत्यत्र न माङ् , अपितु निषेधार्थको मेति निपातः । अत एव न लुङ् , दुःखाकुरुतम् = दुखिनं विधत्तम् । "सुखप्रियादानुलोम्य" इत्यत्रत्यवार्तिकात् "दुःखाच्चेति वक्तव्यमि" ति डाच् । एला = चन्द्रबाला,

बर्बर लुटेरों के समूहों का मिल जाना एकदम सम्भव है । हम दोनों अभी बच्चे ही हैं, रास्ता भी अनजाना है, बुरे ग्रहों के भोग का समय चल रहा है, हमारे सहायक केवल घोड़े ही हैं, इस ओर कोई बस्ती भी नहीं है, फिर हम कैसे जायँ ? कैसे धैर्य धारण करें ? कौंकण देश पहुँच ही जायँगे, यह विश्वास कैसे करें ?" मेरे इस प्रकार चिन्तापूर्वक निवेदन करने पर उस साधु ने हम दोनों की पीठ पर हाथ रख कर सान्त्वना देते हुए कहा—

"हनुमान जी सब पूरा करेंगे, चिन्ता कर के अपने को दुःखी न बनाओ । जिस सरल उपाय से तुम कौंकण देश पहुँच सकोगे वह सवेरे बताऊँगा । इस समय इधर आओ और इलायची, दाख, केसर और

विगतक्लमौ विधास्यन्ति। न किमपि भयमधुना वां हनूमतश्च-रणयोः शरणमायातयोः। सुखेन सुप्यताम्। असंशयमेव प्रातरेव हनूमत्पूजन-समये सर्वं कार्यं सेत्स्यति"—इति समाश्वासयत्।

आवां च तन्निर्दिष्टेनैव सोपानेन अट्टालिकामारुह्य एकस्मिन् गृहे प्रविष्टौ, तत्र च राजकुमार-योग्यां पर्यङ्कादि-सामग्रीमवलोक्य नितान्त-चकितौ प्रसन्नौ च अभूव। अथ भूयस्तत्प्रदत्तं मोदकादि किञ्चिद् भुक्त्वा, पयः पीत्वा, ताम्बूलं चर्वयन्तौ, दासैः पादयोः पीड्यमानौ, व्यजनैर्वीज्यमानौ, स्वभाग्योदय-सोपानं साधोः साधुतां मनस्येव प्रशंसमानावेव चाशयिष्वहि। अयं चिरकाला-

---

गोस्तनी=द्राक्षा, केसरम्=काश्मीरजम्, शर्करा=सिता, एतासां सम्पर्केण=सम्मेलनेन सुधाविस्पर्धि=अमृततुल्यम्, प्रतियोगिताकरम्, सदृशमिति यावत्। समाश्वासयत्=धैर्यमापादयत्।

स्वभाग्योदयस्य=स्वदिष्टप्रादुर्भावस्य, सोपानम्=अधिरोहिणी। "सीढी" इति हिन्दी। नित्यक्लीबम्। अतएव नित्यस्त्रीलिङ्ग-साधुता-शब्दविशेषणत्वेऽपि न तल्लिङ्गता। अशयिष्वहि=अस्वाप्स्व।

शक्कर मिला हुआ, अमृत के समान भैंस का दूध पियो। ये दास पैर दाब कर, तेल मल कर और पंखा झलकर तुम्हारा थकान दूर कर देंगे। हनुमान की शरण में आये हुये तुम दोनों को अब कोई भय नहीं है। सुखपूर्वक सोओ। प्रातःकाल होते ही हनुमत्पूजन के समय तुम्हारा सारा कार्य निश्चय ही सिद्ध हो जायगा।"

हम दोनों उसी साधु द्वारा निर्दिष्ट सीढ़ियों से अट्टालिका पर चढ़ कर एक घर में प्रविष्ट हुए और वहाँ राजकुमारों के योग्य पलंग आदि सामग्री देखकर अत्यधिक चकित और प्रसन्न हुए। उसके बाद पुजारी जी के ही द्वारा दिये गये लड्डू आदि खा कर और दूध पीकर पान खाया। दास पैर दबाने और पंखा झलने लगे, और हम अपने भाग्योदय की सीढ़ी तथा उस पुजारी की सज्जनता की मन-ही-मन प्रशंसा करते हुए सो गये।

नन्तरमावाभ्यां निःशङ्क-शयन-समयो लब्धः, इत्येकयैवाऽऽनन्दमय्या वितर्क-विचारादि-सम्पर्क-शून्यया असम्प्रज्ञात-समाधि-सोदरयेव निद्रया समस्तां रजनीमजीगमाव।

ततः केनापि धमद्धमद्ध्वनिनेव बोधितौ, दक्षतो वामतश्च

आनन्दमय्या = आनन्दसंवलितया। गाढनिद्रायामानन्दानुभवाभावेऽपि समुत्थितौ "सुखमहस्वाप्समि" ति समुल्लेखेन वृत्त्यन्तरशून्यायामेव तस्यामानन्दमयत्वं कल्प्यते। असंप्रज्ञातयोगस्य तु भूमानन्दमयता स्पष्टा योगशास्त्रे। वितर्कः = विविध ऊहः, विचारः = कर्त्तव्याकर्त्तव्यत्वविवेकः, आदिना = कामादिः, तेषां सम्पर्केण = संसर्गेण, शून्यया = विरहितया। निद्रयेति विशेष्यम्। उत्प्रेक्षते--असंप्रज्ञातसमाधिसोदरयेव। "वितर्कविचारानन्दास्मितानुगमात्संप्रज्ञात" इति योगसूत्रानुसारेण वितर्कादिचतुष्टयविशिष्टः संप्रज्ञातः, इतरथा तु "विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्य" इति सूत्रानुसारेणासंप्रज्ञात इत्यसंप्रज्ञाते वितर्कादिसंपर्कशून्यता। सूत्रे वितर्कादीनां प्रत्येकमनुगमेऽन्वयः। तथा च सवितर्क-सविचार-सानन्द-सास्मिताभिधभेदचतुष्टयसहितः, संप्रज्ञायते = सम्यग् ज्ञायते यस्मिन् स इति विग्रहार्थकः संप्रज्ञातः। विरामप्रत्ययस्य = वृत्त्युपरमकारणकस्य, अभ्यासः पौनःपुन्येन सम्पादनम्, तत्पूर्वः = तत्कारणकः संस्कारमात्रावशिष्टोऽसंप्रज्ञात इति द्वितीयसूत्रार्थः। तदुक्तम्—

मनसो वृत्तिशून्यस्य ब्रह्माकारतया स्थितिः।
असंप्रज्ञातनामाऽसो समाधिरभिधीयते॥ इति।

अजीगमाव = अयापयाव।

बहुत दिनों के बाद निश्चिन्त होकर सोने का अवसर मिला था अतः हमने वितर्क-विचार आदि रहित, आनन्दमयी असम्प्रज्ञात समाधि के समान एक ही नींद में रात बिता दी।

उसके बाद किसी के धम-धम आवाज करने से जग कर, दायें-बायें

परिवृत्य, चक्षुषी परिमृज्य, साङ्गुलि-ग्रथन-हस्त-प्रसारणं सस्नायु-पीडनं च विजृम्भ्य, भूमिं प्रणम्य, पर्यङ्कादुत्तीर्य, कोष्ठाद् बहिरागत्य, साञ्जलि मारुति-ध्वजमवलोक्य, करतले निरीक्ष्य, भित्तिकावलम्बित-मुकुरेष्वात्मानं साक्षात्कृत्य, भगवन्नामानि जपन्तौ, कांश्चित्प्रातःस्मरण-श्लोकांश्च रटन्तौ, परस्परं "सुखमावामस्वाप्स्व, प्रसन्नं नौ चेतः" इति शनैरालपन्तौ च, तस्मिन्नेव मन्दिरस्योर्ध्वे खण्डे शतपदीमकरवाव। तावदश्रूयत स एव बहुलीभूतो ध्वनिः। ततो

परिवृत्य = परिवर्त्तनं कृत्वा। स्वभावोक्तिः। साङ्गुलिग्रथनहस्त-प्रसारणम्, करयोरङ्गुलीः परस्परं संयोज्य हस्तौ प्रसारयन्ति त्यक्तनिद्रा जना इति स्वभावः। विजृम्भ्य = 'जम्भाई लेकर' इति भाषायाम्।

भूमिं प्रणम्य,

समुद्रवसने ! चोर्वि ! पर्वतस्तनमण्डले ! ।
विष्णुपत्नि ! नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

इति नैत्यिकविधानम्। भूमेर्मातृत्वकल्पनायां प्रातरेव स्मारितायां तद्दुःखव्रातवारणायोत्सुका भवेयुर्लोका इति तत्प्रचारकाणां सुमनीषा। कोष्ठम् = 'कोठरी' इति हिन्दी। करतले निरीक्ष्य, प्रभाते करतलदर्शनं श्रेयस्करमिति धर्मशास्त्रानुशासनम्। शतं पदानि शतपदी = भ्रमणम्।

करवट लेकर, आँखें मलकर, अंगुलियों को गूँथ कर, हाथों को फैलाते हुए तथा स्नायुओं को तानते हुए जँभाई लेकर, भूमि को प्रणाम कर, पलँग से उतर कर, कमरे से बाहर आकर, हाथ जोड़ कर, हनुमान जी के झंडे की ओर देखकर, हथेलियाँ देखकर, दीवारों में लगे शीशों में अपना प्रतिबिम्ब देखकर, भगवान के नाम का जप करते हुए, प्रातःस्मरण के कुछ श्लोकों को दुहराते हुए और एक दूसरे से 'हम सुख से सोये, चित्त प्रसन्न है' इस प्रकार बातचीत करते हुए हम मन्दिर के ऊपर वाले खण्ड में ही टहलने लगे। तब तक वही आवाज जोरों से सुनाई पड़ने लगी।

गवाक्षतो निकुब्जीभूय दृष्टं यत् पञ्चषाः साधवो वस्त्र-वेष्टित-मस्तकाः समीप-स्थापित-जलपूर्ण-पात्राः पाषाण-खण्डैर्दन्तधावन-मुखं मृदूकरणाय कुट्टन्ति। अवलोकितं च यदस्मिन्नपि समये शर्वरी-तमांसि नाम्बरं साकल्येन जहति। स्वच्छाऽपि प्राची नाधुनाऽप्यरुणिमानमङ्गीकरोति। विराव-बहुलान्यपि वयांसि न सम्प्रत्यपि विहाय नीडाधिष्ठान-कुटानुड्डीयन्ते। गिरि-ग्रामटिका-गृहेभ्यो व्यावर्तमाना अपि विटपिनो न स्वफल-पुष्प-पत्राऽऽकार-परिचय-प्रदानैर्जातीः प्रकटयन्ति। उत्तरोत्तरतस्तार-तार-तरै रुतै रतार्त्तिमीरयन्त्यपि तरुण-

---

"भुक्त्वा शतपदं गच्छेदि" त्यत्रापि तदेव तात्पर्यम्। पञ्च वा षड् वा पञ्चषाः, "संख्ययाव्ययासन्नदूराधिकसंख्याः संख्येय" इति बहुव्रीहिः। समासान्तोऽच्।

शर्वरीतमांसि=रात्र्यन्धकाराः। अम्बरम्=नभः कर्म, जहति=त्यजन्ति। अरुणिमानम्=लौहित्यम्। नीडस्य=कुलायस्य, अधिष्ठानानि=निवासभूमितां गतानि च ते कुटाः=वृक्षाः तान्। "अनोकहः कुटः शाल" इत्यमरः। व्यावर्त्तमानाः=भिन्नत्वेन प्रतीयमानाः। जातेर्व्यावर्त्तकत्वं स्वभावः। सम्यक् प्रकाशाभावात्। उत्तरोत्तरः=अधिकाधिकम्। तारतारतरैः=अत्युच्चैः। रुतैः=आरावैः। रतार्त्तिम्=कामपीडाम्। ईरयन्ती=कथयन्ती, तरुणतित्तिरी=युवकैः-तित्ति-

---

मैंने झुककर झरोखों से देखा कि सिर में कपड़ा लपेटे और पास में पानी से भरा घड़ा रखे, पाँच-छः साधु, दातून के अग्रभाग (मुख) को मुलायम बनाने के लिए पत्थर के टुकड़ों से कूट रहे हैं। हमने देखा कि अभी रात के अँधेरे ने आकाश को पूरी तरह नहीं छोड़ा है। पूर्वदिशा स्वच्छ होती हुई भी अभी लाल नहीं हुई है, पक्षी कलरव तो बहुत कर रहे हैं, पर अभी अपने घोसलों वाले वृक्षों को छोड़कर उड़ :नहीं रहे हैं, वृक्ष पहाड़ियों, गाँवों और घरों से भिन्न तो दिखाई देने लगे हैं, पर अभी अपने फल-फूल और पत्तों के .आकार के परिचय से अपनी जाति नहीं

तित्तिरी न तरोरवतरति । आलोकाऽऽलोक-कृत-किञ्चिच्छोकमोको-ऽपि च कोको न वराकीं कोकीमुपसर्पति ।

अथेदृशीमेव मनोहारिणीं शोभामवलोकयन्तौ कम्पित-कुन्द-कलापस्य, उन्मीलन्मालती-मुकुल-मकरन्द-चौरस्य पाटलि-पटल-पराग-पुञ्ज-पिञ्जरितस्य शनैः शनैः फरफरायमाण-शुक-पिकादि-पतगोन्मथ्यमानस्य पलाशि-पलाशाग्र-विलुलत्तुषार-कणिकापहरण-

---

रिवधूः । स्वभावोक्तिः, अनुप्रासः । अलोकस्य=प्रकाशस्य, आलो-केन=विलोकनेन, कृतः=उत्पन्नः, कस्यचित् शोकस्य मोको यस्य सः । कोकः=चक्रवाकः, वराकीम्=दुःखिनीम् । 'वेचारी' इति हिन्दी ।

अथ समीरस्य स्पर्शसुखमनुभवन्तौ पर्यटन्तौ मुहूर्त्तमयापयावेति सम्बन्धः । समीरं विशिनष्टि-कम्पितः=दोलितः, कुन्दकलापः=माघ्य-समूहो येन तस्य । उन्मीलन्तीनाम्=विकाशमभ्यागच्छन्तीनाम्, मालती-नाम्=जातीनाम् , मुकुलानाम्=कलिकानाम्, मकरन्दस्य=पुष्परसस्य, चोरस्य=अपहर्तुः । पाटलिः="गुलाब" इति ख्यातः, तत्पटलस्य=तत्समूहस्य, परागपुञ्जेन=धूलिव्रजेन, पिञ्जरितस्य=पीतवर्णस्य । फरफरायमाणानाम्=पक्षास्फोटनं कुर्वताम् , शुकपिकादीनां पतत्रैः=पक्षैः उन्मथ्यमानस्य=विलोड्यमानस्य । वृद्धिं गमितस्येति यावत् । पलाशिपलाशाग्रेषु=वृक्षपत्राग्रेषु, विलुलताम्=विलुठताम् , तुषारा-

---

प्रकट कर रहे हैं, तरुण तित्तिरी उत्तरोत्तर उच्च और अधिक उच्च स्वर से वोल कर अपनी काम-पीडा का प्रकाशन तो कर रही है, पर अभी पेड़ से नहीं उतर रही हैं, और चकवा पक्षी ने प्रकाश देखकर कुछ शोक तो कम कर दिया है, फिर भी अभी वेचारी चकवी के पास नहीं जा रहा है ।

तत्पश्चात् , इसी प्रकार की मनोहर शोभा देखते हुए, कुन्द पुष्पों को कँपा देने वाले, खिल रही मालती की कलियों के मकरन्द को चुराने वाले, गुलाबों के पराग से पीले हो गए, धीरे-धीरे पंख फड़फड़ा रहे शुक-पिक आदि पक्षियों से उन्मथित किये गये, और वृक्षों के पत्तों के

शीतलस्य समीरस्य स्पर्शसुखमनुभवन्तौ, तत्रैव पूर्वस्या अट्टालिकाया दक्षिणस्याम्, दक्षिणस्याश्च पश्चिमायाम्, पश्चिमाया अप्युत्तरस्याम्, ततश्च पुनः पूर्वस्यामिति पौनःपुन्येन पर्य्यटन्तौ मुहूर्त्तमयापयाव।

[तस्मिन्नेव समये एकेन ब्रह्मचारिवटुनाऽऽगत्य निवेदितं, यत् "सपदि प्रभात-क्रिया निर्वहणीयेत्यादिशति तत्रभवान् साधु-शिरोमणिः" तदाकर्ण्य, वाढमित्यङ्गीकृत्य, षष्टिसहस्र-वालखिल्य-काषाय-बसन-विधूतायामिव, मन्देह-देह-शोणित-शोणितायामिव, अरुणा-

---

णाम्=अवश्यायानाम्, कणिकानाम्=बिन्दूनाम्, अपहरणेन शीतलस्य। अयापयाव=अगमयाव।

प्राभातकालिकीं प्राचीं विशिनष्टि—षष्टिसहस्रस्य=तादृशसंख्यापरिमितानाम्, वालखिल्यानाम्=तदाख्यऋषिविशेषाणाम्, कषायैः=कषायराग-रक्तैः, वसनैः=वस्त्रैः, विधूतायामिव=उत्कम्पितायामिवेत्युत्प्रेक्षा। मन्देहानाम्=राक्षसविशेषाणाम्, देहस्य, शोणितेन शोणितायामिव=रक्तीकृतायामिव। स्वाभाविकं शोणत्वं मन्देह-देह-शोणित-सम्पर्कजातत्वेनोत्प्रेक्षितम्। सायंकाले प्रत्यहं मरणं शरीराणामक्षयत्वञ्चेति विधिशापयन्त्रिता मन्देहाभिधा राक्षसाः सूर्यं खादितुमिच्छन्ति, तैश्च संग्रामं करोति

अग्रभाग पर हिलती हुई ओस की बूँदों को ग्रहण कर शीतल हुए समीर के स्पर्श के सुख का अनुभव करते हुए हम दोनों ने वहीं उस अट्टालिका के पूर्व से दक्षिण, दक्षिण से पश्चिम, पश्चिम से उत्तर और उत्तर से पुनः पूर्व की ओर बार बार टहलते हुए थोड़ा समय बिताया।

इसी समय एक ब्रह्मचारी बालक ने आकर कहा कि 'पूज्य साधुशिरोमणि की आज्ञा है कि आप प्रातःकृत्य से शीघ्र ही निवृत्त हो जायँ।' यह सुनकर 'बहुत अच्छा' कह कर उसे स्वीकार कर साठ हजार वालखिल्यों के कषाय वस्त्रों से उत्कम्पित सी मन्देह राक्षसों के शरीर के रक्त

रुणिम-रञ्जितायामिव, मोमुद्यमान-नरीनृत्यमान-परस्कोटि-ताम्र-चूड-चूडा-प्रतिबिम्ब-संवलितायामिव, पोस्फुट्यमान-स्वर्गङ्गा-कोकनद-पटल-व्याप्तायामिव, भक्तजन-भक्ति-प्रभाव-भाविताविर्भाव-च्छिन्न-मस्ताकन्धरोच्छल-च्छोणित-स्नातायामिव, वसन्तोत्सवोच्छालित-सिन्दूरान्धकारान्धीकृतायामिव, तातप्यमान-ताम्रद्युति-चौरायां

भास्करः, तत्कालक्षिप्तानि च गायत्र्यभिमन्त्रितानि वारीणि वज्रीभूतानि तान् घ्नन्तीत्यर्थवादः सूर्योद्देश्यकजलदानस्य ब्राह्मणग्रन्थेषु पुराणेषु च दृश्यते। एतदीयं वास्तविकत्वं पुराणमतदीपिकायां समवलोकनीयम्। अरुणस्य=सूर्यसारथेः, "सूरसूतोऽरुणोनूरुरि" त्यमरः अरुणिम्ना=लौहित्येन, रञ्जितायाम्। मोमुद्यमानानाम्=परमं हर्षमधिगच्छताम्, अत एव नरीनृत्यमानानाम्=अतिशयेन पुनः पुनर्वा नृत्यताम्, परस्कोटीनाम्=कोट्यधिकानाम्, ताम्रचूडानाम्=कुक्कुटानाम्, चूडानाम्=शिखानाम्, प्रतिविम्बेन, संवलितायाम्=प्रावृतायाम्। पोस्फुट्यमानानाम्=अत्यन्तं विकासमधिगच्छताम्, स्वर्गङ्गायाः=सुरदीर्घिकायाः, कोकनदानाम्=रक्तोत्पलानाम्, पटलेन व्याप्तायाम्=छन्नायाम्। भक्तजनानाम्=भागवतानाम्, भक्तेः=सेवायाः, प्रभावेण=सामर्थ्येन, भावितः=सम्पादितः, आविर्भावः=प्रकटीभवनम्, यया सा चासौ छिन्नमस्ता=तन्नाम्ना तन्त्रेषु प्रसिद्धा महाविद्यान्यतमा, तस्याः कन्धरायाः=ग्रीवायाः, उच्छलता=उद्गच्छता, शोणितेन स्नातायामिव। वसन्तोत्सवे=होलोत्सवे, उच्छालितेन=उत्फालितेन, सिन्दूराणाम्। अन्धकारेण=तिमिरेण, अन्धीकृतायामिव। तातप्यमानस्य=सुतप्तस्य, ताम्रस्य द्युतेः=शोभायाः, चोरायाम्=अपहारिकायाम्।

से रक्त हुई सीं, अरुण की अरुणिमा से रञ्जित सी, प्रसन्न होकर नाच रहे हजारों मुर्गों की कलँगी के प्रतिबिम्बों से आवृत सी, आकाशगंगा के खिलते हुए लाल कमलों से आच्छादित सी, भक्तों की भक्ति के प्रभाव से प्रकट हुई छिन्नमस्ता की ग्रीवा से निकल रहे रक्त से नहाई हुई सी और होलिकोत्सव में उड़ाये गये (गुलाल और) सिन्दूर के अन्धकार से अन्धी सी, तपे हुए ताँबे के समान लाल कान्ति वाली प्राची दिशा

प्राच्याम्, तत्प्रभया शोण-शोणैः सोपानैरवतीर्य, मारुतिमन्दिर-द्वारि मस्तक-मवनमय्य, झटित्येव स्नान-पूर्वाः क्रियाः समाप्य, तेनैव ब्रह्मचारिबटुना निर्दिश्यमान-मार्गौ, पूर्वावलोकित-वेशन्तादारादेव पश्चिमतः किञ्चिदमृतोदं नाम महासरः समासादितवन्तौ।]

तत्र वरटाभिरनुगम्यमानानां राजहंसानाम्, पक्षति-कण्डूति-कषण-चञ्चल-चञ्चुपुटानां मल्लिकाक्षाणाम्, लक्ष्मणा-कण्ठ-स्पर्श-हर्ष-वर्ष-प्रफुल्लाङ्गरुहाणां सारसानाम्, भ्रमद्भ्रमर-झङ्कार-भार-विद्रावित-

---

पूर्वम् = प्राक्। अवलोकितात्, वेशन्तात् = अल्पसरसः। "अन्यारादित-र्तेदिक्शब्दाञ्चूत्तरपदाजाहियुक्त" इति आराच्छब्दयोगे पञ्चमी।

वरटाभिः = हंसीभिः। "हंसस्य योषिद् वरटे" त्यमरः। राज-हंसानाम्, "राजहंसास्तु ते चञ्चुचरणैर्लोहितैः सिताः। मलिनैर्मल्लिकाक्षास्त" इत्यमरः। पक्षस्य मूलं पक्षतिः, 'पक्षात्तिः' तत्र या कण्डूतिः = खर्जूः, तया कर्तृभूतया कषणम् = घर्षणम्, तेन चञ्चलाः = चपलाः, चञ्चुपुटा येषां तेषाम्। मल्लिकाक्षाणाम् = मलिनचञ्चुचरणहंसानाम्। उपरिष्ठादमरः। लक्ष्मणायाः = सारसयोषितः, "सारसस्य तु लक्ष्मणे" त्यमरः, कण्ठस्पर्शेन यद् हर्षवर्षम् = आनन्दवृष्टिः, तेन प्रफुल्लानि = विकसितानि, अङ्गरुहाणि = लोमानि येषां तेषाम्। भ्रमताम् = सञ्चरताम्, भ्रमराणाम्, झङ्कार-

---

की प्रभा से लाल हो रही सीढ़ियों से उतर कर हनुमान जी के मन्दिर के मुख्य द्वार पर सिर झुका कर प्रणाम करके हम दोनों ने स्नान आदि नित्य कर्म समाप्त कर लिया। उस ब्रह्मचारी बालक द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से चल कर हम लोग पहले देखे हुए उस छोटे से तालाब के पश्चिम थोड़ी ही दूर पर स्थित अमृतोद नाम के बहुत बड़े तालाब पर पहुँचे।

वहाँ राजहंसियों के द्वारा अनुगम्यमान राजहंसों, पंखों के मूल की खुजली शान्त करने के लिये अपनी मलिन और चञ्चल चोंचों से उन्हें कुरेद रहे हंसों, सारसियों के कण्ठस्पर्श के आनन्द से रोमाञ्चित हुए शरीर वाले सारसों और उड़ रहे भौंरों की गूँज से दूर हो गई निद्रा

निद्राणां कारण्डवानाञ्च तास्ताः शोभाः पश्यन्तौ, तडागतट एव पम्फुल्यमानानां मकरन्दतुन्दिलानामिन्दीवराणां समीपत एव मसृण-पाषाण-पट्टिकासु कुशासनानि मृगचर्मासनानि ऊर्णासनानि च विस्तीर्योपविष्टानाम् ,गायत्री-जप-पराधीन-दशनवसनानाम् ,कलित-ललित-तिलकालकानाम् ,दर्भाङ्गुलीयकालङ्कृताङ्गुलीनां मूर्तिमता-मिव ब्रह्मतेजसाम् , साकाराणामिव तपसाम् ,धृतावताराणामिव च ब्रह्मचर्य्याणां मुनीनां दर्शनं कुर्वन्तौ, कृतनित्यक्रियं परिपुष्ट-तुलसी-मालिकाङ्कित-कण्ठं सिन्दूरोर्द्ध्वपुण्ड्रमण्डित-ललाटं रामचरण-

---

भारेण=समधिकझङ्कारशब्देन, विद्राविता=उत्सारिता, निद्रा येषां तेषाम् । पम्फुल्यमानानाम्=विशारूणाम् । विशरणार्थकाद् ञि-फला-धातोर्यङन्तात् शानच् । तुन्दमस्त्येषामिति तुन्दिलाः, 'तुन्दादिभ्य इलच्' । मकरन्देन=पुष्परसेन, तुन्दिलानाम्=पिचण्डिलानाम्, भरितानामिति यावत् । मसृणपाषाणपट्टिकासु=चिक्कणप्रस्तरपट्टिकासु । गायत्रीजप-पराधीने दशनवसने=ओष्ठौ येषां तेषाम् । कलिताः=धारिताः,ललिताः =शोभनाः, तिलकालकाः=तिलकाः, यैस्तेषाम् । "तिलकस्तिलकालक" इत्यमरः । दर्भाङ्गुलीयकैः=कुशनिर्मितांगुलिधारणीयैः, पवित्रैरिति यावत्, अलंकृताः=भूषिताः, अंगुल्यो येषां तेषाम् । मन्दिराध्यक्षं विशिनष्टि—

वाले कारण्डवों की उन उन शोभाओं को देखते हुए, तालाब के किनारे ही, मकरंद से भरे खिले कमलों के पास ही चिकनी प्रस्तर-शिलाओं पर कुशासन, मृगचर्मासन और ऊर्णासन बिछा कर बैठे हुए, गायत्री-जप में लगे होठों वाले, सुन्दर तिलक लगाये हुए, कुश की पवित्री से सुशोभित उँगलियों वाले, मूर्तिमान ब्रह्म-तेज, साकार तपस्या और अवतार धारण करके आये ब्रह्मचर्य के समान मुनियों के दर्शन करते हुए हम दोनों ने, नित्यक्रिया से निवृत्त हो गये, गले में बड़े दानों की तुलसी माला धारण किये, ललाट पर सिन्दूर का ऊर्द्ध्वपुण्ड्र लगाये तथा

चिह्नमुद्रा-मुद्रित-बाहुदण्ड-वक्षस्थलं हनूमन्मन्दिराध्यक्षं प्रणतवन्तौ।
तेन चाऽऽज्ञप्तम्—"यद्यायुष्मन्तौ सपदि महाराष्ट्रदेशं जिगमिषथश्चेदचिरेणैव मस्तके सम्मृद्य एतद् राम-रजः तडागे निमज्जतम्" इत्यवधार्य्य आवां तथैव व्यधिष्वहि।

तदाज्ञया वस्त्राणि परिधाय च, तत्समीपे समुपविश्य, तेन च समन्त्र-जपं कुश-जलेनाभ्युक्षितौ हनुमदङ्ग-रञ्जित-सिन्दूरेण विहित-तिलकौ स्वकीयौ सैन्धवौ समारुह्य। ततः पञ्चषान् व्यूढ-वयस्कान् जटिलान् सुपरिणाहान् वाहानारूढान् आवाभ्यां सह गन्तुमाज्ञाप्य मन्दिराध्यक्षोऽभाषिष्ट—

"कुमारौ! इतः पुण्यनगर-पर्य्यन्तं प्रतिगव्यूत्यन्तरालं महाव्रता-

---

कृतनित्यक्रियमित्यादि। रामचरणचिह्नमेव मुद्रा=मुद्रणसाधनम्, तया मुद्रितम्=अङ्कितम्, बाहुदण्डवक्षःस्थलं यस्य तम्।

समारुह्य=आरूढौ। व्यूढम्=पृथुलम्, वयो येषां तान् युवकानित्यर्थः। सुष्ठु परिणाहः=विशालता येषां तान्, वाहान्=

श्रीरामचन्द्र के चरणों के चिह्नों से अङ्कित बाहुदण्ड और वक्षःस्थल वाले हनुमान मन्दिर के अध्यक्ष को प्रणाम किया।

उन्होंने आज्ञा दी कि, 'यदि तुम दोनों अभी महाराष्ट्र देश को जाना चाहते हो, तो शीघ्र ही इस रामरज को मस्तक में लगा कर, तालाब के जल में प्रवेश करो।' यह सुनकर हम दोनों ने वैसा ही किया।

उनकी आज्ञा से वस्त्र पहिन कर हम उनके पास बैठ गये। उन्होंने मन्त्र पढ़ कर, कुश से हमारे ऊपर जल छिड़का और महावीर की मूर्ति के अङ्ग में लगे सिन्दूर का तिलक लगाकर हम दोनों अपने घोड़ों पर सवार हो गए। फिर, जटाधारी और विशाल शरीर वाले पाँच-छः वयस्क घुड़सवारों को हम दोनों के साथ जाने की आज्ञा देकर मन्दिराध्यक्ष ने कहा—

'कुमारों! यहाँ से पूना नगर तक, प्रत्येक दो कोस के अन्तर पर,

श्रम-परम्पराः सन्ति। सर्वत्र कुटीरेषु संन्यासिनो भक्ता विरक्ताश्च निवसन्ति। कियद्दूरपर्यन्तं पञ्चषाः सहाया युवयोः सहचरा भविष्यन्ति, परस्ताच्छिथिलिते लुण्ठक-भये एकेनैव केनचिदश्वारोहेण प्रदर्शित-मार्गौ सुखेन यथाभिलषितं देशं यास्यथः। सहायक-परिवर्त्तनं स्थाने स्थाने स्वयमेव भविष्यति, न तत्र युवयोः कयाऽपि विचिकित्सया भाव्यम्, श्रान्तैः श्रान्तैराश्रमेषु विश्रमणीयम्, निदिद्रासद्भिः कुटीरेष्वेव निद्रा द्राघणीया, विलेपनाभ्यङ्गस्नान-पानाशन-संवाहनादि-सौकर्यं सर्वत्र सहायकाः साधयिष्यन्ति"—इति।

ततस्तं प्रणम्य तथैव ससहायौ आवां प्रचलितौ। सहचर-

अश्वान्। विचिकित्सया=संशयेन। "विचिकित्सा तु संशय" इत्यमरः। निदिद्रासद्भिः=निद्रातुमिच्छद्भिः। द्राघणीया=दीर्घयितव्या। यापनीयेति यावत्। विलेपनम्=चन्दनकस्तूरिकादिचर्च्चनम्, अभ्यङ्गः=उद्वर्त्तनम्, पिष्टसर्षपादिना, स्नानम्=निर्णेजनम्, पानम्, दुग्धादेः, अशनम्=भोजनम्, संवाहनम्=चरणमर्दनम्, एवमादीनां सौकर्यम्=सौलभ्यम्।

महाव्रत आश्रम हैं। सभी जगह कुटियों में संन्यासी, भक्त और विरक्त निवास करते हैं। कुछ दूर तक पाँच-छः सहायक तुम्हारे साथ रहेंगे, फिर लुटेरों का भय कम हो जाने पर, तुम दोनों किसी एक ही अश्वारोही के पथप्रदर्शन से सुखपूर्वक अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाओगे। स्थान-स्थान पर सहायकों का परिवर्तन स्वयं ही हो जायगा, इसमें तुम दोनों किसी प्रकार की शंका मत करना। थक जाने पर आश्रमों में विश्राम कर लेना और सोने की इच्छा होने पर कुटीरों में ही सोना। तुम्हारे चन्दन, कस्तूरी और उबटन लगाने, नहलाने तथा पैर दबाने आदि का काम और खाने-पीने आदि की व्यवस्था सभी स्थानों पर सहायक कर देंगे।

तदनन्तर, उन्हें प्रणाम कर, वैसे ही सहायकों के साथ हम दोनों

निर्दिष्टेनैव सर्वैरविज्ञेयेन वन्य-द्रुम-जाल-रुद्धेन गण्डशैल-परिक्रमणा-धित्यकाधिरोहणोपत्यका-परिलङ्घन-तटिनी-तरणाद्यायास-दीक्षा-दक्षेण पथा प्रचलन्तौ मध्ये मध्ये कुटीरेषु विरमन्तौ तत्र तत्र सुस्वादु-भोजनैः सकल-समुचित-सामग्री-साहाय्यैः सुखेन विश्रान्ति-सुख-मनुभवन्तौ तत्र तत्र परिवर्तितसहायकौ दिनकतिपयैरेकस्या नद्यास्तटमयासिष्व। तत्रैकस्य चिञ्चा-वृक्षस्य स्कन्धे प्रलम्ब-रज्ज्वा निजाजानेयावाबध्य निकटस्थ-यूप-तरु-शाखायां च वस्त्रादीनि संलम्बय्य स्नातुं जलमवागाहिष्वहि। अस्मत्सहचरश्च निजाश्वस्य पृष्ठमार्द्रयन्निव तं वल्गायां गृहीत्वा पर्य्यटयितुमारब्ध।

दिनकतिपयैः=कियद्भिश्चन दिवसैः। "पोटायुवतिस्तोककतिपये"ति कतिपयशब्दस्य परनिपातः। अयासिष्व=अगच्छाव। चिञ्चावृक्षस्य= तिन्तिडीवृक्षस्य। "तिन्तिडीचिञ्चे" त्यमरः। "इमली" इति भाषा। स्कन्धे=प्रकाण्डे "अस्त्री प्रकाण्डः स्कन्धः स्यान्मूलाच्छाखावधिस्तरो" रित्यमरः। अवागाहिष्वहि=प्रविष्टौ। पर्यटयितुम्=चालयितुम्।

चल दिये। साथियों द्वारा दिखाये गये उस मार्ग—जो सभी द्वारा नहीं जाना जा सकता था, जो जंगली पेड़ों के समूह से रुँधा था और जिसमें—पहाड़ों से गिरे विशाल शिलाखण्डों पर घूम कर जाने, अधित्य-काओं पर चढ़ने, घाटियों को लाँघने तथा नदियों को पार करने का कष्ट उठाना पड़ता था—से चलते हुए, बीच-बीच में कुटियों में आराम करते हुए, स्वादिष्ठ भोजन और सारी समुचित सामग्री की सहायता से सुखपूर्वक विश्राम करते हुए, कुटीरों में परिवर्तित होते रहने वाले सहा-यकों के साथ, कुछ ही दिनों में हम दोनों भीमा नदी के किनारे पहुँच गए। वहाँ एक इमली के वृक्ष के तने में, लम्बी रस्सी से अपने घोड़ों को बाँध कर, समीप के यूप वृक्ष (शहतूत) की डाल पर कपड़े आदि टाँग कर, हम दोनों ने स्नान करने के लिये जल में प्रवेश किया। हमारे साथी ने अपने घोड़े की पीठ ठंढी करते हुए, उसकी लगाम पकड़ कर उसे फेरना (घुमाना) प्रारम्भ कर दिया।

ततो जलाद् वहिरागत्य, तिन्तिडी-शाखात उत्तार्य शुष्क-वस्त्रे परिधाय, इतस्ततः पर्यट्यापि च कां भूमिमायातौ—इति निश्चेतुं नापारयाव। तावदकस्माद् दृष्टं यद्-उत्तरतः खुर-धूलिभिः पार्श्व-परिवर्त्तिलता-कुसुम-परागान् द्विगुणयन्तं लाङ्गूल-चामरेण वीजयन्तं मुखफेनैः पुष्पाणीव वर्षन्तं कञ्चित् श्यामकर्णं शारदाभ्रश्वेतं वाजिन-मारुह्य लोलत्खड्ग-वर्म्मोच्छन्न-पृष्ठदेशः कवच-शिञ्जित-विजित-कोकिल-शावक-निकर-कूजितो वीर-वेशः कश्चिच्छ्यामो युवा समायातीति।

स च क्षणेनैवाऽऽगत्य, नौ सकलं वृत्तान्तं पृष्ट्वा, विज्ञाय च,

उत्तरतो वाजिनमारुह्य श्यामो युवा समायातीति सम्बन्धः। द्विगुणयन्तम्=वर्धयन्तम्। लांगूलमेव चामरम्=प्रकीर्णकम्, तेन। श्यामं विशिनष्टि—लोलद्भ्याम्=सञ्चलद्भ्याम्, खड्गचर्मभ्याम्=असित-त्प्रहाररक्षकाभ्याम्, छन्नः पृष्ठदेशो यस्य सः। कवचशिञ्जितेन=वार-वाणशब्देन, "भूषणानाञ्च शिञ्जितमि" त्यमरः, विजितं कोकिल-शावक-निकर-कूजितम्=परभृत-शिशु-समूह-रणितं, येन सः।

उसके बाद, जल के बाहर आकर, (इमली) वृक्ष की शाखा से सूखे कपड़ों को उतार कर पहिन कर, इधर-उधर घूम कर भी हम दोनों इस बात का निश्चय न कर सके कि हम कहाँ आ गये हैं। इसी बीच हमने एकाएक देखा कि उत्तर दिशा की ओर से, खुरक्षेप से उड़ने वाली धूल से समीप की लताओं के पुष्पों के पराग को दूना करते हुए, पूँछ का चँवर डुलाते हुए और मुख से निकलने वाले फेन के रूप में पुष्प सा बरसाते हुए किसी काले कानों वाले, शरत्कालीन बादलों के समान सफ़ेद घोड़े पर चढ़ा, पीठ पर हिलती हुई तलवार और ढाल डाले, कवच के शब्द से कोयलों के बच्चों की कूज को जीतने वाला,—वीरवेष-धारी कोई साँवले रंग का युवक आ रहा है।

वह क्षण भर में ही आकर, हम दोनों का सारा हाल पूछ कर और

प्रावोचत्-"अवगतम्,भवतोरेव विषये दृष्टस्वप्नः शिववीरो भवन्तौ स्मरति, तत्सपद्यश्वावारुह्य आगम्यताम्, न वां भयं किमपि, व्यतीतो भवतोर्दुःखमयः समयः"-इति।

ततः साश्चर्यं सपदि वस्त्राणि परिधाय सहचरमाकार्य तेन सहाश्वावारुह्य तमनुसृत्य तत्प्रदिष्टं वासादि-सौकर्यमङ्गीकृत्य सपद्येव निविवृत्सन्तं जटिल-सहचरं साश्लेषमनुज्ञाप्य यथासमयं शिववीरं साक्षात्कृत्यावगतम्—यदेष एव महात्मा भटवेषेणास्मन्निकटे भीमा-नद्यास्तटं गत आसीदिति।

तत्कालमारभ्याद्यावधि तस्यैव करकमलच्छायायां वसावः, भगिनी-वियोग-तापश्चिरादासीत्, सोऽप्यद्य निवृत्तः, पुरोहितचर-

---

निविवृत्सन्तम् = निवर्त्तितुमिच्छन्तम्। साश्लेषम् = सालिङ्गनम्। क्रियाविशेषणम्।

जान कर बोला, 'मैं समझ गया, आप ही के विषय में स्वप्न देख कर वीर शिवाजी ने आप दोनों को याद किया है, अतः इसी समय घोड़ों पर चढ़ कर चलिये, अब आपको कोई भय नहीं है, आपका दुःखमय समय बीत गया।'

उसके बाद आश्चर्यचकित होकर झट वस्त्र पहिन कर, साथी को बुलाकर, उसके साथ घोड़ों पर बैठ कर, उसी का अनुसरण करते हुए, उसके द्वारा बताई गई निवास आदि सुविधाओं को स्वीकार कर,तत्क्षण ही लौटने के इच्छुक उस जटाधारी साथी को आलिङ्गन कर, उसे लौटने की अनुमति देकर, यथासमय शिवाजी से मिलने पर ज्ञात हुआ कि यही महापुरुष, सैनिक के वेष में भीमा नदी के किनारे हम लोगों के पास गये थे।

उस समय से आज तक हम दोनों उन्हीं के कर-कमलों की छाया में रह रहे हैं। बहुत दिनों से बहिन के वियोग का कष्ट था, आज वह भी

णावपि दृष्टौ, इति सर्वं शुभमेव परस्तात् सम्भाव्यते—इत्येष आवयोर्वृत्तान्तः ।"

ततो मुहूर्तं सर्वेऽप्येतद्वृत्तान्तस्यैव पौर्वापर्य-स्मरण-पराधीना इवाऽऽसिषत । परिशेषे च पुटपाकवदन्तरेव दन्दह्यमानेन बाष्प-व्रातेन आविलस्यापि अप्रकटित-बहिश्चेष्टस्य ब्रह्मचारिगुरोः प्रार्थनया देवशर्म्मणा तोरण-दुर्ग-समीपे हनूमन्मन्दिरे एव निवासः स्वीकृतः । तदेव च प्रबन्धुं सर्वेऽपि कुटीरादुत्थिताः ।

इति तृतीयो निश्वासः ।

—:※:०:※:—

आसिषत=स्थिताः, परिशेषे=पर्यन्ते । पुटपाकवत्=उभयतः पाकवत् । आविलस्य=कलुषस्य, क्षुभितस्येत्यर्थः । शोकः किंमूल इत्यग्रे स्फुटीभविष्यति ।

इति श्रीशिवराजविजयवैजयन्त्यां तृतीयनिश्वासविवरणम् ॥

दूर हो गया, पुरोहित जी के दर्शन भी हो गए और भविष्य में भी मंगल की ही संभावना है । यही हम दोनों का वृत्तान्त है ।

तदनन्तर क्षण भर सभी लोग इसी वृत्तान्त के पौर्वापर्य का स्मरण करते हुए से बैठे रहे । उसके बाद पुटपाक के समान अन्दर ही अन्दर जल रहे तथा अश्रुओं से क्षुभित होते हुए भी बाहर से शान्त ब्रह्मचारि-गुरु की प्रार्थना से, देवशर्मा ने तोरणदुर्ग के पास हनुमान के मन्दिर में ही निवास करना स्वीकार कर लिया और उसी का प्रबन्ध करने के लिये सब लोग कुटी से उठ पड़े ।

शिवराजविजय के तृतीय निश्वास का हिन्दी—अनुवाद समाप्त ॥

"कार्यं वा साधयेयम्, देहं वा पातयेयम्"

—स्फुटकम्

मासोऽयमाषाढः, अस्ति च सायं समयः, अस्तं जिगमिषु-र्भगवान् भास्करः सिन्दूर-द्रव-स्नातानामिव वरुण-दिगवलम्बिना-मरुण-वारिवाहानामभ्यन्तरं प्रविष्टः। कलविङ्काश्चाटकैररुतैः परि-पूर्णेषु नीडेषु प्रतिनिवर्तन्ते। वनानि प्रतिक्षणमधिकाधिकां श्यामतां कलयन्ति। अथाकस्मात् परितो मेघ-माला पर्वतश्रेणीव प्रादुरभूत्।

श्रीरघुवीरसिंह आवश्यकं वाचिकं पत्रञ्चादाय महता क्लेशेन तोरणदुर्गं विवेश प्रतिपत्रञ्चानयदिति तुरीयनिश्वासीयकथाभागं श्रीशिवराजवीरीयदृढ-तम-प्रतिज्ञयैवोपक्षिपति—कार्यमिति। आषाढर्क्षसंवलिता पूर्णमासी यस्मि-न्मासे स आषाढः=शुचिः। सिन्दूरद्रवेण=नागोद्भवरसेन, स्नाता-नामिव=कृतस्नानानामिवेत्युत्प्रेक्षा। वरुणदिक्=पश्चिमा,तदवलम्बि-नाम्=तदाश्रितानाम्। कलविङ्काः=चटकाः "गौरैया" इति हिन्दी। चटकाया अपत्यानि चाटकैराः,"चटकाया एरग्"इत्यपत्ये प्रत्ययः,तेषां रुतैः= शब्दैः। नीडेषु=कुलायेषु। प्रतिनिवर्तन्ते=परावर्तन्ते। पक्षिणः समग्रं दिनमुड्डीय सायं स्वावासतरौ सम्मिलिता भूरि वाशितं कुर्वन्तीतीयं पक्षि-जातिः। कलयन्ति=धारयन्ति। मेघमाला=वारिदराजिः। पर्वतश्रेणीव=

* श्रीः *

चतुर्थ निश्वास

"या तो कार्य सिद्ध कर लूँगा, या शरीर को नष्ट कर दूँगा।"

आषाढ़ का महीना है और सन्ध्या का समय। अस्ताचल पहुँचने के इच्छुक भगवान् सूर्य, पश्चिम दिशा में स्थित सिन्दूर से नहाये हुए से लाल रंग के बादलों में प्रविष्ट हो गये हैं। गौरैया पक्षी अपने बच्चों के कलरव से पूर्ण घोसलों में लौट रहे हैं। वन क्षण-प्रतिक्षण अधिकाधिक अन्ध-कारपूर्ण (श्याम) होते जा रहे हैं। अकस्मात् चारों ओर से पर्वतमाला

त्वरणं सूक्ष्मविस्तारा, परतः प्रकटित-शिखरि-शिखर-विडम्बना, अथ दर्शित-दीर्घ-शुण्ड-मण्डित-दिगन्त-दन्तावल-भयानकाकारा, ततः पारस्परिक-संश्लेष-विहित-महान्धकारा च समस्तं गगनतलं पर्यच्छदीत् ॥

अस्मिन् समये एकः षोडशवर्षदेशीयो गौरो युवा हयेन पर्वत-श्रेणीरुपर्युपरि गच्छति स्म। एष सुघटित-दृढ-शरीरः, श्यामश्यामै-र्गुच्छ-गुच्छैः कुञ्चित-कुञ्चितैः कच-कलापैःकमनीय-कपोलपालिः,दूरा-

भूधरपङ्क्तिरिवेत्युपमा। प्रकटितम् = प्रदर्शितम् ,शिखरिशिखराणाम् = महीधरश्रृङ्गाणाम्। विडम्बनम् = अनुकृतिः, यया सा। दर्शितः = प्रकटीकृतः,दीर्घेण = लम्बायमानेन, शुण्डेन = करेण, मण्डितस्य = भूषितस्य, दिगन्तदन्तावलस्य = दिक्करिणः, "दन्ती दन्तावलो हस्ती" त्यमरः, भयानकः = भीतिप्रदः,आकारः = आकृतिः,यया सा। पारस्परिकसंश्लेषेण = इतरेतरमिलनेन, विहितः = उत्पादितः, अन्धकारः = अन्धतमसं यया सा। पर्यच्छदीत = व्याप्नोत्।

उपर्युपरि—"उपर्यध्यधसः सामीप्ये" इति द्वित्वम्। तद्योगे द्वितीया।

"उभसर्वतसोः कार्या धिगुपर्यादिषु त्रिषु।
द्वितीयाऽऽम्रेडितान्तेषु ततोऽन्यत्रापि दृश्यते" इत्युक्तेः।

गौरं युवानं विशिनष्टि-सुघटितदृढशरीरः = सुसम्पन्नपुष्टाङ्गः।

के समान मेघमाला प्रादुर्भूत हो गई। यह मेघमाला थोड़ी देर कम विस्तृत रही, फिर पर्वतशिखरों के समान हो गई, तदनन्तर बड़ी-बड़ी सूँडों से सुशोभित दिग्गजों के समान भयानक आकारवाली हो गई, और उसके बाद उमड़-घुमड़ कर (बादलों के परस्पर मिल जाने से) भीषण अन्धकार करके सारे आकाशमण्डल पर छा गई।

इसी समय लगभग सोलह वर्ष का एक गोरा युवक, घोड़े पर चढ़ा पर्वतमाला के ऊपर चला जा रहा था। सुडौल और दृढ़ शरीर वाला काले गुच्छेदार और घुँघराले केशों से सुशोभित कपोलों वाला, दूर से

गमनायास-वशेन सूक्ष्म-मौक्तिक-पटलेनेव स्वेद-विन्दु-व्रजेन समाच्छादित-ललाट-कपोल-नासाग्रोत्तरोष्ठः, प्रसन्न-वदनाम्भोज-प्रदर्शित-दृढ-सिद्धान्त-महोत्साहः, राजत-सूत्र-शिल्पकृत-वहुल-चाकचक्य-वक्र-हरितोष्णीष-शोभितः, हरितेनैव च कञ्चुकेन प्रकटीकृत-व्यूढ-गूढचरता-कार्यः, कोऽपि शिववीरस्य विश्वासपात्रं सिंहदुर्गात् तस्यैव पत्रमादाय तोरणदुर्गं प्रयाति ।

तावदकस्मादुत्थितो महान् झञ्झावातः, एकः सायंसमय-प्रयुक्तः

कमनीयकपोलपालिः = मनोहरगण्डस्थलः । सूक्ष्ममौक्तिकपटलेनेव = लघुमुक्तानिचयेनेवेत्युत्प्रेक्षा । स्वेदबिन्दुव्रजेन = घर्मजलकणसमूहेन । "घर्मो निदाघः स्वेदः स्यादि" त्यमरः । समाच्छादितम् = व्याप्तम्, ललाटकपोलनासाग्रोत्तरोष्ठं यस्य सः । प्रसन्नेन = विकसितेन, वदनाम्भोजेन = मुखकमलेन, प्रदर्शितः, दृढः, सिद्धान्तमहोत्साहः = कर्तव्यपरायणतामहाहर्षो येन सः । राजत-सूत्रस्य = रौप्यतन्तोः, शिल्पेन कृतम्, वहुलम् = प्रचुरम्, चाकचक्यं यस्यैवम्भूतं वक्रम् = अनृजु, हरितम् = हरिद्वर्णम्, उष्णीषम् = शिरोवेष्टनम्, तेन शोभितः । प्रकटीकृतम्, व्यूढम् = अङ्गीकृतम्, गूढचरताकार्यम् = गुप्तचरताकृत्यम्, येन सः । विश्वासस्य, पात्रम् = भाजनम् । नित्यक्लीवम् । परिकरालंकारो विशेषणानां साभिप्रायत्वादत्र गद्ये द्रष्टव्यः ।

झञ्झावातः, "सवृष्टिको महावातो झञ्झावातः प्रकीर्त्तितः"। प्रपतन्त्य-

---

आने के कारण थकान से उत्पन्न हुए छोटे-छोटे मोतियों के समान पसीने की बूँदों से व्याप्त मस्तक, कपोल, नाक के अग्रभाग और ओष्ठ वाला, अपने प्रसन्न मुख-कमल से दृढ़ सिद्धान्त के महोत्साह को प्रकट करने वाला, चाँदी के तार के काम के कारण चमचमा रहे और टेढ़े बँधे हुए हरे साफे से सुशोभित, हरे कञ्चुक से गुप्तचर होने की सूचना देने वाला, शिवाजी का यह विश्वासपात्र युवक उन्हीं का पत्र लेकर सिंहदुर्ग से तोरणदुर्ग जा रहा है।

तब तक अकस्मात् जोर से आँधी पानी आ गया। सायंकाल में होने

स्वभाव-वृत्तोऽन्धकारः, स च द्विगुणितो मेघमालाभिः। झंझावातोद्धूतै रेणुभिः शीर्णपत्रैः कुसुम-परागैः शुष्कपुष्पैश्च पुनरेष द्वैगुण्यं प्राप्तः। इह पर्वत-श्रेणीतः पर्वतश्रेणीः, वनाद् वनानि, शिखराच्छिखराणि, प्रपातात् प्रपाताः, अधित्यकातोऽधित्यकाः, उपत्यकात उपत्यकाः, न कोऽपि सरलो मार्गः, नानुद्वेदिनी भूमिः, पन्था अपि च नावलोक्यते। क्षणे क्षणे हयस्य खुराश्चिक्कण-पाषाण-खण्डेषु प्रस्खलन्ति। पदे-पदे दोधूयमाना वृक्ष-शाखाः सम्मुखमाघ्नन्ति, परं दृढसंकल्पोऽयं सादी न स्वकार्याद् विरमति। परितः स-हडहडा-शब्दं

स्मिन्निति प्रपातः=जलोत्पतनस्थानम्, "प्रपातस्त्वतटो भृगुरि"त्यमरः। अनुद्वेदिनी=दुःखादायिनी, सरलेति यावत्। चिक्कणपाषाणखण्डेषु=स्निग्धाश्मशकलेषु। प्रस्खलन्ति=प्रच्यवन्ते, "खसकते हैं" इति भाषायाम्। दोधूयमानाः=वारं वारं चलन्त्यः, सम्मुखम्=अभिमुखम्। आघ्नन्ति=ताडयन्ति। "आङो यमहन" इत्यात्मनेपदस्य तु नात्र विषयता, अकर्मकास्वाङ्गकर्मकादेव च तद्विधानात्। सादी=अश्वारोहः। विरमति, "व्याङ्परिभ्यो रम" इति परस्मैपदम्। वाताघातेन सञ्जातः पाषाणपातो येषां तेषाम्।

वाला स्वाभाविक अन्धकार मेघमालाओं से द्विगुणित हो गया। आँधी से उठी धूल, गिरे हुए पत्तों, पुष्पों के पराग और सूखे फूलों से यह अँधेरा और भी दूना हो गया। यहाँ पर्वत श्रेणी के बाद पर्वतश्रेणियाँ, वन के बाद वन, शिखर के बाद शिखर, झरने के बाद झरने, अधित्यका (पर्वत के पास की ऊँची भूमि) के बाद अधित्यकाएँ और उपत्यका (पर्वत के पास नीची भूमि) के बाद उपत्यकाएँ हैं। कोई सीधा रास्ता नहीं, कहीं समतल भूमि नहीं और रास्ता भी नहीं दिखाई देता है। घोड़े के खुर थोड़ी-थोड़ी देर बाद ही चिकने पाषाणखण्डों पर फिसलते थे। पद-पद पर, हिलती हुई वृक्षों की शाखायें सामने लड़ जाती थीं। परन्तु दृढ़संकल्पवाला यह घुड़सवार अपने कार्य से विरत नहीं होता। सभी

दोधूयमानानां परस्सहस्र-वृक्षाणाम्, वाताघात-संजात-पाषाण-पातानां प्रपातानाम्, महान्धतमसेन ग्रस्यमानानामिव सत्त्वानां क्रन्दनस्य च भयानकेन स्वनेन कवलीकृतमिव गगन-तलम्। परं नैष वीरः स्वकार्याद् विरमति। कदाचित् किञ्चिद् भीत इव घोटकः पादाभ्यामुत्तिष्ठति, कदाचिच्चलन्नकस्मात् परिवर्त्तते, कदाचिदुत्प्लुत्य च गच्छति। परमेष वीरो वल्गां संयच्छन्, मध्ये मध्ये सैन्धवस्य स्कन्धौ कन्धरां च करतलेनाऽऽस्फोटयन्, चुचुत्कारेण सान्त्वयंश्च न स्वकार्याद् विरमति। तावदारब्धश्चञ्चच्चञ्चल-चामीकर-रेखाकाराभिश्चञ्चलाभिरपि स्व-चमत्कारः। यावदेकस्यां दिशि नयने विक्षिपन्ती,

---

प्रपातानाम्=भृगूणाम्। सत्त्वानाम्=प्राणिनाम्। अन्धकारे स्थितानां महान्धतमसग्रस्यमानत्वेनोत्प्रेक्षा, स्वतः सिद्धायाश्च शब्दव्याप्तेराकाशकवलीकरणत्वेन। अकस्मात्=सहसा, परिवर्तते=परावर्तते। संयच्छन्=आकर्षन्। सैन्धवस्य=घोटकस्य। स्कन्धौ=अंसौ, आस्फोटयन=आस्फालयन्। सान्त्वयन्=आश्वासयन्, चञ्चच्चञ्चलस्य=विशिष्ट-चाकचक्ययुतस्य, चामीकरस्य=सुवर्णस्य, रेखाणामिवाकारो यासां ताभिः। चञ्चलाभिः=विद्युद्भिः। "तडित् सौदामिनी विद्युच्चञ्चला चपला

ओर हहराने के शब्द के साथ हिलते हुए वृक्षों, वायु के आघात से गिर रहे पत्थरों वाले झरनों और घोर अन्धकार से ग्रस्त से अन्य पशुओं के क्रन्दन के भयानक शब्द से आकाश व्याप्त हो गया। किन्तु यह वीर अपने कार्य से विरत नहीं होता। कभी-कभी कुछ डरा हुआ-सा घोड़ा दोनों पैर उठाकर खड़ा हो जाता है, कभी चलते-चलते अकस्मात् लौट पड़ता है, और कभी कूद कर चलता है। लेकिन यह वीर, लगाम को साधे हुए बीच-बीच में घोड़े के कन्धों को हाथ से थपथपाता हुआ, चुमकारियों से सान्त्वना देता हुआ, अपने कार्य से नहीं रुकता। तब तक चमचमाती हुई स्वर्णरेखाओं के आकारवाली चपलाओं ने भी अपना चमत्कार आरम्भ कर दिया। जब तक एक ओर नेत्रों में चकाचौंध पैदा करती हुई

कर्णौ स्फोटयन्ती, अवलोचकान् कम्पयन्ती, वन्यांस्त्रासयन्ती, गगनं कर्त्तयन्ती, मेघान् सौवर्ण-कषेणेव घ्नती, अन्धकारमग्निनेव दहन्ती, चपला चमत्करोति; तावदन्यस्यामपि अपरा ज्वालाजालेनेव बलाहकानावृणोति, स्फुरणोत्तरं स्फुरणं गर्ज्जनोत्तरं गर्ज्जनमिति परश्शतशतघ्नीप्रचार-जन्येनेव कन्दरि-कन्दर-प्रतिध्वनिभिश्चतुर्गुणितेन महाशब्देन पर्यपूर्यत साऽरण्यानी। परमधुनाऽपि-"देहं वा पातयेयं कार्यं वा साधयेयम्" इति कृतप्रतिज्ञोऽसौ शिववीर-चरो न निजकार्यान्निवर्त्तते।

यस्याध्यक्षः स्वयं परिश्रमी; कथं स न स्यात् स्वयं परिश्रमी? यस्य प्रभुः स्वयं साहसी; कथं स न भवेत् स्वयं साहसी? यस्य

अपी" त्यमरः। अनुप्रासो वर्णसाम्यात्। अवलोचकान्=दर्शकान्। कर्त्तयन्ती=विदारयन्ती। अतिशयोक्तिरसम्बन्धे सम्बन्धाभिधानात्। सौवर्णकेषणेव=हैरण्यशाणेनेवेत्युत्प्रेक्षा। "शाणस्तु निकषः कषः" इत्यमरः। बलाहकान्=मेघान्। पर्यपूर्यत=परितः पूर्णाऽक्रियत।

कानों को फोड़ती हुई, दर्शकों को कँपाती हुई, वन में रहने वालों को डराती हुई, आकाश को काटती हुई, बादलों को सोने के कोड़े से मारती सी हुई, अन्धकार को अग्नि से जलाती सी हुई दामिनी दमकती है, तब तक दूसरी ओर भी विद्युत् मानो ज्वाला समूहों से बादलों को ढक लेती है। चमकने के बाद चमकना, गर्जन के बाद गर्जन, इस प्रकार सैकड़ों तोपों के छूटने से उत्पन्न स्वर के समान पर्वत कन्दराओं की प्रतिध्वनि से चौगुने हुए महाशब्द से वह जंगल गूँज उठा। लेकिन अब भी "या तो देह का नाश कर दूँगा या कार्य को सिद्ध कर लूँगा" यह प्रतिज्ञा किये शिवाजी का दूत अपने कार्य से विरत नहीं हो रहा है।

जिसका अध्यक्ष स्वयं परिश्रमी है, वह परिश्रमी कैसे न हो? जिसका स्वामी स्वयं साहसी है वह साहसी कैसे न हो? जिसका स्वामी स्वयं

स्वामी स्वयमापदो न गणयति; कथं स गणयेदापदः ? यस्य च महाराजः स्वयं सङ्कल्पितं निश्चयेन साधयति; कथं स न साधयेत् स्व-संकल्पितम् ? अस्त्येष महाराज-शिववीरस्य दयापात्रं चरः, तत्कथमेष झञ्झा-बिभीषिकाभिर्बिभीषितः प्रभु-कार्यं विगणयेत् ? तदितोऽप्येष तथैव त्वरितमश्वं चालयंश्चलति।

अथ किञ्चित् स्रोतस्समुल्लङ्घमानोऽस्य तुरङ्गः कस्यापि दोधूयमानतरोः शाखया तथाऽभिहतो यथोच्छलन् भूमौ पपात, सादिनं चैकतः समपीपतत्। किन्तु तत्क्षणादेव सादी समुत्थितो वाजिनो वल्गां गृहीत्वा, सचुत्कारं ग्रीवां पृष्ठं चाऽऽस्फोट्य, अज्ञासीद्-यदश्वः स्वेदैः स्नातोऽस्तीति। तच्चक्षुषी विस्फार्य, पार्श्वस्थ-पलाशिनं

अभिहतः=ताडितः। उच्छलन्=उत्पतन्। "उछलते हुए" इति भाषायाम्। समपीपतत्=पातयामास। णिजन्तात् सम्पूर्वकात्पतेर्लुङि। विस्फार्य=विकास्य। पार्श्वस्थं पलाशिनम्=वृक्षम्। "पलाशी द्रुद्रुमा-

आपत्तियों को नहीं गिनता वह आपत्तियों को कैसे गिने ? जिसका महाराज स्वयं संकल्प किये गये काम को निश्चयपूर्वक सिद्ध करता है वह अपने संकल्प को कैसे न पूरा करे ? यह महाराज शिवाजी का कृपापात्र दूत है, फिर यह कैसे संभव है कि यह झञ्झा से डर जाय और प्रभु-कार्य की परवाह न करे ? अब भी वह घोड़ा बढ़ाता हुआ, उसी प्रकार तेजी से चला जा रहा है।

इसके बाद किसी सोते को पार करता हुआ इसका घोड़ा किसी हिलते हुए वृक्ष की शाखा से ऐसा लड़ गया कि चोट खाकर उछलता हुआ भूमि पर गिर पड़ा और सवार को एक ओर फेंक दिया। किन्तु सवार ने उसी क्षण उठ कर, घोड़े की लगाम पकड़ कर चुमकारते हुए, उसकी गर्दन और पीठ को थपथपा कर जान लिया कि घोड़ा पसीने से तर है। निकटस्थ वृक्ष को विस्फारित नेत्रों से सावधानीपूर्वक देखकर

निपुणं निरीक्ष्य,तच्छाखायामेव कानिचिन्निजवस्तून्यासज्य, दक्षिण-कर-धृति-रश्मिरश्वं शनैः शनैः परिभ्रमयितुमारेभे। अश्वश्च फेनान् पातयन् कन्धरामुद्धूनयन् हेषा-रवैश्चिर-परिश्रमं प्रकटयन् प्रस्यन्द-जल-सिक्त-भूभागः, समुत्सृष्ट-पुरीषः, शुष्क-स्वेदः, मुहूर्तार्द्धेनैव विस्मृत-परिश्रमः, सगति-स्तभं खुराग्रै भूमिमुत्खनन्, कर्णावुत्त-म्भयन्, लाङ्गूलं लोलयन्, सादिनो दक्षिणदेशे पृष्ठं निकटयन्, पुनरेनं वोढुं परतो धावितुं च समीहां समसूसुचत्।

तावदकस्मात् पूर्वस्यामतिरक्ताऽतिप्रलम्बाऽतिभयानका सक-डकडाशब्दं सौदामिनी समदेदीप्यत, तच्चमत्कार-चकितं चाश्वमेष

गमा" इत्यमरः। फेनान्=डिण्डीरान्। उद्धूनयन्=कम्पयन्। प्रस्यन्द-जलेन=स्वेदाम्भसा, सिक्तः=क्लिन्नतां नीतः, भूभागो येन सः। समुत्सृष्टम्=त्यक्तम्, पुरीषम्=गूथं येन सः। सगतिस्तम्भम्=सचलनाव-रोधम्। उत्खनन्=उत्पाटयन्। उत्तम्भयन्=ऊर्ध्वीकुर्वन्। लाङ्गूलम्=पुच्छम्। "लाङ्गूलं पुच्छशेफयोरि"ति हैमः। निकटयन्=समीपयन्। वोढुम्=नेतुम्। समीहाम्=इच्छाम्। समसूसुचत्=प्रकटितवान्।

उसकी शाखा में ही अपनी कुछ वस्तुओं को लटका कर और दाहिने हाथ से लगाम पकड़ कर उसने घोड़े को शनैः-शनैः टहलाना आरम्भ किया। घोड़ा फेन गिराता हुआ, गर्दन कँपाता (हिलाता) हुआ, हिनहिनाहट से दीर्घ-परिश्रम को प्रकट करता हुआ, पसीने के जल से उस भूभाग को आर्द्र बना कर, लीद करके, पसीने के सूख जाने पर, क्षण भर में ही अपने परिश्रम को भूल कर, टापों के अग्रभाग से भूमि को खोदता हुआ, कान उठाये हुए, पूँछ हिलाता हुआ, सवार के दाहिनी ओर अपनी पीठ बढ़ाता हुआ, पुनः उसे सवार करने और फिर दौड़ने की अपनी इच्छा को सूचित करने लगा।

तब तक अकस्मात् पूर्व दिशा में अत्यन्त रक्तवर्ण की, बहुत लम्बी और अतिभयानक बिजली कड़कड़ाहट के साथ चमक उठी। उसकी

यावत्स्थिरयति; तावत्स-तडतडा-शब्दं पूग-स्थूलैर्बिन्दुभिर्वर्षितु-मारब्ध मघवा, परं राम-कार्यार्थं प्रतिष्ठमानेन मारुतिनेव न सह्यते कार्यहानिः शिववीर-चरेण। तत्क्षणमेवासौ पुनः सज्जीभूय समुत्प्लुत्य घोटक-पृष्ठमारुरोह। घोटकश्च पुनस्त्वरितगत्या प्रचलितः। यदा यदा विद्युद् विद्योतते; तदातदा पन्था अवलोक्यते, तदनुसन्धानेनैव वाहोऽयं शिलातलानि परिक्राम्यन् लताप्रतानानि त्यजन् स्रोतांस्युल्लङ्घमानः गर्तांश्च परिजहदुच्चचाल। तावद् दूरत एवाऽऽलोक्यत तोरण-दुर्ग-दीपः, इतश्च चरस्यैतस्य दृढप्रतिज्ञतां निर्भीकतां सोत्साहतां स्वामिकार्य-साधन-सत्य-सङ्कल्पतां च परी-

---

अश्वस्वभाववर्णनम्। समदेदीप्यत=अत्यन्तं चमदकरोत्। पूगस्थूलैः=क्रमुकफलमहत्तरैः। मघवा=इन्द्रः। मारुतिना=मरुत्तनयेन हनूमता। मारुतिरूपोपमानस्य, शिववीरचरस्योपमेयस्य, कार्यहान्यसहत्वस्य साधारणधर्मस्य, वाचकस्य चेवशब्दस्योपादानेन पूर्णोपमा। वाहः=अश्वः। परिजहत्=परित्यजन्, "नाभ्यस्ताच्छतु" रिति नुम्निषेधः। आलोक्यत=

चकाचौंध से चकित घोड़े को जब तक सवार रोके तब तक तड़-तड़ शब्द के साथ बादलों ने सुपारी के बराबर बूँदें गिराना शुरू कर दिया, लेकिन रामचन्द्र के कार्य के लिए चले हनुमान की तरह शिवाजी के दूत को भी कार्यहानि सह्य नहीं। वह उसी क्षण पुनः सुसज्जित हो, कूद कर घोड़े की पीठ पर बैठ गया और घोड़ा फिर तेज चाल से चल दिया। ज्यों-ज्यों बिजली चमकती थी, रास्ता दिखाई पड़ता जाता था, उसी ज्ञान के आधार पर यह सवार, शिलातलों को लाँघता, लताओं के झुरमुटों को बचाता, सोतों को कूद कर पार करता और गड्ढों को बचाता हुआ चल दिया। दूर से ही तोरण दुर्ग का दीप दिखाई दिया और इधर उस दूत की दृढ़-प्रतिज्ञता, निर्भीकता, उत्साहपूर्णता और अपने स्वामी के कार्य को सिद्ध करने की सत्यसंकल्पता की परीक्षा-सी करके

द्यैव प्रशशाम वृष्टिः। अम्ल-बलेन दुग्धमिव च खण्डशोऽभून्मेघमाला, ददृशे च पूर्वस्यां कलानाथः।

अथ क्षणेनैव पार्वत-नदी-वेग इव निर्जगाम झञ्झावातोत्पातोऽपि। ततो नूतन-वारिधारा-क्षालन-प्रकटित-परम-हारित्यानां परस्कोटिकीर-पटल-परीतानामिव समवालोक्यत लोचन-रोचिका शोभा पलाशिनाम्। सादी च चञ्चच्चन्द्रचमत्कारेण द्विगुणितोत्साहः "मा भूद् द्वार-रोधो मद्गमनात् पूर्वमेव" इति सत्वर-सत्वरः, झिल्ली-रव-मिश्रित-कवच-शिञ्जितः, वार्ष-वारि-व्रज-विधूत-स्वेद-

---

दृष्टः। प्रशशाम=शान्ताऽभूत्। वृष्टौ सत्यामपि कार्यं नावारुणच्चर इति तस्यास्तत्परीक्षात्वेनोत्प्रेक्षणम्। अम्लबलेन=दुग्धमिवेत्युपमा। ददृशे=दृष्टः। कर्मणि तङ्। कलानाथः=चन्द्रः।

क्षणेनैव झञ्झवातोत्पातो निर्जगामेति सम्बन्धः। उपमिनोति पार्वतनदीवेग इवेति। ततो लोचनरोचिका=नेत्रानन्ददायिनी, पलाशिनां शोभा समवालोक्यतेति सम्बन्धः। पलाशिनो विशिनष्टि—नूतनया=अभिनवया, वारिधारया=पानीयासारपातेन, क्षालनेन=निर्णेजनेन, प्रकटितं परमं हारित्यम्=हरिद्वर्णता, यैस्तेषाम्। उत्प्रेक्षते—परस्कोटिना कीरपटलेन परीतानामिव=व्याप्तानामिव। झिल्लीरवेण=भृङ्गारीशब्देन, "भृङ्गारी

वृष्टि शान्त हो गई। खटाई से दूध की तरह बादलों का समूह छिन्न-भिन्न हो गया और पूर्व दिशा में चन्द्रमा दिखाई दिया।

इसके पश्चात् क्षण भर बाद ही पहाड़ी नदी के वेग की तरह आँधी पानी भी निकल गया। फिर नवीन जलधारा से धुले होने के कारण अत्यधिक हरियाली को प्रकट करने वाले, करोड़ों शुक समूहों—से व्याप्त-से वृक्षों की नयनाभिराम शोभा दिखाई दी। चञ्चल चन्द्रमा की छटा से दूने हुये उत्साहवाला, "कहीं मेरे पहुँचने से पहले ही फाटक बन्द न हो जाय" यह सोचकर और भी जल्दी करता हुआ, झींगुर के स्वरों में अपने कवच की झंकार को मिलाता, वर्षा के जल से धुली हुई पसीने की

बिन्दु-सन्दोहः, साधुवाद-संवर्द्धित-हेषमाण-हयोत्साहः सपदेव तोरण-दुर्ग-यामिक-पादचार-परिमर्द्दितायां भुवि समाजगाम ।

अथ "को भवान् ? कुतो भवान् ?" इति यामिकेन पृष्टः, दत्त-निज-परिचयः, द्वारपालेनापि-"साधु ! साधु ! महता परिश्रमेण समायातोऽसि, उच्चैर्निश्वसिति तेऽश्वः, स्विन्नानि तव गात्राणि, आर्द्राणि तव वस्त्राणि, धन्योऽसि, तथाऽपि खेदं नाऽऽवहसि, समये समागतोऽसि, अवेक्षते तवैव पन्थानं दुर्गाधीशः । प्रविश्य-ताम् , अश्व उन्मुच्यताम् , सत्वरमेव च तेनापि साक्षात्कारो

चीरुका चीरी झिल्लिका च समा इमा" इत्यमरः । मिश्रितम्=संपृक्तम् , वृद्धिं गतमिति यावत् , कवचशिञ्जितम्=तनुत्राणध्वनिः, यस्य सः । कवचानां वीरभूषणत्वेन "भूषणानान्तु शिञ्जितमि" त्येनेन न विरोध इति ध्येयम् । वार्षेण=वर्षभवेन, वारिव्रजेन=जलनिचयेन, विधूतः=अपगतः, स्वेदबिन्दूनाम्=श्रमपृषताम् , सन्दोहः–समूहो यस्य सः । साधुवादेन=प्रशंसनेन । संवर्धितः=सम्यग् वृद्धिं नीतः, हेषमाणस्य=हेषानिरतस्य, हयस्योत्साहो येन सः । तोरणदुर्गस्य=तन्नामख्यातदुर्गस्य, यामिकानाम्=प्रहरिणाम् , पादचारैः=भ्रमणैः, परिमर्दितायाम्=प्रतिक्षुण्णायाम् ।

बूँदों वाला, शाबाशी दे दे कर हिनहिनाते घोड़े के उत्साह को बढ़ाता हुआ, शीघ्र ही वह सवार तोरणदुर्ग के पहरेदार के (पहरा देने से) चरणों से मर्दित हुई भूमि पर आ पहुँचा ।

तदनन्तर 'आप कौन हैं ? कहाँ से आये हैं' इस प्रकार पहरेदार के द्वारा पूछे जाने पर, अपना परिचय देकर, द्वारपाल के द्वारा भी— शाबाश, ! शाबाश ! बड़े मिहनत से आये हो, तुम्हारा घोड़ा भी जोरों से हाँफ रहा है, तुम्हारे अंग पसीने से तर हैं, वस्त्र भींग गये हैं, तुम धन्य हो, जो कि फिर भी नहीं थकते, समय पर आ गये हो, दुर्गाधीश तुम्हारा ही रास्ता देख रहे हैं, जाओ, घोड़ा खोल दो, शीघ्र ही उनसे

"प्रश्यताम्" इति सादरमालप्यमानो दुर्गं प्रविवेश।
अश्वमुन्मुच्य परस्सहस्र-पतग-पटल-कलकलोन्निद्रस्य सुदूर-वितत-काण्ड-प्रकाण्डस्य चैकस्य पनस-वृक्षस्य शाखायामाबध्य अविश्रान्त एव दुर्गाध्यक्ष-समीपमगमत्।

तत्रानयोरेवमभूदालापः—

दुर्गाध्यक्षः–[दूरत एव] एहि, एहि, समये समायातोऽसि, मुहूर्तं नायास्यश्चेद् द्वारेषु रुद्धेषु बहिरेव समस्तां रजनीमवत्स्यः।

सादी—विघ्नास्त्वभूवन्, परं माहात्म्यमेतत् प्रभु-प्रतापस्य,

परस्सहस्रपतगानाम् = असंख्यातपक्षिणाम्, पटलस्य = समूहस्य, कलकलेन = कोलाहलेन, उन्निद्रस्य = जाग्रतः। जाग्रताः शब्दं कुर्वन्तीत्युन्निद्रपदेन सशब्दत्वं लक्षितम्, तच्च सार्वकालिकशब्दवत्त्वव्यञ्जनद्वारा पक्षिणामसङ्ख्यातत्वपर्यवसायि। सुदूरं, वितताः = विस्तृताः, काण्डाः = शाखाः, प्रकाण्डाः = स्कन्धाः, यस्य तस्य। पनसवृक्षस्य = कण्टकितरोः, "कटहर" इति हिन्दी।

नायास्यः = नागमिष्यः। रजनीमित्यत्र "कालाध्वनो" रिति द्वितीया। अवत्स्यः = वासमकरिष्यः। हेतुहेतुमद्भावे लृङ्।

भेंट करो". इस प्रकार आदरपूर्वक बात किये जाते हुये सवार ने दुर्ग में प्रवेश किया।

वह घोड़े को खोल कर और उसे हजारों पक्षियों के कलकल से मुखर, दूर तक फैली शाखाओं और तने वाले एक कटहल के वृक्ष की शाखा में बाँधकर, विना विश्राम किये ही दुर्गाध्यक्ष के पास चला गया।

वहाँ उन दोनों में इस प्रकार बातचीत हुईः—

दुर्गाध्यक्ष—(दूर से ही) आओ, आओ, ठीक समय पर आ गये; अगर थोड़ी देर और न आते तो फाटक बन्द होने पर सारी रात बाहर ही गुजारनी पड़ती।

अश्वारोही—अड़चनें तो बहुत हुईं, लेकिन प्रभु के प्रताप की महिमा

यत् तदीया विघ्नैर्न व्याहन्यन्ते ।

दुर्गाध्यक्षः—(तं शिरो नमयन्तं जीवेत्युक्त्वा) उपविश, उप[illegible]

ततो दुर्गाध्यक्षस्तु चुम्बित-यौवनामप्यत्यक्त-बालभावां तस्य मधुरामाकृतिं पश्यन्, सचकितं विचारयितुमारेभे, यत्—"कथं बाल एष प्रेषितः श्रीमता महाराष्ट्र-राजेन गुप्त-विषय-सन्धानेषु" क्षणमवस्थाय च "द्रक्ष्यामि प्रथमं किमेतेनाऽऽनीतं पत्रादिकम्"—इति निश्चित्य, "भगवन्! प्रभुणैकान्ते मामाहूय प्रदत्तमिदं पत्रमस्ति, तत् स्वीक्रियताम्" इति कटिबन्धनान्निःसार्य ददतो हस्तादादाय, उत्थाय च स्तम्भावलम्बित-दीप-प्रकाशेन तूष्णीं मनस्येव पठित्वा, आकुञ्च्य, पूर्वोपविष्ट-मञ्चे उपविश्य, पुनः पौनःपुन्येना-

---

चुम्बितं यौवनं यया तामपि, न त्यक्तः=न दूरीकृतः, बालभावः=अर्भकत्वं, यया ताम्। आकृतिम्=आकारम्। गुप्तविषयाणाम्=रहोविचाराणाम्। सन्धानेषु=अनुसन्धानेषु ज्ञानेषु। अवस्थाय, तूष्णीमिति शेषः। द्रक्ष्यामि, सामान्यभविष्यति। मञ्चे=पर्यङ्के। "शयनं मञ्चपर्यङ्क-

---

है कि उनके लोग विघ्नों से बाधित नहीं होते।

दुर्गाध्यक्ष—(नतमस्तक हुए सवार को 'जियो' ऐसा कहकर) बैठो, बैठो!

तब दुर्गाध्यक्ष तरुणाई को छूती हुई भी बालभाव का त्याग न करने वाली उसकी मधुर आकृति को देखते हुए विचारने लगे कि "श्रीमान् महाराष्ट्रराज ने ऐसे गुप्त विषयों के ज्ञान के लिए इस बालक को कैसे भेज दिया"। क्षणभर रुककर "पहले देखूँ क्या यह कोई पत्र आदि लाया है"—यह निश्चय करके, "श्रीमान् जी, स्वामी ने एकान्त में मुझे बुला कर यह पत्र दिया है, इसे स्वीकार कीजिये", यह कहकर कमरबन्द से पत्र निकालकर देने वाले उस अश्वारोही के हाथ से पत्र लेकर, उठकर, खम्भे पर अवस्थित दीपक के प्रकाश में चुपचाप मन में ही पढ़कर तथा मोड़कर, पहले जिस कुर्सी पर बैठे थे उसी पर

...ल-विनिन्दकांस्तस्य कुञ्चित-कच-गुच्छान्, उत्पत्स्यमान-पूर्ण... प्ररुकुर-स्विन्नमुत्तरोष्ठम्, अतिमसृण-कमलोदर-किशलय-सोदरौ कपोलौ, उन्नतमंसम्, दीर्घौ बाहू, माधुर्य-वर्षिणी अक्षिणी, विनयभरेणेव विनतां कन्धराम्, तेजसेव गौरमङ्गम्, दाक्षिण्येनेवाङ्कितं ललाटम्, भद्रतयेव च स्नातं शरीरं विलोकयन्, वारं वारं विचिन्तयंश्च मशकैरप्यशङ्कनीयम्, मक्षिकाभिरप्यनीक्षणीयम्, समीरणेनाप्यनीरणीयम्, प्रकाशेनाप्यप्रकाशनीयम्, लेखन्याऽप्य-

---

पल्यङ्का'' इत्यमरः। अलिपटलविनिन्दकान्=भ्रमरसमूहाभिभावकान्। कार्ष्ण्येन भ्रमरनिचयोऽपि पराजित इति नितान्तकार्ष्ण्यं व्यङ्ग्यम्। उत्पत्स्यमानेषु=उदेष्यमाणेषु। केशाङ्कुरेषु=श्मश्रुप्ररोहेषु। स्विन्नम्=आर्द्रम्। उत्तरम्=ऊर्ध्वश्च, तदोष्ठम्। ''ओत्वोष्ठयोः समासे वे''ति वृद्धिविकल्पः। अतिमसृणकमलस्य=सुचिक्कणपद्मस्य, उदरे=मध्ये, यत् किशलयम्=पलाशम्, तस्य सोदरौ=तुल्यौ। आर्थीयमुपमा। विनताम्=नम्राम्। कन्धराम्=गलम्। स्वभावतो विनतत्वस्य विनयभरेणेवेत्युत्प्रेक्षणम्। एवमुत्तरत्रापि। दाक्षिण्येन=औदार्येण। भद्रतया=शान्ततया। मशकैरपि, कर्णान्तिके स्वनद्भिरपि न शंकितुमर्हमिति ध्वनिः। अनीक्षणीयम्=अनवलोकनीयम्। अत्र वृत्तान्तगतं गोप्यतमत्वं मशकैर-

---

बैठकर, दुर्गाध्यक्ष, भ्रमर समूह के विनिन्दक उस सवार के घुँघराले बालों के गुच्छों, जिन पर रेख निकल रही थी ऐसे स्वेद से आर्द्र होंठ, अत्यन्त कोमल कमल के भीतरी पत्तों के सहोदर कपोलों, ऊँचे कन्धों, दीर्घ बाहुओं, माधुरी की वृष्टि करने वाली आँखों, मानों नम्रता के भार से झुकी हुई गर्दन, मानों तेज से गोर वर्ण वाले अङ्ग, उदारता से अंकित से मस्तक और शान्त भाव से स्नात से शरीर को बार बार देखते हुए, तथा मच्छरों से भी अशङ्कनीय, मक्षिकाओं से भी न देखे जा सकने वाले, वायु से भी न हिलाये जा सकने वाले, प्रकाश से भी प्रकाशित न किये जा सकने वाले, लेखनी से भी न लिखे जा सकने वाले

लेखनीयम्, पत्रेणापि चाप्रकटनीयम्, गुप्ततमं वृत्तान्त[illegible] लग्न-पृष्ठः, भ्रूमध्य-स्थापिताचल-दृष्टिः, क्षणं समाधि[illegible]व विचारपरवशोऽभूत्।

ततश्च पुनः सादिन आननं समवलोक्य, समप्राक्षीत्—वत्स! तत्रभवतः समीपात् कदा प्रचलितोऽसि?

स ऊचे—भगवन्! मार्त्तण्ड-मण्डले निम्लोचति।

तेनोक्तम्—कथं तर्हि प्रलम्बमुत्कटं चाध्वानमुल्लङ्घ्य, वात्या विधूय, अल्पेनैव समयेन समायातोऽसि?

स चाह—श्रीमन्! ईदृश एवाऽऽसीदादेशोऽत्र भवतः।

प्यशङ्कनीयमित्यादिना प्रकारान्तरेणाभिहितमिति पर्यायोक्तमलङ्कारः। उपबर्हलग्नपृष्ठः=उपधानसंपृक्तपृष्ठांशः। "उपधानं तूपबर्हः" इत्यमरः। भ्रूमध्ये स्थापिता अचला दृष्टिर्येन सः। अत एव "समाधिस्थित इवे" त्युपमानोपमेयभावः।

निम्लोचति=अस्ताचलं गच्छति। आसन्नास्तमनसमय इति यावत्।

शत्रन्तम्।

वात्याः=वायुचक्राणि 'आँधी' इति हिन्दी। लोकोक्तिरलङ्कारः।

और पत्र से भी प्रकट न किये जा सकने वाले, अत्यन्त गुप्त विचारों के सम्बन्ध में बार बार विचारते हुए, मसनद में पीठ लगाये हुए, भौंहों के बीच अचल दृष्टि को स्थापित किये हुए, क्षण भर समाधि-स्थित से होकर विचारमग्न हो गये।

उसने फिर सवार के मुख को भलीभाँति देखकर पूछा—'वत्स! पूजनीय शिवाजी के समीप से कब चले थे?'

वह बोला—'भगवन्, सूर्य के अस्त होते समय।'

दुर्गाध्यक्ष ने पूछा—तो इतने लम्बे और उत्कट मार्ग को पार करके, आँधियों को चीर कर, इतने अल्प काल में ही कैसे आ गये हो?

उसने भी कहा—'श्रीमन् पूजनीय प्रभु का ऐसा ही आदेश था।'

पुनः परं च—"अस्मै गुप्तसन्देशाः कथनीया न वा ? एष स्वतः प्रभ्रुश्चाच्छाद्य मदुक्तं प्रभुकर्णातिथीकरिष्यति न वा ? यतो लिपिभीलेखापि कर्णेजपस्य हस्तेऽपि पतेद्, इति वाग्भिरेवोदीरणीयो मम सन्देशः, इति परीक्षेयैनं वाग्जालैः—" इति विविच्य दुर्गाधीशस्तेन बहुशः समालपत् । अन्ततश्च तं सर्वथा गुप्त-सन्देश-योग्यमाकलय्य, मनस्येव हर्षमनुभवंश्चिरं प्रशशंस शिवराजं यत्—"नैतेषु विषयेषु कदाऽपि सतन्द्रोऽवतिष्ठते महाराजः, स सदा योग्यमेव जनं पदेषु नियुनक्ति, नूनं बालोऽप्येषोऽबालहृदयोऽस्ति, तदस्मै कथयिष्याम्यखिलं वृत्तान्तम् , पत्रं च केषुचिद् विषयेषु समर्पयिष्यामि ।" एवमालपच्च—

स्वस्मादपि, यदा स्वत एवाऽऽच्छादयति तदा किमु वक्तव्यं परस्मादिति ध्वनिः । एवञ्चाऽऽत्मवाची स्वशब्द इति तत्त्वम् । कर्णेजपस्य=सूचकस्य । "तत्पुरुषे कृति बहुलमि"ति विभक्तेरलुक् । परीक्षेय=परीक्षां कुर्याम् । तेन, "वृद्धो यूने"ति दर्शनेन सहार्थकशब्दाभावेऽपि तृतीया । तन्द्रया=आलस्येन, सहितः, सतन्द्रः ।

उससे आगे भी—"इससे गुप्त संदेश कहने चाहिए या नहीं; यह मेरी कही हुई बातों को अपने से भी छिपाकर प्रभु के कानों तक पहुँचायेगा या नहीं ? लिखा हुआ पत्रादि किसी भी चुगलखोर के हाथ में भी पड़ सकता है । अतः अपना संदेश मौखिक ही कहना चाहिए । इसलिए वाग्जाल से इसकी परीक्षा कर लूँ"—यह विचार कर दुर्गाधीश ने उसके साथ बहुत कुछ बातचीत की । और अन्त में उसे सर्वथा गुप्त संदेश के योग्य समझ कर, मन ही मन हर्ष का अनुभव करते हुए, महाराज शिवाजी की बड़ी देर तक प्रशंसा की कि महाराज ऐसे विषयों में कभी भी असावधान नहीं रहते, वह सदा योग्य व्यक्ति को ही पदों पर नियुक्त करते हैं । अवश्य ही यह बालक होने पर भी अबाल हृदय वाला है, अतः इससे सारा वृत्तान्त कह दूँ और कुछ विषयों से सम्बद्ध पत्र भी दे दूँ । फिर ऐसी बातचीत की ।

दुर्गाधीशः—मन्ये क्षत्रियोऽसि।

सादी—आम् श्रीमन्!

दुर्गा०—[स्मित्वा] नान्येषामपत्यान्येवं तेजस्वीनि दृढहृदयानि प्रभुभक्तानि च भवन्ति। [पुनः सम्मुखमवलोक्य] किं ते नाम?

सादी—[अञ्जलिं बद्ध्वा] आर्य! मां रघुवीरसिंह इति वदन्ति जनाः।

दुर्गा०—चिरञ्जीव [क्षणं विरम्य] अस्तु, सम्प्रति दुर्गात् बहिरेव सा[म्]मुखीने हनूमन्मन्दिरे रात्रिमतिवाहय, श्वस्तु किञ्चिदुदञ्चति म[रीचि]मालिनि अत्राऽऽगत्य पत्रादिकं गृहीत्वा महाराज-निकटे या[तासि]। रघुवीरः—'बाढम्'!

इति शिरो नमयित्वा, प्रतिनिवृत्य, पनस-शाखातोऽश्वमुन्मुच्य,

दुःखेन गम्यत इति दुर्गलक्षणं तद्भेदादिकञ्च पुराणेषु द्रष्टव्यम्। साम्मुखीने=सम्मुखस्थे। अतिवाहय=यापय, उदञ्चति=उदयं प्राप्नुवति। मरीचिमालिनि=सूर्ये, यातासि=गन्तासि। प्रापणार्थकाद् याते-

---

दुर्गाधीश—लगता है, क्षत्रिय हो?

घुड़सवार—हाँ! श्रीमन्।

दुर्गाधीश—(मुस्करा कर) अन्य की सन्ताने ऐसी तेजस्विनी, दृढहृदय और प्रभुभक्त नहीं होतीं। (पुनः सामने देखकर) तुम्हारा नाम क्या है?

सवार—(अञ्जलि बाँध कर) आर्य! लोग मुझे रघुवीर सिंह कहते हैं।

दुर्गाध्यक्ष—चिरञ्जीव! (क्षण भर रुक कर) खैर, इस समय दुर्ग से बाहर ही सामने वाले हनुमान जी के मन्दिर में ही रात बिताओ, सवेरे सूर्य के कुछ निकलते ही यहाँ आकर पत्रादि लेकर महाराज के पास चले जाना। रघुवीर सिंह ने "बहुत अच्छा!" यह कह कर, प्रणाम कर, लौट कर,

[illegible]षितस्य भृत्यस्यैकस्य हस्ते वल्गादान-पुरःसरं समर्प्य, अपर-दासेरकेण व्यादिष्ट-मार्गो नव-वारिद-वारि-बिन्दु-वृन्द-सम्पर्क-प्रकटित-सिन्धुर-सन्दोह-सन्तर्पण-मधुरगन्धि रजनीकर-कर-निकर-विरोचितां भूमिमालोकयन्, मन्दं मन्दमाससाद मारुति-मन्दिरम्। तत्र चाऽऽगन्तुकानामेव निवासाय कलित-यथोचित-साधनानां प्रकोष्ठानामन्यतमे प्रविश्य, गवाक्षानुन्मुद्र्य, वाताभिमुखं नाग-

---

लुंटि मध्यमपुरुषैकवचने। अपरदासेरकेण = इतरभृत्येन, व्यादिष्टमार्गः = प्रदर्शिताध्वः। नववारिदस्य = नूतनमेघस्य, वारिबिन्दूनाम् = जलकणा-नाम्, वृन्दस्य = समूहस्य, संपर्केण = संसर्गेण, प्रकटितः = [illegible]तः, सिन्धुरसन्दोहस्य = गजयूथस्य, सन्तर्पणः = तृप्तिजनकः, मधुरः = हृद्यः, गन्धो यस्यास्ताम्। रजनीकरस्य = शशिनः, कराणाम् = दीधितीनाम्, निकरेण = वृन्देन, विरोचिताम् = विशेषतः शोभिताम्। भूमेर्विशेषणद्वयमिदम्। आगन्तुकानाम् = अतिथीनाम्। कलितानि = सम्पादितानि, यथोचितम् = यथायोग्यम्, साधनानि = सामग्र्यः, येषु तेषाम्। प्रकोष्ठानाम् = कक्षाणाम्, "कमरा" पदवाच्यानाम्। गवाक्षान् = वातायनानि, "खिड़की" इति हिन्दी। उन्मुद्र्य = उद्घाट्य, "खोलकर" इति हिन्दी। नागदन्तिकासु = कीलिकासु, "खूँटी" इति हिन्दी।

कटहल की शाखा से घोड़े को खोल कर, दुर्गाध्यक्ष द्वारा भेजे गये एक नौकर के हाथ में उसकी लगाम देकर, दूसरे सेवक द्वारा निर्दिष्ट मार्ग से नये बादलों के जलकणों के संपर्क से हाथियों के यूथों को तृप्ति देने वाली मधुर गन्ध को प्रकट करने वाली और चन्द्रमा की किरणमाला से सुशोभित भूमि को देखता हुआ रघुवीर सिंह धीरे धीरे हनुमान जी के मन्दिर तक आया। वहाँ आगन्तुकों के निवास के लिये ही सभी आवश्यक सामग्री से सम्पन्न कमरों में से एक कमरे में प्रवेश करके, खिड़की खोल कर, कवच और वस्त्रों को खूँटियों पर हवा के रुख की

दन्तिकासु वर्म [illegible]णि चावलम्बय्य आसन्न-कूपा[illegible] [illegible]त-पादं प्रक्षाल्य, हनूमन्मूर्त्तिं दृष्ट्वा, कमपि नित्य-नि[illegible] [illegible]निर्वाह्य, दुर्गाध्यक्षप्रेषितं किञ्चिदाहारादिकमुपगृह्य,ग्रीष्मसु[illegible] [illegible] वातानां सुखमनुभवन्, कदाचिच्चन्द्रम्, कदाचित्तारकाः, कदाचिद् गिरि-शिखराणि, कदाचित् दुर्ग-प्राचीरम्, कदाचित् सुदूर-पर्य्यटद्यामिक-यातायातम्, कदाचिन्नतोन्नतभूभागान्, कदाचिच्चाभ्रङ्कषान् हनूम-न्मन्दिर-कलशान् अवलोकयन्, मन्दिरात् पश्चिमतः परिक्रमा-[illegible]र-पादाहति-पिच्छिल-पाषाण-पट्टिका-परिष्कृत-वेदिकायां पर्यटन्

[illegible]लम्बय्य = लम्बयित्वा। उत्तोल्य = उद्धृत्य। हस्तपादम्, प्राण्यङ्ग-[illegible]द्वन्द्वः। नित्यनियमम् = सन्ध्यादिकम्। निर्वाह्येवेति सम्बन्धः। यात्रायामसमये समुचितरूपेण तदकरणमिवार्थव्यञ्जथम्। वातानाम् = वायूनाम्। दुर्गस्य प्राचीरम् = प्रान्ततो वृतिः, "प्राचीरं प्रान्ततो वृतिरि" त्यमरः। सुदूरं पर्यटतां यामिकानाम् = प्रहरिणाम्, यातायातम्। अभ्रम् = मेघम्, "अभ्रं मेघो वारिवाहस्तनयित्नुर्बलाहक" इत्यमरः, कषन्ति = उल्लिखन्तीत्यभ्रंकषास्तान्। "सर्वकूलाभ्रकरीषेषु कष" इति खच्, "खित्यनव्ययस्ये"ति मुम्। परिक्रमापराणाम् = प्रदक्षिणानिरता-नाम्, पादाहतिभिः = चरणताडनैः, पिच्छिलाभिः = पङ्किलाभिः, गमा-गमचिह्नमयीभिरिति यावत्, पाषाणपट्टिकाभिः, = प्रस्तरखण्डैः, परि-

ओर लटका कर, पास के कुँए से पानी भर कर, हाथ पैर आदि धो कर, हनुमन्मूर्ति के दर्शन कर, कुछ नित्य-नियम सा पूरा कर, दुर्गाध्यक्ष द्वारा भेजा गया भोजन खाकर, ग्रीष्मकाल में अच्छी लगने वाली वायु के स्पर्श सुख का अनुभव करते हुए, कभी चन्द्रमा, कभी तारों, कभी पर्वत शिखरों, कभी दुर्ग की चहार दीवारी, कभी दूर तक गश्त लगाते हुए पहरेदार के गमनागमन, कभी नतोन्नत भूभाग और कभी आकाश चुम्बी मन्दिर के कलशों को देखते हुए, मन्दिर के पश्चिम ओर, परिक्रमा करने वाले लोगों के पैरों के आघात से पङ्किल और

को... पुरं ...मतिवाहयाम्बभूव ।

तावत्तेन प्रश्रुचान्द्र-फेनासार-च्छवि-विजित्वरया ज्योत्स्नया द्विगुणितोत्साहेन, धीरसमीर-स्पर्श-शान्त-श्रमेण, प्रस्फुरच्चन्द्रकला-कलिका-भ्रमद्-भ्रमर-झङ्कार-भर-मन्द्र-स्वर-पीयूष-शीकर - परिमार्जित-श्रवणेन समश्रूयन्त केचित् शुकीर्मूकयन्तः, हंसीर्ध्वंसयन्तः, सारिकाः सारयन्तः, कोकिलान् विकलयन्तः, वीणां च विगणयन्तः, काकली-

---

ष्कृतायाम् = भूषितायाम्, वेदिकायाम् = प्रतर्दिकायाम् । अतिवाहयाम्बभूव = गमयाञ्चकार ।

तावत्तेन स्वरालापाः समश्रूयन्तेति सम्बन्धः । तं त्रिभिर्विशिनष्टि—दुग्धस्य फेनानाम् = दुग्धडिण्डीराणाम्, आसारस्य = धारासम्पातस्य, छविः शोभायाः, विजित्वरया = जयनशीलया, द्विगुणितोत्साहेन = प्रवर्द्धितहर्षेण । धीरसमीरस्य = मन्दवातस्य, स्पर्शेन शान्तः = अपगतः, श्रमः = खेदो यस्य तेन । प्रस्फुरन्त्या = चाञ्चल्यमुपगच्छन्त्या, चन्द्रकलया = चन्द्रिकया, विकसितासु कलिकासु, शाकपार्थिवादिगणीयमध्यमपदलोपिसमासः, भ्रमताम् = चरताम्, भ्रमराणां झङ्कारभरेण = गुञ्जनातिरेकेण, सञ्जातो मन्द्रस्वर एव पीयूषम् = अमृतम्, तस्य शीकरैः = कणैः, परिमार्जिते = शोधिते, श्रवणे = कर्णौ यस्य तेन । केचित् = कियन्तश्चित्, स्वरालापाः । शुकी-हंसी-सारिकादिस्वरविजेतृत्वेनातिश्रेष्ठत्वं निखिलस्वर-

---

प्रस्तरखण्डों से सुशोभित वेदी (चबूतरे) के ऊपर टहलते हुए कुछ समय बिताया ।

तब तक दूध के फेन की छटा की जीतने वाली चाँदनी से द्विगुणित उत्साहवाले तथा मन्दवायु के स्पर्श से शान्त परिश्रम वाले एवं छिटकाती हुई चाँदनी से विकसित कलियों पर मँड़राते हुए भौंरों के गुञ्जन भार से मन्द्रस्वर रूपी अमृत कणों से शुद्ध हुए कर्णों वाले, उस सवार ने, शुकों को मूक बनाने वाले, हंसियों को विजित करने वाले, सारिकाओं को पलायित करने वाले, कोयल को विकल बनाने वाले और

कलमयाः स्वरालापाः। श्रवणेनैव तेनावगतं यत् [illegible] एते कस्या अपि बालिकायाः, सा च लज्जा-परवशा; यतः [illegible] गायति, उच्च-कुलप्रसूता; यतो नान्यासामेवमुदारा वाक्, समीपवर्त्तिनी; यतः स्फुटः स्वरः, पूर्वस्यामुपविष्टा च; यतस्तत एव मूर्छन्ति मूर्च्छनाः।

अथ कर्णाविव गृहीत्वा आकृष्टो रघुवीरसिंहो मन्दिरं दक्षिणा प्रदक्षिणीकृत्य तयैव प्रदक्षिणा-वेदिकया तत्क्षणमेव मन्दिरस्याग्नि-कोणे कपोत-पोतक-गूङ्कार-मधुर-कपोतपालिकाधस्तम्भारम्भ-

---

[illegible]क्षणत्वञ्च ध्वनितम्। बालिकायाः=बाल्ययौवनसन्धौ विद्यमानायाः। [illegible]=त्रपाधीना। अप्राप्तपूर्णयौवनत्वात्त्रपापरवशता। कन्यानां हि लज्जाधीनत्वं लक्षणकोटिप्रविष्टम्। यतः=यस्माद्धेतोः। मूर्च्छना इति पाठः "अचो रहाभ्यामि"ति छद्वित्वे चर्त्वे च तत्साधुत्वम्। तुकस्तु न सम्भावना, रेफव्यवधानेन छस्य दीर्घात्परत्वाभावादिति ध्येयम्।

कर्णाविव गृहीत्वाऽऽकृष्ट इत्यत्र लोकोक्तिरलङ्कारः। दक्षिणा=दक्षिणतः, आजन्तमव्ययम्, तद्योगे द्वितीया। कपोतपोतकानाम्=पारावत-शावकानाम्, गूङ्कारेण=तज्जातीयशब्देन, मधुरायाः=मनोहरायाः, कपोतपालिकायाः=विटङ्कस्य, "कपोतपालिकायान्तु विटङ्कं पुन्नपुंसकमि"

वीणा को निन्दित करने वाले काकली ध्वनिमय स्वरों के आलाप सुने।

सुनने से ही उसने जान लिया कि ये आलाप किसी बालिका के ही हैं और वह लज्जा से दबी हुई है, क्योंकि ऊँचे स्वर से नहीं गा रही है तथा बड़े कुल में पैदा हुई है, क्योंकि औरों की वाणी इतनी उदार नहीं हो सकती एवं वह यहीं समीप में ही रहती भी है, क्योंकि स्वर बिल्कुल स्पष्ट है, पूर्व दिशा में बैठी है, क्योंकि उधर से ही ये स्वर लहरियाँ आ रही हैं।

इसके बाद कान पकड़ कर खींचे गये से रघुवीरसिंह ने मन्दिर की दक्षिण ओर से प्रदक्षिणा करके, उसी प्रदक्षिणा की वेदी से, उसी क्षण, मन्दिर के अग्निकोण में स्थित कबूतरों के बच्चों के 'गुटरगूँ' के मधुर शब्द से कपोतपालिका (ढाबली)—के निचले खम्भे के

निक[illegible] प्र[illegible]श्चावालोकयच्च—यत् पूर्वस्यामस्ति विशाला पुष्प-वाटिका, [illegible]तिमुक्त-लताः सौरभेण विष्णुपदमपि मदयन्ति, यूथिकाः सुगन्ध-तरङ्गैर्हरितामपि हृदयं हरन्ति, पाटलि-पटलानि अलि-पटल-रसनाश्चटुलयन्ति, मालतिकाश्च मरन्द-बिन्दु-सन्दोहैर्वसुमतीं वासयन्ति। तस्यां मन्दिर-पूर्वद्वार—सम्मुखे एवास्त्येका परम—रमणीया ज्योत्स्ना—स्पर्श—प्रगटित—द्विगुणतर—चाकचक्या

त्यमरः, अधः=निम्नांशे, स्तम्भारम्भस्य निकटे। अधस्तम्भेत्यत्र "ख[illegible] शरि वा विसर्गलोपः"। अतिमुक्तलताः=माधवीलताः, "अतिमु[illegible] पुण्ड्रकः स्याद्वासन्ती माधवी लते" त्यमरः। सौरभेण=[illegible] विष्णुपदम्=नभः। "वियद्विष्णुपदं वातु पुंस्याकाशविहायसी" इत्यमरः। यूथिकाः=मागध्यः। "अथ मागधी। गणिका यूथिकाऽम्बष्ठे" त्यमरः। हरिताम्=दिशाम्। हृदयम्=मध्यम्। अन्तरालप्रान्तमिति यावत्। हरन्ति=स्वायत्तीकुर्वन्ति। पाटलिपटलानि=मोघासमूहाः। "पाटलिः पाटला मोघा काचस्थाली फलेरुहा। कृष्णवृन्ता कुवेराक्षी" त्यमरः। अलिपटलरसनाः=द्विरेफव्रातजिह्वाः। चटुलयन्ति=चञ्चलयन्ति। मालतिकाः=जातयः। "सुमना मालती जातिरि" त्यमरः। मरन्द-बिन्दु-सन्दोहैः=मकरन्दपृषद्गणैः। वसुमतीम्=वसुधाम्। वासयन्ति=सुगन्धयन्ति। परमरमणीया=नितान्तहृद्या। वेदिकाविशेषणमिदम्। ज्योत्स्नायाः=कौमुद्याः, स्पर्शेन=संसर्गेण, प्रकटितं द्विगुणतरं चाक-

---

निकट, खड़े होकर देखा कि—पूर्व में एक विशाल वाटिका है, जिसमें माधवी लतायें अपने सौरभ से आकाश को भी मद मस्त बना रही हैं, जुही के पेड़ सुगन्धित तरङ्गों से दिशाओं के भी हृदय को हर लेते हैं, पादरि के समूह भ्रमर कुलों की रसनाओं को चञ्चल बना रहे हैं और मालती लतायें मकरन्द बिन्दु के समूहों से पृथ्वी को सुगन्धित कर रही हैं। उस वाटिका में मन्दिर के पूर्व द्वार के सामने ही, एक परम सुन्दर, चाँदनी के स्पश से द्विगुणित चमचमाहट को प्रकट

सोपानत्रयालङ्कृत-[illegible]रवरोहा हंसपक्ष-वलक्ष-च्छवि[illegible] धवल-ग्राव-वेदिका। अस्यामागन्तुकानामुपवेशाय [illegible]षा-णमया एव कतिचन मञ्चाः, तेषामन्यतमे उपविष्टा बालिकैका। सेयं वर्णेन सुवर्णम्, कलरवेण पुंस्कोकिलान्, केशै रोलम्ब-कदम्बान्, ललाटेन कलाधर-कलाम्, लोचनाभ्यां खञ्जनान्, अधरेण वन्धुजीवम्, हासेन ज्योत्स्नां तिरस्कुर्वती, वयसा एकादशमिव वर्षं

च[illegible]=कान्तिविशेषो यया सा। सोपानत्रयेण=आरोहणत्रयेण, "आ[illegible] सोपानमि" त्यमरः, अलङ्कृता=विभूषिता, अत एव चतु[illegible]ख्याकस्थानेषु, अवरोहः=स्थितिस्थानं यस्याः सा। हंस-पक्षाणाम्=कादम्बपत्राणाम्, "गरुत्पक्षच्छदाः पत्रं पतत्रं च तनूरुहमि" त्यमरः, वलक्षायाः=सितायाः, छवेः=शोभायाः, विजित्वराणाम्=जयनशीलानाम्, धवलानाम्=स्वच्छानाम्, ग्राव्णाम्=प्रस्तराणाम्, वेदिका। मञ्चाः=उच्छ्रितभूमयः, उच्छ्रायार्थकान्मञ्चेर्घञ्, "वृद्धोऽन्धः पतिरेष मञ्चकगत" इत्यादौ प्रसिद्धम्। बालिका, इयमेव कथानायिका। "वर्णेन सुवर्णं तिरस्कुर्वती" त्येवंरूपेण सर्वत्रान्वयः। वर्णेन सुवर्णतिरस्कारोक्त्या सुवर्णरूपोपमानानादरप्रतीत्या प्रतीपालंकारः सहृदयजनसंवेद्यः। रोलम्बकदम्बान्=भ्रमरसमूहान्। बन्धुजीवम्=रक्तकम्, "रक्तकस्तु बन्धुको बन्धुजीवक" इत्यमरः। "दुपहरिया" इति हिन्दी। हासेन, हासस्य

करनेवाली तीन सीढ़ियों से शोभित, चार अवरोहवाली, हंस के पंख की सी उज्ज्वल छवि को जीतनेवाले श्वेत पत्थरों से निर्मित, वेदी (चबूतरा) है। इस पर आगन्तुकों के बैठने के लिए पत्थर से ही बनी हुई कुछ कुर्सियाँ हैं जिनमें से एक पर एक बालिका बैठी है। यह बालिका अपने गौर वर्ण से सुवर्ण का, मधुर शब्द से पुरुष कोकिल का, बालों से भ्रमर-समूहों का, ललाट से चन्द्रमा की कला का, नेत्रों से खञ्जनों का, अधर से दुपहरी पुष्प का, हास से चाँदनी का तिरस्कार करती हुई, वय से

पूर्ण... ...म-कौशेय-वस्त्र-परिधाना, श्वे... बिन्दु-सन्दोह-सङ्कुल-रक्ता... कञ्चुकिका, कण्ठे एकयष्टिकां नक्षत्रमालां बिभ्रती, सिन्दूर-चर्चा-रहित-धम्मिल्लेन परिशिष्टं पाणिपीडनमिति प्रकटयन्ती, हस्ते पाटलि-कुसुम-स्तवकमेकमादाय शनैः शनैर्भ्रामयन्ती, तमेवावलोकयन्ती, च, अविदित-बहुल-तान-तारतम्यं मन्द-मन्दं मुग्ध-मुग्धं मधुर-मधुरं किञ्चिद् गायतीति।

वर्णः श्वैत्यमय इति कविसमयख्यातिः। श्यामं कौशेयवस्त्रम् = पट्ट... परिधानं यस्याः सा। श्वेतबिन्दूनां सन्दोहैः = ...हैः, स... स्य, रक्ताम्बरस्य = रक्तवस्त्रस्य, कञ्चुकी = चो... यस्याः ... बहुव्रीहौ "शेषाद्विभाषे" ति कपि "केऽण" इति ह्रस्वः। एकावलीम् = एकयष्टिकाम्। नक्षत्रमालाम् = सप्तविंशतिमुक्तामयीम्। "एकावल्येकयष्टिका। सैव नक्षत्रमाला स्यात् सप्तविंशतिमौक्तिकैरि" त्यमरः। सिन्दूरचर्चा-रहितेन = कुङ्कुमसम्पर्कशून्येन, अनूढाः सीमन्ते सिन्दूरं न धारयन्तीति प्रथा। धम्मिल्लेन = संयतकेशसमूहेन, "धम्मिल्लः संयताः कचा" इत्यमरः। पाणिपीडनम् = विवाहः। परिशिष्टम् = अवशिष्टम्। स्तवकः = गुच्छः, तम्। अविदितं बहुलं तानतारम्यम् = तानोत्कर्षापकर्षौ, यस्मिंस्तत्। क्रियाविशेषणम्, अग्रेतनानि च।

एकादश वर्ष का स्पर्श सा करती हुई, श्याम वर्ण के रेशमी वस्त्रों को पहने, सफेद बुँदियों के समूह से व्याप्त रक्त वर्ण की कञ्चुकी धारण किये, गले में सत्ताईस मोतियों से बनी हुई एकलरी (आभूषण) पहने, सिन्दूर-सम्पर्क से शून्य सीमन्त (माँग) के द्वारा 'अभी इसका विवाह अवशिष्ट है' यह प्रकट करती हुई, हाथ में गुलाब के फूलों का एक गुच्छा लेकर उसे धीरे-धीरे घुमाती हुई और उसी को देखती हुई, तानों के क्रम विचार से रहित कुछ मन्द-मन्द मनोहर-मनोहर और मधुर-मधुर गा रही है।

यद्यपि नैतया [illegible]वती-सरूपया अज्ञात-त[illegible] रिक्त-सांसारिक-सुखया कदाऽपि गातुं शिक्षितम्, [illegible]नां तास्ताः कर्ण-रसायन-मूर्छनाः कर्णातिथीकृताः, तथाऽपि भज्यमान-मपि, त्रुट्यमानमपि, आम्रेड्यमानमपि, अदर्शित-रागविशेषमपि, [illegible]रोहावरोह-ध्रुवाभोगालङ्कारादि-कथा-शून्यमपि, निज-कल्पना-[illegible]म्, तद्देशीय-ग्राम्य-स्त्री-गानानुकल्पम्, सुदीर्घ-स्वर-रणनं

[illegible]ज्ञातं तातोत्सङ्गशयनादतिरिक्तं सांसारिकं सुखम्=विषयानन्दो [illegible] कर्णयोः=श्रोत्रयोः, रसायनानि=आनन्ददायिन्यः, मूर्छनाः। [illegible]चरीकृताः। मूर्छनानां श्रोत्रगोचरत्वे स्थिते [illegible]समारोप इति समाधिर्नाम गुणः।

[illegible] गानामद प[illegible]—आसीदिति सम्बन्धः। गानं विशिनष्टि-भज्य-मानम्=स्खलत्, [illegible]त्रुट्यमानम्=विच्छिन्नप्रायम्, पूर्वापरसम्बन्धशून्य-मिति यावत्। आम्रेड्यमानम्=पुनः पुनरुच्चार्यमाणम्। यद्यपि गाने गुणताऽऽम्रेड्यमानतायास्तथाप्यनवसरे स्थितत्वे दोषत्वमेवेति वेदितव्यम्। न दर्शितः=न प्रकटीकृतः, रागविशेषः=ललिताद्यनेकभेदः, यस्मिंस्तत्। आरोहः=स-रि-ग-म-प-ध-नीनामुच्चैस्त्वम्, अवरोहः=तन्नीचैस्त्वम्। ध्रुवः=स्थिरपदम्, आभोगः=रागविस्तारः, अलङ्कारः=रसादिः, तत्कथाशून्यमपि। तद्देशीयानां ग्राम्यस्त्रीणाम्=हालिकदाराणाम्,

यद्यपि सरस्वती के समान रूपवाली तथा पिता की गोद में सोने के अतिरिक्त किसी भी सांसारिक सुख को न जानने वाली इस बालिका ने न तो कभी गाना ही सीखा था और न गायकों की कानों में मधुर वर्षा करने वाली स्वर-लहरियों को ही सुना था, फिर भी स्खलिताक्षर होने पर भी, पूर्वापर सम्बन्ध शून्य होने पर भी, पुनः-पुनः उच्चारित होने पर भी, किसी विशेष राग से रहित होने पर भी, आरोह, अवरोह, ध्रुव (स्वर की स्थिरता), राग-विस्तार एवं अलंकार आदि के तत्व से शून्य होने पर भी, केवल अपनी कल्पना-मात्र, उस प्रान्त की कृषक-वधुओं के गाने के समान, ऊँची आवाज में गाया यह गीत,

पुर... ...रसं परममधुरं परमहा... ...ऽसीत् ।

... प्रश्रुत्य... ...स्तु स्वरालाप-श्रवणेनैव परवशो विलोक्यैनां ... कोऽहम् ? काहम् ? केयम् ? किमिदम् ? इत्यखिलं यौगपद्येनैव विसस्मार ।

अहो ! आश्चर्यम्, य एष फणि-फणा-फूत्कारेष्वपि सक्रोध-हर्य्यक्ष-जृम्भारम्भेष्वपि भल्ल-तल्लजाग्र-परिस्पर्धि-खर-नखर-भल्ल-

---

गानस्य=गीतेः, अनुकल्पम्=तुल्यम् । सुष्ठु दीर्घाणाम्=ताराणाम् ... स्वराणां रणनम्=ध्वनिः, यस्मिंस्तत् । परमह... =अत्यन्ताक... ।
अखिलम्=समस्तम् । यौगपद्येन=ए... ...

"विनिश्चेतुं शक्यो न सुखमिति वा दु... ...
प्रमोहो निद्रा वा किमु विष... ...
तव स्पर्शे मम हि परिमूढेन्द्रियगणो । एक...
विकारः कोऽप्यन्तर्जडयति च तापञ्च तनुते ॥"

इति प्राचीनपद्यं तद्दशावधारणायानुचिन्तनीयम् ।

अहो आश्चर्यम्, "ओदि"ति प्रगृह्यत्वं प्रकृतिभावश्च । फणिफणा-फूत्कारेषु=सर्पस्फटा-"फूँ"रवेषु । सक्रोधस्य=कुपितस्य, हर्य्यक्षस्य= केशरिणः, "हर्यक्षः केशरी हरिरि" त्यमरः, जृम्भारम्भेषु=मुखव्यादा-नोपक्रमणेषु । भल्लतल्लजानाम्=प्रशस्तभल्लानाम्, "मतल्लिका मचर्चिका प्रकाण्डमुद्धतल्लजौ । प्रशस्तवाचकान्यमूनी" त्यमरः । अग्रस्य परिस्प-र्धिनः=प्रतिद्वन्द्विनः, खराः=कठोराः, नखराः=नखाः येषां ते च ते

परम सरस, परम मधुर और परम मनोहर था ।

रघुवीर सिंह उस स्वर लहरी के श्रवण मात्र से परवश होकर, उस बालिका को देख कर, 'मैं कौन हूँ ? कहाँ हूँ ? यह कौन है ? यह क्या है ?' इत्यादि सभी कुछ एक साथ ही भूल गया ।

अहो ! आश्चर्य है । जिसने सर्पों के फनों की फुफकारों में भी, क्रोधाविष्ट सिंह की जमुहाई के समय भी, उत्तम भालों के प्रति-स्पर्धी तेज नाखून वाले रीछों के (मारने के लिये) दौड़ने के समय

पुरं ... ते हृदयम्, अञ्चन्ति र..., क्षुभ्यति च मनः। ... ? किमिदम् ? कुत इदम् ? अहह ! सत्यम् ! वीर-कोऽपि ...ष प्राप्यावसरम् आहतो मदन-मृगयुना।

तावदकस्माद् "रघुवीर ! रघुवीर ! त्वं शिववीरस्य चरोऽसि, गूढाभिसन्धिषु प्रेष्यसे, अल्पं तव वेतनम्, साधारणी तवावस्था, खड्ग-धारावलेहनमिव कष्टतरं तव कार्यम्, कैशोरं वयः, अव...

स्वेदवन्ति भवन्ति। एजते = कम्पते। विमनायते = वैक्लव्यम... अञ्चन्ति = उद्गतानि भवन्ति। क्षुभ्यति ... मृगयुः = व्याधस्तेन। रूपकम्।

वीररसप्रधानेऽस्मिन् काव्ये तदङ्गतया ... सौवर्णीरघुवीरसिंहावालम्बनविभावौ, रघुवीर। एक... स्वेद ... कम्पनादयोऽनुभावाः, निर्वेदादयश्चाग्रेवाच्या व्यभिचा... इति विभावनी ...

तावदकस्मादन्तःकरणेन स्वयमेव प्रबोधितः पुनस्तामेवैक्षिष्टेति सम्ब... "शिववीरस्य चरोऽसी"त्यनेनोच्चजनसंपर्किणस्ते न युक्तमिदमिति व्यञ्जितम्... तथा च प्राक्तनं पद्यम्—"न गणितं यदि जन्म पयोनिधौ, हरशिरस्थितिभू... रपि विस्मृता"। गूढाभिसन्धिषु = गुप्तकृत्येषु। अल्पम् = सस्त्रीकनिर्वा... हायोग्यम्। नाद्यत्व इव तदानीं दरिद्रा अलब्धभृतयश्चोद्वाह्य कामपि ललना... स्वयं तस्याश्च जीवनं व्यर्थयन्ति स्मेति विशाद्यते। साधारणी तवावस्था... लोकोक्तिरियम्। अवस्था = दशा। वयोऽर्थकत्वे तु—"कैशोरं वय" इत्यस्य... वैयर्थ्यापात इति ध्येयम्। खड्गधाराया अवलेहनम् = रसनयाऽऽस्वादनम्...

हैं, मन खिन्न हो रहा है, रोमाञ्च हो रहा है, हृदय क्षुब्ध हो रहा है। तो यह कैसे है ? यह क्या है ? यह कहाँ से है ? अरे ! सचमुच इ... वीर बालक को भी शिकारी कामदेव ने अवसर पाकर घायल कर ...

तब तक अकस्मात् "रघुवीर ! रघुवीर ! तुम ... हो। गूढ़ कार्यों में भेजे जाते हो, तुम्हारा वेतन अल्प है, स्थिति ... तलवार की धार को चाटने की तरह अत्यन्त कठिन ...